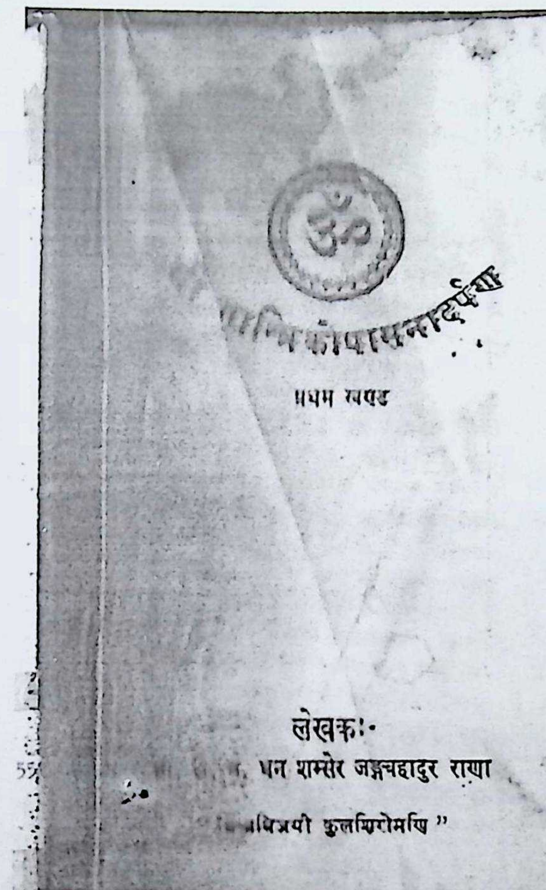


ॐ

[illegible]कोपासनादर्पण

प्रथम खण्ड

लेखकः-

[illegible] धन शम्सेर जङ्गबहादुर राणा

"[illegible]धिजयी कुलशिरोमणि"

मुद्रकः—
[illegible] प्रेस ” नेपाल

निवेदन

यह ‘ श्रीतान्त्रिकोपासनादर्पण ’ हमारे पूज्य ज्येष्ठ भ्राता ‘विश्वविजयी कुलशिरोमणि ’ लेफटिन्याण्ट जनरल धनशमशेर जङ्ग बहादुर राणा द्वारा वहुग्रन्थावलोकन अतथा स्वयं पनी गुरुकृपा का अनुभव से निर्माण कियागया हैं । आपने सन्नसें पहले श्रीपराविभूतिस्तोत्र ’ तथा ‘ योगानन्दलहरी ’ नेपाल में वैठकर संस्कृत में निर्माण किये, उसके वाद पोखरा में वैठकर ‘ श्रीपरामहिमस्तोत्र ’ तथा ‘ श्रीपराङ्गस्तवराज ’ भी संस्कृत में ही निमोणकर चारों ही पुस्तिकायें मुद्रित कराया हैं । हिदुस्थान सें वहुत सें जिज्ञासुओं के अनुरोधन सें तत्पश्चात आपने हिन्दी भाषा में लेख देनेका आरम्भ कर ‘ वत्तिसवर्षका अनुभव ’ नामक एकलम्वा लेख २५ अङ्क तक शाक्तसंमेलन की मुख पत्रिका ‘ चण्डी ’ में पोखरा वैठकर देदिया था । अभी भी यहा नेपाल में वैठकर उक्त ‘ चण्डी ’ में वरावर विविध प्रकार के लेखों भेजरहें हैं । शाक्तसम्मेलन ‘ चण्ड़ी ’ का संस्थापक स्वर्गीय परमपूज्य श्री १०८ वावा मोतिलालजी महाराज आप (हमारे पूज्य ज्येष्ठ भ्राता) के लेखों को वडाही प्रसंशा करते थें । अतः उहों ने आपको “ विश्वविजयी कुलशिरोमणिं ” का उपाधि ‘ चण्डी ’ द्वारा प्रदान करने की कृपाकिये । उसके-वाद वहुत सें पूज्यलोग का आज्ञानुसार तथा अन्य अन्य जिज्ञासुओं का अनुरोधसें ‘ चण्ड़ी ’ अपने ‘ वत्तिसवर्ष का अनुभव ’ नामक लेखका ही अनुसरण कर मन्त्रोद्धारादि तथा आवरणादि भी रखकर उस लेखका करिव तीगुना कर यह श्रीतान्त्रिकोपासनादर्पण ’ निर्माण कर मुद्रितकराने का था, परन्तु यहाँ का कोई कोई ‘ गोपनीय ’ का पूजारीलोग ने

कहा की "ऐसे मन्त्रोद्धारों तथा आवरणों मुद्रित कराकर प्रकाश कर लाभउठाना उचित नहीं हैं। ऐसा कहकर रूकदिया अतः इस ग्रन्थकर्ता किंकर्तव्य विमूढ जैसे वनगएथें। तव।

इसी प्रकार के गोपनीयताका पुजारियो के स्वार्थ भावनायें में तन्त्रशास्त्र के मार्मिक रहस्यों को प्रतिदिन ह्रास होरहा हैं। यथार्थ तत्वज्ञान के अभाव से हंम हिन्दूधर्मावलम्वी लोग को अपने धर्म्म तथा अपने शास्त्रों के प्रति अश्रद्धा का उत्पन्न होरहा है, फिर, अपना धर्म्मका मार्मिक रहस्य न समजकर शाक्तो, वैष्णवों, शैवों, गाणपत्यों, सौरें तथा वेदान्तियों में परस्पर विवाद चलरहा हैं। फिर भी अन्य कोई उदारचित्त वाले अपने परिश्रम सें लोको पकाराय तन्त्रशास्त्रों तथा उसका रहस्यों मुद्रितकराने का चेष्टा करते ही ये गोपनीयता का पूजारीलोग हरतरहसें उसमें विघ्न ढालने की चेष्टा करते हैं। इस का क्या कारण हैं वेलोग ही जाने। मेरुतन्त्र में निम्नलिखित वचन प्रमाण मौजुद ही है। "अतएव मयाप्रोक्तं दुष्कृते प्रवले कलौ। कुलाचारोऽपि सत्येन कर्तव्यो व्यक्त भावत:॥ गोपनाद्धियते सत्य नगुप्तिरनृतंविना। तस्मात् प्रकाशतः कुर्यात् कौलिकः कुलसाधनम्॥" फिर आपने इस लेख में मन्त्रों तथा आवरणों स्पष्टरूप सें नदेकर केवल उद्धाररूप सें दिये हैं। गुप्त गुप्तविधानोका भी अतीव सूक्ष्म तथा संकेत कियागया हैं तो इस पुस्तक मुद्रित कराने में कोई भी शङ्का की वात मेरा चित्त में नहीं आती हैं। मेरे को संमति दिजिए मैं मुद्रत कराके मेराव्यय के अतिरिक्त मुनाफा नलेकर वितरण करूंगा, इस से आपकी

शङ्का हटजाएगी आप भी निर्दोष वनजाएंगे।" इस प्रकार की वात कहकर मैंने आपकी संमति लेकर इस ग्रन्थ मुद्रित करारहा हूँ फिर जिज्ञासुओं के लिए योग्य मुल्य में वितरण करूंगा। इस की रचना हिन्दूधर्मावलम्वी मात्र के उपकार तथा संकलन की दृष्टिसें की गई हैं। इससें पढकर पाठक कुछ तन्त्र का मार्मिक रहस्य जानसकता हैं। विशेष पुस्तक हाथ में आनेपर अपने विशेषता स्वयं दर्शायेगी। इत्यलम्।

भवदीय

वो. ज. इन्दु शम्शेर ज[illegible]

प्रकाशक.

[illegible]

॥ भूमिका ॥

हमारे हिन्दू-धर्म में सें विशेषतः तन्त्रशास्त्र के रहस्यों का दिनपरदिन ह्रास हो रहा हैं। यह बडी ही खेदकी वात हैं। कारण यह हैं की तन्त्रशास्त्र का अनन्त ग्रन्थों हैं, फिर उन में सें, चुनचुनकर स्वय अनुभव सें सिद्धकर अनेक गुरुओं सें अनेक परम्परायें निकले हैं। उन सबको जानना अशम्भव हैं। केवल अपनी ही गुरुपरम्परा की वात यथार्थ जानने वाला साधक भी वही 'गोपनीय' के विचार में मग्न हो रहें हैं। कितने ज्ञाता साधक लोग पूर्वोक्त विचार सें जितनातक प्रकाश करने योग्य था उतना तक भी प्रकाशनकर देहत्यागने की वाद अपने सकल ही अनुभवीक ज्ञान साथ साथ लेकर परमपद को चलेगये होंगे । नहीं तो इन दिनों तक तन्त्रशास्त्र का चमत्कार की उन्नति ही रहतीथी । विविध तन्त्रग्रन्थों एक ही आदमी का पास जूटना कठीन हैं, यदि लाइब्रेरी यों में जूट सकेतो भी एक विषय के लिए कितनें हीं तन्त्रग्रन्थों का अवलोकन कर समय नष्ट करना होगा। इस हेतु सुविधा के लिए हमारे नेपाल के भूतपूर्व श्री ५ महाराजाधिराज पृथ्वीनारायण साह वहादुर देव का सुपुत्र श्री ५ महाजाधिराज प्रतासिंह शाह वहादुर देव ने उस काल के तान्त्रीकों के सहायता सें विविध तन्त्र-ग्रन्थों सें सार निकालकर "पुरश्चर्यार्णव" नामक ग्रन्थ निर्माण कर हस्तलिखित रूप में रखदिए थे । वही पुस्तक विक्रम सम्वत् १९५७ में हमारे पुज्य पितामह भूतपूर्व नेपाल शासक श्री ३ महाराज वीर शम्शेर जङ्ग वहादुर राणा का अनुमति सें प्रभाकरीकम्पनिने मुद्रित कराया

था। अभी उस पुस्तक खरिद नें को मिलना दुर्लभ सा होगया यद्यपि मैंने एक सामान्य कुल पथानुयायी होकर केवल अपने गुरुदेवकी कृपा सें केवल अपने ही प्रयास से ग्रन्थाव लोकन और स्वानुभव सें निर्माण कियाहुआ यह " तान्त्रीकोपासनादपर्ण " " पुरश्चर्यार्णव " जैसे अन्य अन्य ग्रन्थों के तूलना में एक हास्यस्पद होगा, तथापि अपने अल्प अनुभव से जो जानलिया हूँ उस से यह " तान्त्रिकोपासनादर्पण " निर्माण करने का दुस्साहस कर रहा हूं। मेरा इस पुस्तक में केवल ऐहिक तुष्टि तथा पारलौकिक मुक्ति के विषय के लिए ही विविध प्रकार के उपासनायें की चर्चा हैं। विविध प्रकार के पट्कर्मादि का प्रयोग, इन्द्रजालादि कर्म, यक्षिण्यादिसाधन तथा शावरतन्त्र का प्रयोग इस पुस्तक में नहीं हैं, क्योंकि उन विषययों में मैं बिलकुल अनभिज्ञ हूँ। मेरा यह पुस्तक में क्षुद्रविद्यादि का प्रयोग नहोकर महाविद्या तथा सिद्धविद्या का ही प्रयोग का वर्णन कियागया हैं। मैं हिन्दी भाषा में विशेष निपुण न होने के कारण हमारे मित्र नेपाल इन्द्रीवजार निवासी हेडमाष्टर श्रीयुत ठाकुरदास वि. ए. विशारद ने मेरा इस लेख का हिन्दी भाषा का संशोधन करने की कृपा की हैं। अत: मैं आपको शतशः धन्यवाद करता हूँ। तन्त्र के जिज्ञासु के सेवा के लिए यथा शक्य मैंने परिश्रम किया हैं। मेरा इस लेख महानुभावों के सामने तो सूर्य के सामने दीपजलाना जैसा होगा, तथापि प्रथम श्रेणि के जिज्ञासुओं के लिए कुछ सेवाकरने की आशा हैं। किं बहुना पुस्तक पढने सें

पाठकों को स्वयं ही विदित होगा। आपलोग सें मेरी यह प्राथना हैं कि मेरा क्षुद्र पुस्तक में कुछ त्रुटी होगी तो मुझे अजान मानकर क्षमाकरने की कृपा करे।

मेरी सम्मती सें हमारे प्रिय कनिष्ठ भ्राता श्रीलेफ्टिन्यण्ट जनरल इन्दु शम्शेर जङ्ग बहादुर राणा ने इस पुस्तक मुद्रितकरा के यथायोग्य मूल्य में विक्री कराने का प्रबन्ध किया हैं।

धनशम्शेर जङ्ग बहादुर राणा



श्री ३ वीर शम्शेर



॥ श्री तान्त्रिकोपासना दर्पण स्थित विषयानुक्रमणिका ॥

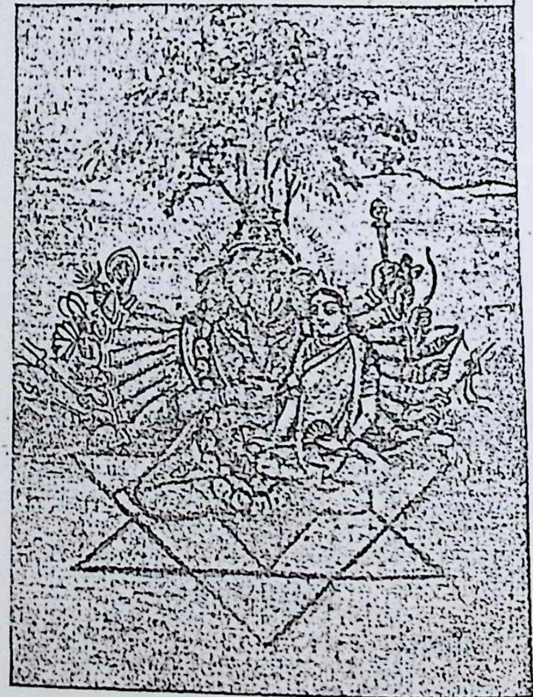
तृतीयः पटलः

चतुर्थः पटलः

पञ्चमः पटल

षष्टः पटल

सप्तमः पटल



श्री महा गणपती

श्रीः

॥ अथ ॥

॥ श्री तान्त्रिकोपासनादर्पणम् ॥

॥ प्रथमः पटल ॥

॥ ॐ नमः श्री परदेवतायै ॥

तन्त्र शास्त्र अनन्त हैं। इसके सकल भेदों और रहस्यों का पारंगत एक सदाशिवके अतिरिक्त और कोइ भी नहीं हो सकता; मेरेजैसे अल्पज्ञों की वात तो दूर ही रहें। मैंने बहुत तन्त्र ग्रन्थोंका अवलोकन नहीं किया है। केवल श्रीगुरु-देवकि कृपाद्वारा और अपने ३२ सालके प्रयाससे जो अनुभव प्राप्त किया है, वह यथाज्ञान "३२ वर्षके अनुभव" नाम से सं० २००४ भाद्रपद की "चण्डी" सें आरम्भ कर सं० २००६ वैशाख मास की "चण्डी" में समाप्त किया है। इस लेखमालाको संशोधन कर विशेष मन्त्रों और रहस्यों को भी प्रकाशकर पुस्तक रूपमें संग्रहित करके भागो में विभाजन करके छपाने का अनुरोध वहुतसे साधकोंनें किया है; इस लिए मैं यह छोटा ग्रन्थ आपलोगों के अनुरोधानुसार लिखता हूं। मैं अल्पज्ञ हूं मेरे लेखमें कुछ भूल हो तो मैं क्षमा प्रर्थी हूं।

तन्त्र मार्ग पिपिलिका मार्ग हैं। इस मार्ग में बड़ाहीं सोच विचार करके धीरे धीरे चलना योग्य हैं। इस मार्ग मै सबसे पहले शास्त्र विहित विधि, निषेध विधि का और वर्णाश्रम धर्म्म, भेदाभेद का विचार बडेही जोरसे रखना चाहिए। जब अपने अपने गुरुपरंपरानुसार क्रमसे उपासना करते करते मनका भाव ठीक होजाएगा और केवल मुंहसे नहीं अपितु हृदय से भी निम्न लिखित निर्वाण तन्त्रोक्त वचनके सदृश मनोभाव होजाएगा तब स्वयं ही भेदाभेद का भाव हटजाएगा।

निर्वाण तन्त्रोक्त वचन इस प्रकारका हैं:—

"नात्राधिकारः सर्वेषां ब्रह्मज्ञान् साधकान् विना।
परब्रह्मोपासका ये ब्रह्मज्ञा ब्रह्मतत्पराः॥
शुद्धान्तः करणाः शान्ताः सर्वप्राणिहिते रताः।
सत्यसंकल्पका ब्राह्मास्त एवात्राऽधिकारिणः॥
ब्रह्मभावेन तत्वज्ञे ये पश्यन्ति चराचरम्।
तेषां तत्वविदां पूंसां तत्वचक्रेऽधिकारिता:॥"

वेदान्त मार्ग जो है वह विहंगममार्ग है उसमें भेदाभेदादिके भावोंकी कुछ भी जरुरत नहीं होगी। परन्तु विना पक्षके पक्षी याने विहंगम वनके खेचर कोई भी नहीं हो सकेगा। इसलिए वेदान्तके दो पक्ष हैं। वह हैं त्याग और वैराग्य जिसके विना वेदान्त श्रवण करना और पढना केवल भल्लूकको पुराण श्रावण कराना ही जैसा होगा। त्याग और वैराग्य प्राप्त नकर वेदान्तमार्ग का ग्रहण करना तो मेरे विचार में भ्रष्टाचार में लगजाना जैसा सूझता हैं। मैं अल्पज्ञ

: बडे बडे वेदान्ताचार्यों का विचार दूसरा ही हो सकताहै ह मुझे मालूम नहीं है। कलिकाल में प्रायासः मनुष्यों में याग और वैराग्य उत्पन्न होना दुर्लभसा होता है। इसलिए ंकरजी ने यह तन्त्रमार्ग पिपिलिका ढंग से प्रतिपादितकर 'फलावागमसंमतम्' यह वचन भी लिखदिया। फिर ग्रन्थान्तरमें स्वयं वेदान्ताचार्य श्री १०८ स्वामी शंकराचार्यजी ने ी लिखा हैंकि।

"यत्रास्ति भोगो नचतत्र मोक्षो यत्रास्ति मोक्षोनचत भोगः।
ीसुन्दरीसाधनतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव॥"

इसलिये तन्त्रमार्ग में चलने सें आदमीलोग अपने अपने ौकिक व्यवहार के साथ साथही परमार्थका साधन कर सकते । इस तन्त्रमार्गका तात्पर्य है शक्ति साधन शक्तिका अर्थ है Vill power, और शक्तिसाधन Will culture अथवा elf-culture हमलोगोंके यही तन्त्र शास्त्रसे एक सूक्ष्म भाग दधृत कर पाश्चात्यलोगोंने Mesmerism और Hypnotism काल कर कितनी उन्नति कि है यह लोक प्रसिद्ध वात है फिर मलोगों का "भूतडामर तन्त्र" का शाखारूप Spiritualism । भी वहलोग अभ्यास कररहें हैं, परन्तु अच्छी सफलता भीतक नहीं होसकी। दुःख की वात हैंकि वेलोग हमारे ही ास्त्रसे उन्नतिकर रहें हैं, हमलोग अपने अनमोल शास्त्रों । अपहेलनाकर उन लोगोंकी ठाँटवाट रहनसहन का अनुकरण ररहे हैं। जो कुछ ही होवे अवमैं मेरा लेख आरम्भ करता ॥ साधकों का आकांक्षाके अनुसार जहाँतक होगा मन्त्रोद्धार ौर यन्त्रोद्धार देदुँगा; हो सकेतो आवरण पूजा की भी उद्धार

देनेकी चेष्टा करूंगा। परन्तु अन्य पूजा पद्धतियाँ अपने अपने गुरुपरंपरा भेदसे पृथक होनेके कारण वह नहीं देसकूँगा। गुरुपरंपराकी वात निचेके लेखों से स्पष्टीकरण कराता जाऊँ-गा। मेरी गुरूपरंपरा "वृहद्वडवानल तन्त्र से" उद्धृत की गई है। अन्य गुरूपरंराका ज्ञान मेरेको नही है। इसलिये मैं अपने ही गुरूपरंपराके मतानुसार लिख रहा हूं। अन्य किसी की गुरूपरंपरासे कहीं कहीं कुछ कुछ भेद जैसा भी प्रतीत हो सकता हैं। परन्तु मैं जहाँ तक होगा शास्त्रवचन प्रमाण भी देदुँगा। अब सबसे पहले आम्नायों का भेदका वर्णन करता हूं मैं ब्राह्मण नहीं हूं, एक सूर्य्यवंसी क्षत्रीय हूँ। इसलि-ये किसीके गुरू वननेका अधिकार मेरा नहीं हैं। तथापि साधकों में गुरुओं और शिष्यों दोनोंकी ही शुभेच्छा से इस लेखको आरम्भ कररहा हूँ। यह लेखरुप प्रेमपुष्पाञ्जलि समर्पण करके आपलोगों से प्रेमभिक्षा की याचना करता हुँ। यहलेख प्रत्येक आम्नायों का प्रत्येक पटल और अन्यविषयों की अन्य पटल कर छोटा छोटा पटल के रूपमें विभाजन किया जायगा। बहुतसे लोगों के मनमें है कि तन्त्रशास्त्र वामाचारी और पट्कर्मादिसे भरा हुवा हैं यहशास्त्र वेदशास्त्रसे अलगहै, परन्तु यह विचार सर्वथा झूठे हैं। जो वेद हैं। वही तन्त्र है। और जो तन्त्र है वही वेद है। इसके प्रमाण वहुत हैं। लेख विस्तार भय से यहा नही लिखाजायगा। तन्त्रशास्त्र १० दिशा के अनुसार १० आम्नाय में वाँटेगए हैं। इनमेंसे छ आम्नाये मुख्यलोक-प्रसिद्ध है। छ आम्नायें श्रीसदाशिव के षड्वक्त्रसें निकले हुए हैं। और इनमेंसे अधराम्नायका संवरोधिक्रम जो है वह वौद्ध तन्त्र हैं वह क्रमको हम वैदिक लोक ग्रहण नही करते

हैं। फिर अन्य ४ आम्नायों की उत्पति श्रीसदाशिव केही उत्तर और पूर्व मुख से मिलकर ईशानाम्नाय, वैसाही पूर्व और दक्षिण से आग्नेयाम्नाय, दक्षिण और पश्चिम से नैऋत्याम्नाय फिर पश्चिम और उत्तरसे वायव्याम्नाय हैं। इनमेंसे यक्षिणया-दिसाधन और पट्कर्मोंका प्रयोग यानि केवल भौतिक चम-कारी साधनोंसे भराहुवा नैऋत्याम्नाय होनेके कारणयह आम्नाय हम लोगोंसे त्याज्यहैं। इसलिये यह अधराम्नायका संवरोधि-मत और नैऋत्याम्नायका विवरण मेरे क्रममें नहोनेके कारण मैं नहीं देसकता हूँ। तन्त्रशास्त्र केवल वाम और कौल मार्ग के लिए नहीं हैं। दक्षमार्ग के लिए भी यह तन्त्रशास्त्र प्रसस्त हैं। गाणपत्य, सौर, शाक्त, वैष्णव और शैव इत्यादि सक-लही दर्शन तन्त्रशास्त्रमें मौजूद हैं। मेरे यह लेख पढते रहनेसे आप पाठक वर्गो में सव विदित हो जायगा।

हम लोगोंके प्राचीन गुरूलोगों और आचार्य लोगोंने विविध तन्त्रशास्त्रोंका अवलोकन और स्वयं अनुभव भी करके पद्धतियाँ तथा क्रम उद्धृत किये हैं। तन्त्रशास्त्र अगाध हैं। अनेक मतमतान्तरोसें क्रम और पद्धतियाँ भी अनेक हो सकती हैं। इसलिये जिस गुरुने जो क्रम और पद्धति अपने अनुभवसें सिद्ध की हैं, उनके शिष्यवर्गोंकी वही गुरु परंपरा होगी। तन्त्रग्रन्थ वहुत हैं, उनमेंसें ६४ तन्त्र मुख्य माने गये है। इनमेंसे कोई एकके आधार से एक गुरूपरंपरा वनजायगी फीर देशके जलवायु के अनुसार स्वास्थ ठीक रखना चाहिय लिखाभी हैकि।

" देहे नष्टेकुतो वुद्धि वुद्धि हिने कुतोस्मृतिः।
स्मृतिहीने कुतो ज्ञानं ज्ञानहीने कुतो गतिः॥"

इसलिये संप्रदाय मानना अत्यावश्यक है।

अब किस-किस देश में किस-किस संप्रदायसे उपासना करनी चाहिये, इस विषयमें शक्तिसङ्गमतन्त्र कालीखण्ड के चतुर्थ पटलमें निम्न लिखित वचन हैं:

"केरलश्चैव काश्मीरो गौडमार्गस्तृतीयकः।
षट्पंचाशद्देशभेदात् सर्वत्र व्याप्य तिष्ठति॥
अष्टादशसु देशेषु गौडमार्गः प्रकीर्तितः।
नेपाल देशमारभ्य कलिङ्गान्तं महेश्वरि।
आर्यावर्तं समारभ्य समुद्रान्तं महेश्वरि॥
केरलाख्यः क्रमः प्रोक्तस्तूनविंशतिदेशके।
तदन्यदेशे देवेशि काश्मीराख्यः क्रमः शुभः॥"

उपरोक्तवचन है, तथापि अपने-अपने गुरू जिस संप्रदायमें सिद्धहुये है, स्वयं भी उसी संप्रदायसे सिद्ध हो सकते हैं देशके विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि उस देश के जलवायुके अनुसार गुरुजी सिद्धिलेचुके ही है। कहा भी है कि "सुगुरोः प्रसारदान्निमेषमात्रेण सुसाध्य एव"। परन्तु एकबात याद रखनी चाहिये कि कोही एक आदमी केरलक्रमानुदेशवासी था भाग्यवश उसको गौडसंप्रदायी गुरू मिलगा तो वह शिष्य भी गौडसंप्रदायी बनजायेगा अब एक बार गौड मार्गान्तरगत अष्टादशदेश मध्यमें से एक देशमें जाकर वहाँ एक मास रहकर पुरश्चरण करना चाहिये। यह प्राचीन गुरूओंका अनुभव सिद्ध बात है। इससे दृढ विश्वास कीजिये कि यह सत्य है।

भारत वर्ष में आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से लोगोंका कुछ ऐसा विचार होगया है कि वेलोग बिना अपनी आँखो से देखे अथवा स्वयं विना अनुभव किए कुछ भी नहीं मानते। परन्तु पाश्चात्य डिग्रीवाले ईसाईलोगों की उक्ति तो विना अनुभव ही देववाणी जैसा परम सत्य मानते हैं। यही बात हमारे शास्त्रों के लोप होनेका कारण होरही हैं। लोग तात्कालिक अनुभव चाहते हैं। विना परिश्रम अनुभव कैसे होसके? प्राचीन गुरूलोगों ने कितना प्रयास कर कितने ग्रन्थोंका अवलोकन करके पद्धतियाँ ठीक कर दीक्षादिका क्रम ठीक किया होगा। इसके अनुसारकोई यदि ऐसा ऐसा वचन है "यह वताए तो इसका तत्व जानने की चेष्टा करने की बाततो दूररही" यह किस शास्त्रका, किस भागका, किस पटलका, किस पृष्ठका, और किस श्लोकका प्रमाण है?" इस प्रकारके अनेकों प्रश्न कर हँसी उडाते हैं। यदि किसी आचार्य के सञ्चित किए हुए पुरश्चर्यार्णव, मन्त्रमहोदधि, मन्त्रमहार्णव, कौलावलीनिर्णय, सौभाग्यरत्नाकर, कुलार्णवदीपिका, कालीकुलचिन्तामणि और शाक्तप्रमोद आदि अनेक ग्रन्थोंसे प्रमाण उद्धृत करके देना होगा और किसिने एवंवत प्रश्नकिया तो उसका उत्तर क्या दिया जायगा! हमारे नेपालमें प्राचीन पुस्तकों का सबसे वडा पुस्तकालय हमारे पूज्य पितामह श्री ३ स्वर्गीय महाराज वीरशम्शेर जङ्गबहादुर राणाका स्थापित किया हुवा "वीर पुस्तकालय" नामक पुस्तकालय है। उसमे प्राचीन पुस्तकें तो हस्तलिखित ही है। फिर उसमें भी वहुतसी पालीअक्षरमें हैं। फिर

नेपालकी पीठोंके आगमों में तो बहुतसे हस्तलिखित ग्रन्थ हैं, उनमेंतो ग्रन्थोंका नाम भी नही हैं। नाम में इतना हैं कि अमुक आचार्य संकलित पद्धतिः। मेरे पास यागादिका कुछ कुछ प्राचीन हस्तलिखित पद्धपियों से कापी कीहुई याग-महायागादिकी पद्धतियाँ हैं। उनमें तो आचार्यों का नाम तक भी नहीं हैं। "अमुक याग पद्धति" बस इतना ही लिख-दिया हैं। उससे यदि प्रमाण देना पड़ेतो किस तन्त्र के नाम से दिया जाय? लोगोंका कामहैं तत्व जानलेना और उपासना करना यह होनेसें फिर अधिक की क्या जरुरत? ग्रन्थों की खोज और उनके शोधनादितो गुरूलोगों और आचार्य लोग ही करचुके, फिर उन्होंने वह सब सुगम रुपसे हमलोगों के आगे पद्धतियाँ संकलित ग्रन्थों के रुपमें रख़देया हैं। अब हमलगो उन्हींके अनुसार उपासना कर अपने पूर्वजों के समान शक्तिशाली बने। बिना शास्त्र की सहायता लिए मन्त्र, यन्त्र; पद्धति और क्रम कोई नही बना सकता है। इसमें आपलोग निश्चित रहें। यहाँ मैं जहातक मेरी अल्पबुद्धिको सुझेगा, वहाँ तक शास्त्रवचनका प्रमाण देदुँग, मन्त्रोद्धार, यन्त्रोद्धार और आवरण पूजामें जिस जिसका श्लोकरूप में उद्धार मेरे पास है वह देदूंगा। परन्तु जिस जिसका केवल मन्त्रही जानताहूं उसमें "इतना अक्षरी मन्त्र" लिखदूंगा। मन्त्रोंका स्पष्टीकरण नहीं करूंगा। मेरे पास हस्तलिखित पुस्तकें ही विशेष रुपसें होनेके कारण पृष्ट, पटल और श्लोकाङ्क देनेसे असमर्थ हूं। इसमें क्षमा प्रार्थी हूं। विशेषतः मेरेपास बिना नाम की हस्तलिखित सांकेतिक पद्धतियाँ हैं। उनका प्रमाणतो केवल "आगम वचन" मात्र लिखूँगा। जिसविषयमें स्वयं मेरा अनुभव

नहीं हैं। उसमें अपनी अनभिज्ञता की सूचना देनेमें मैं शर्म भी नहीं मानूंगा।

मैंतो केवल एक मामूली कुलपथानुयायी हूँ। विद्याओंके भेद अनन्त है। केवल महामन्त्रों के भेद सप्तकोटि हैं। उपमन्त्रादि की बात तो दूर रही ऐसा अगाध विषय मुझजैसा अल्पज्ञ क्या जान सकता हैं? उसका कोट्यंश का एक अंशभी साङ्गोपाङ्ग मुझे विदित नहीं हैं। तथापि आर्य भाईयों के संगठन और उनके उपकार के लिए मैं जो जानता हूं, वही लिखकर प्रेम पुष्पाञ्जलि रूपमें समर्पित करके यथावकाश सेवा करता हूं। मैं पहले ही लिख चुकाहूंकि अनन्त शास्त्र होनेके कारण गुरूपरंपरा भेदसे बहुतसे क्रम और बहुतसी पद्धतियाँ हो सकती हैं। मैं तो उसमेंसे केवल अपनी ही गुरूपरंपराकी बात लिख सकता हूँ। अन्य परंपराये मुझे मालूमनहीं है। क्योंकि यह संकेत विद्या है। लिखा भी है कि "संकेतविद्या गुरुवक्त्र गम्या।" इसलिये ब्रह्मपथानुयायी लोगोंको अपने अपने परंपराका यथार्थ ज्ञानकर उपासना करना चाहिए। जैसाकि शुष्क साधक लोगोंका अपने पितृ-परंपरा के मार्ग से और आर्द्र साधकों की अपनी अपनी गुरूपरंपराके मार्गसे चलना परम कर्तव्य हैं। अनेक शास्त्रो के अनेक मतमतान्तर देखके मन ललचाके कभी यह कभी वह करनेसे समय व्यर्थ ही चलाजायगा। इसलिए अपनेही मार्गमें दृढ़ होकर अपने गुरूसे अथवा अपने पितृपरंपरासे मिलीहुई विद्या के आम्नाय, संप्रदाय, संकेत और पद्धतियों के ठीक ज्ञान प्राप्त करके उसे उपासनामें प्रयोग करें। इससे ज्ञानका स्वयं स्फूरण होगा और शक्ति (Will-power)

बढ़जायगी। हमलोगोंका बहुतसा समय व्यवहारी प्रपञ्च में ही व्यतीत हो जाता हैं। उससे जो समय बचता है, उसमें भी महापुरुष की ढोंग रचकर शास्त्रार्थ और वादविवाद में ही लगे रहें तो उपासना किससमय करें ? इस तन्त्रशास्त्रकी मतमें पौराणिकमत जैसा उपासनादि स्वयं आपही करने के बदले कोई एक विप्रको बुलाके कुछ दक्षिणा देके करबाकर आप ऐश आराममें रहने सें सिद्धि नहीं होगी। इस तन्त्रोंक्त उपासनामें स्वयं अपने ही शरीरसे और मनसे करना पडेगा। यानी अपने मेंही निर्भर रहना पडेगा (Self-reliance) अत्यावश्यक है। शक्ति साधन (Will culture or Self culture) यही है। यह साधनमे नाम का और ऐश्वर्य का अभिलाशा तनिक भी नहीं रखनी चाहिए लिखाभी है कि:—

" नरा मां विनिन्दन्तु निन्दन्तु नाम
त्यजत्वम्व वा ज्ञातयः संस्तुवन्तु।
यमोया भटा नारके पातयन्तु
त्वमेका गतिर्मे त्वमेका गतिर्मे ॥ "

ऐसाही साधकका भाव होना पडेगा। अपने गुरू के वचन और संप्रदायमें कुछ भी शङ्का नकरनी चाहिए। शङ्काके विषयमें लिखा है कि:—

" शङ्काभि र्भक्षितं सर्वं ब्रह्माण्डं सचराचरम्।
साशङ्का भक्षिता येन स शिवो नात्र संशयः ॥ "

इसी से अनुभवी गुरूका वचन ही प्रमाण मानकर उपासना करना सर्वोत्तम है। असद्गुरु (जो अपने संप्रदाय,

गुरुपरंपरा, आम्नाय, क्रम, मन्त्रसंकेत, यन्त्रसंकेत ध्यानसंकेत आवरणपूजा भेद इत्यादि से अनभिज्ञ हैं) की सेवा करना तो केवल अपना वित्त लुटाना ही हैं। सिद्धि की बाततो दूर रही। लिखा भी हैं कि ?

" असद् गुरूः स्वयंनष्टः कथं तारयते परम्।"

एक खेदकी बात है कि आधुनिक सभ्यतामें बहुत से आर्य लोग पशुबलि की-निन्दा करते हैं, और उसे हटानेका प्रयत्न कररहें है। वे लोग पशुबलि-निषेध के शास्त्र-वचन पर जोर देकर पशुबलि-विहित शास्त्र वचन की परवाह नहीं करते हैं। यह बात मेरे विचार से ठीक नहीं जँचती क्योंकि " पशुबलि करना उचित नहीं है।" यह बात जिस शास्त्र में लिखा हैं, वह भी ठीक है। परन्तु यह प्रथम भाव (पाशव-कल्प) के उपासकों के लिए लिखी है। (जो उपासना के संस्कारसे शाक्ताभिषेक लेकर शाक्त बनने के समर्थवान हो गये हैं, वेलोग तो पशुको असंस्कृतजीव और अपनेका संस्कृत जीव मान कर द्वितीय भाव (वीर कल्प) में आरुढ़ होतेहैं। तदनन्तर तृतीय भाव याने वीर-दिव्य भाव (कुल कल्प) में पहुच कर वे अपने को भैरव रुप ही मानते हैं।) इन लोगोंके लिए पशुबलि की विधि वेद, तन्त्र और पुराणादि शास्त्रों में देदी गई है। भाव चूडामणि में लिखा है कि:—

" भावस्तु त्रिविधो देव दिव्यवीरपशुक्रमात्।
गुरुव स्त्रिविधा श्चात्र तथैव मन्त्रदेवताः ॥
शक्तिमन्त्रो महादेव विशेषान्मन्त्रसिद्धिदः।

आद्यभावो महादेव श्रेयान्सर्व समृद्धिदः ॥
द्वितीयो मध्यमश्चैव तृतीयः सर्वनिन्दितः ॥ "

अहिंसावादी आर्योंको इतना तो विचार करना ही था कि यह अनुचित विषय होता तो शास्त्रों ने इसे क्यों बताया ? शास्त्रविहित कर्म करने से वेलोग निन्दा करते हैं तो वे वेद-निन्दक और शास्त्रनिन्दक हुए कि नहीं ? वेदनिन्दक लोगों की किस प्रकार आर्योमेंगणना हो सकती है ? वेलोग कहते हैं कि "यह पशुबलि केवल काम्यके लिए है, मुक्ति-साधन के लिए नहीं हैं।" इस विषयमें पुरश्चर्यार्णव के १०५५ पृष्ठ में निम्नलिखित प्रमाण मिलते हैं:--

"बलिभिर्वर्धते ह्यायुर्बलिभिः शाम्यते रूजा।
जयत्यरारीन् बलिभिः प्राप्यते बलिभिर्धनम् ॥
सिद्धिमाप्नोति बलिभिर्बलिभि स्त्रिदिवं व्रजेत्।
निष्कामाणां बलोद्दत्ते प्राप्यो मोक्षोऽपि यज्ञवत् ॥ "

ऐसे प्रमाण बहुत हैं। लेख विस्तार भयसे यहाँ नहीं देता हूँ। पशुबलि शास्त्र-विहित कर्म ही है। यह तो सबलोग जानते ही हैं। फिर इस में निन्दा कैसी ? कोई कोई आर्यलोग तो अपनी निर्जाराय प्रकटकरके कहते हैंकि "यदि मांस भक्षण करना है तो अन्यत्र स्थान में पशुवध करके खाले। पवित्र देव-देवीयों के नाम से पशुवध करके मांस भक्षण क्यों करें? " मेरे विचार सें तो यह एकदम शास्त्रवचन से उलटी बात हुई। क्यों कि शास्त्रमें तो बताया है कि "देवान् पितृन् समभ्यर्च्य खादन् मांसं नदोषभाक्।" इस वचनका अर्थ वे लोग क्या कहेंगे ? कोई-कोई पाशवकल्पका उपासक लोग केवल अपने ही मतसे

उग्र-उग्र स्वरसे दुसरेंकी बात का श्रवणही नहीं करके कहते हैं कि " सुरादर्शनमात्रेण कुर्यात सूर्यावलोकनम्। मांस भक्षणेनो देवि रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ " शास्त्र ने ऐसा बताया है। यह अपवित्र हैं वे बेचारे लोग प्रथम भावमें ही पडरहे हैं फिर अष्ट-पाशसे मुक्त होनेके कर्म्ममेंतो उन लगोंकी दृष्टि तक भीनहीं पहुँच सकी और दंभका पूराशिकार बन रहे हैं तो यह "मद्यमांस का शोधन विधि शास्त्रमे बताया है;" इताना तक भी शायद उन लोगोंको मालुम नहीं होगा तो उनलोगोंको दोष नहीं है। परन्तु मैंयहबताता हूँ कि।

"मांसः शिवः सुराशक्ति स्तद् भोक्ता भैरवस्त्वयम्। "

यह कौलावलीनीर्णय में आगम शास्त्र वचन देदिया है ऐसा अनेक प्रमाण वेद, तन्त्र और पुराणादि शास्त्रों मे लिखा है। मै यहा लेख विस्तार भयसें नही देताहूँ। अब एक विचारणीय बात है। पवित्र और अपवित्र-भेद का निणर्य शास्त्र ही करता है। शास्त्रों केही आधारपर हमलोग पवित्र और अपवित्र मानलेते हैं। देखिऐ, सकल मूत्र अपवित्र मानेगये हैं, परन्तु गोमूत्र अति पवित्र मानागया हैं। वैसे ही गोमय भी पवित्रमानागया है। एवं हमसब आर्यलोग शास्त्र के ही आधार सें चलते हैं, वह नमानेंतो हमलोग विधर्मी बन जायेंगे। फिर मृगनाभि (कस्तूरी) मृग वधके विना कैसे उप-लब्ध होसकेगी ? वह मृगनाभि अहिंसावादी लोग भी अपने इष्टदेवता के पूजन में समर्पण करते हैं, तो जो लोग पशुयागका निन्दा करते हैं, वे लोग किस प्रकार अपने को आर्य सम-झते हैं।

यह तन्त्र-शास्त्र वास्तव में मनो-विज्ञान (occult-Science) शास्त्र है। इसका अभ्यास करना सूक्ष्मदेह याने मनोबुद्धि चित्ताहंकार का वशीकरण करना (Self healing) है। इसलिए बिना अभ्यास के यथार्थ फल नहीं मिल सकता जो गुरू मनोविज्ञान के सम्बन्ध के साथ इस विद्याका उपदेश कर सकताहै वही यथार्थ गुरु बन सकता है। मन्त्र जपने में वह मन्त्रका अर्थ चैतन्यादि मन्त्र-संकेत (Mental-affirmation) जान कर जपना, चाहिए। नहीं तो अनेक कोटि जपने से भी उसको सिद्धि नहीं मिल सकेगी। इस विषय में कुलार्णव तन्त्र में निम्नलिखित वचन हैं कि —

" मनोऽन्यत्र शिवोऽन्यत्र शक्तिरन्यत्र मारुतः।
नसिद्धयन्ति वरारोहे कल्पकोटिशतै रपि॥
मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं योनिमुद्रां नवेत्तियः।
शतकोटिजपेनापि तस्य सिद्धि र्न जायते॥"

फिर मन्त्र क्याहै ? इस विषय में पुरश्चर्यार्णव का ४१ पृष्ठ में लिखा है कि:-

" मननाद्विश्वविज्ञानं त्राणं संसारबन्धनात्।
यतः करोति संसिद्धिं मन्त्र इत्युच्यते ततः॥"

अब मैं क्रमश अपने अनुभव लिखता जाऊँगा और साथ-साथही यथामति व्याख्या भी करता जाऊँगा।

" कालसंकलनात् काली कालग्रासं करोत्यतः। "

कामधेनु तन्त्रमें ऐसा लिखा है। इसलिए काली परब्रह्मस्वरुपिणी अरुपा है। भक्तलोग उसकी जिसरुप में कल्पना करके

पासना करेंगे, वहीरूप धारणकर वह भक्त कि कामना पूर्ण रेंगी। जब कोई रुपकी कल्पना होगी तब " काली " पदके ागे कुछ उपाधि रखके पुकारा जायगा जैसा कि दक्षिणकाली, द्रकाली, गुह्यकाली इत्यादि। इनमें से प्रायसः नवधा कालिओं ा तन्त्रके प्रसङ्गमें जिस्का वर्णनकिया जारहाहो उसमें केवल काली अथवा कालिका " नामसे उनको पुकारा गयाहै। न्य कालियां जैसी नीलाकाली (तारा) प्रपञ्चेश्वरी, रक्त-ाली (महात्रिपुरसुन्दरी), कुब्जाकाली (कुब्जिका) इत्यादि ं तो उपाधियुक्त काली नामसे विशेष नहीं पुकारी जाएँगी, ेवल "काली" अथवा " कालिका " नामसे तो कदापि नहीं। हाकाल संहिता में नवधा कालिओंका वर्णन निम्नलिखित कारका है:--

" काली नवविधा प्रोक्ता सर्व तन्त्रेषु गोपिता।
आद्या दक्षिणकालीच भद्रकाली तथाऽपरा॥
अन्या श्मशान कालीच कालकाली चतुर्थिका।
पञ्चमी गुह्यकाली च पूर्व या कथिता मया॥
षष्ठी कामकलाकाली सप्तमी धनकालिका।
अष्टमी सिद्धिकाली च नवमी चंडकालिका॥"

यह सकल विद्यायोंका वर्णन नीचेनीचेके लेखोंमें देदूंगा। यह, " काली " की. तो. दक्षिणाचार, वामाचार और कौला-चारतीन ही आचार से उपासना हो सकती है। दक्षिणाचार में प्रथम भाव से उपासना होती है वह है पाशवकल्प । यह यह ३ भावके भिषयमें भावचूडामणी मे निम्नलिखित वचन

है । वड्इसवस्पष्टसे " भावस्तु त्रिविधो देव दिव्यवीरपशुक्रमात् । " इत्यादि पूर्वमें ही देचुका हूँ । अब ३ आचार के विषयमें वडवानल तन्त्र में लिखा है कि:-

" योगात् पंचमकाराणां वामहस्तेन पूजनात् ।
जपाद्धोमाच्च वामः स्याद्दक्षिणस्तद्विपर्ययात् ॥
तत्व तर्पणमंत्रं तु वामहस्तेन दक्षिणे ।
दक्ष हस्तेन वामेऽपि विशेषः परिकीर्त्तितः ॥
दक्षवामक्रियायुक्तः कौलश्चोभयमिश्रितः ।
मकाराऽऽवश्यकत्वाच्च दक्षतर्पणपूजनात् ॥
क्वचिद्वामेन देवेशि कौलो मार्ग स्तृतीयकः ॥ "

दक्षिणमार्ग पाशवकल्प तो है ही, परन्तु उसमें भी ३ भाव हैं वहइ प्रथम शुष्कपशुभाव, द्वितीय आर्द्रपशुभाव और तृतीय दिव्यपशुभाव । शुष्कभावमें बडीही निष्ठासे चलना पडता है और पशुयाग से कोसों दूर रहना चाहिए। यह भाव प्रायसः ब्रह्मचारी लोग करते हैं । दूसरा आर्द्र भाव और तीसरा दिव्यपशुभाव में पशुयाग करते हैं परन्तु पंचमकार का प्रयोगनहीं करते हैं परन्तु दिव्यपशुभाव में पंचमकारका प्रतिनिधिका प्रयोग करके कौल मार्ग के सदृश यजनादि कर्म करते हैं । जब यह पाशव कल्पसे उपासना करते करते मनका भाव ठीक होगा तब अन्य आचार में आरुढ़ होना होगा। यदि भाग्यवसात् त्याग और वैराग्य उत्पन्न हो जाएगा तो लम्बी चौडी बात ही नहीं वेदान्त शास्त्रका श्रवण, मनन और निदिध्यासन कर जीवन मुक्त होनेके लिए विहंगममार्ग से चलना योग्यहै । कलि कालमें मनो भाग ही ठीक

ना तो कठिन है त्याग और वैराग्य प्राप्तकरना तो आन- नहीं । इसलिए वामाचार अथवा कौलाचार में आरूढ कर पिपिलिका मार्ग ग्रहण करनाश्रेयस्कर है। पूर्वजन्मके प अथवा किसीके शापसे किसी विप्रका त्याग और वैरा- ग्यका उत्पन्न नही होगा तो कौलधर्म्मका आश्रय लेके पिपि- का मार्ग ग्रहण करना चाहिए । सिद्धान्तसारमें लिखा भी कि:—

" येविप्राः शापनिर्दग्धाब्रह्मकर्म विवर्जिताः ।
तेषां तु कौलमार्गोऽयं भुक्तिमुक्तोस्तु साधनम् ॥
येविप्राः पापसंजाताः शापनिर्दग्ध विप्लुताः ।
तेषां कुलाऽधिकारोऽयं मार्गस्याऽस्य प्रजायते ॥ "

अब किस किस आचारसे उपासना करना चाहिए यह षयमें वडवानल तन्त्रका वचन यह है:—

" पूर्व्वाम्नाये दक्षमार्गो वामः स्यात् पश्चिमे परे ।
दक्षिणोत्तरयो रूर्द्ध्वे मार्गौतौ वामदक्षिणौ ॥
विहाय सर्वं सर्वत्र कौलमार्गः प्रशस्यते ॥ "

यह पूर्वोक्त वचनका अभिप्राय यह हैं कि पूर्वाम्नाय से जो उपासना करते है वह प्रथम दक्षिणाचार से उपासना कर पश्चात् कौलाचार ग्रहणकरें। वैसाहि पश्चिमाम्नायोपासक वाममार्गसे उपासनाकर पश्चात् कौलाचारी बने। फिर दक्षिणाम्नायी, उत्तराम्नायी और ऊर्ध्वाम्नायी लोग अपने अपने रुचिके अनुसार दक्षिण अथवा वाम दोनों में से किसी एक आचार से उपासनाकर कौलाचार ग्रहणकरें । अधराम्नाय में केवल

स उपासना होती है, परन्तु यह आम्नाय बौद्धमतावलम्बी लोगोंकेलिए होनेके कारण मुझे मालूम नहीं है। गणपति, सूर्य शक्ति, शिव और विष्णु यह पंचदेवता भी एकही हैं। य पाचों काली ध्यान, मन्त्र, और यन्त्रका अर्थसे प्रकाका ही उत्पादन होता है। ये पाचोंका ही विवरण आम्नाय विभाजन का वर्णन में लिखूंगा।

उपासना के विषय में प्रथम भाग (शारावकल्प) में अपने को और इष्टदेवको पृथक् समझकर उपास्यदेवको स्वामी' आदि और अपने को दासादि मानकर उपासना करनी चाहिए। परन्तु जो पिता, सखा, भाई इत्यादि भावों से उपासना करते हैं, वे कालीको विष्णुरूप से और जो माता, वहन इत्यादि भावों से उपासना करते हैं। वे दक्षिणकाली, नीलाकाली, रक्तकाली इत्यादि रूपों से उपासना करते हैं। परातन्त्र के चतुर्थ पटल के ४४।४५ श्लोक में लिखा भी है कि:-

" बहुनि भेदरूपाणि कालिकायाः महेश्वरी।
आशासिद्धिप्रदा नित्या कौलमार्गप्रवर्त्तिका॥
महाकुलालिका या सा विष्णुःकालित्वामागताः॥"

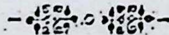
फिर मुण्डमालातन्त्र में भी काली के दशमहाविद्या और विष्णु के दशावतार रूपों में एकत्व का प्रमाण दिया है, जो निम्नलिखित प्रकार हैं-

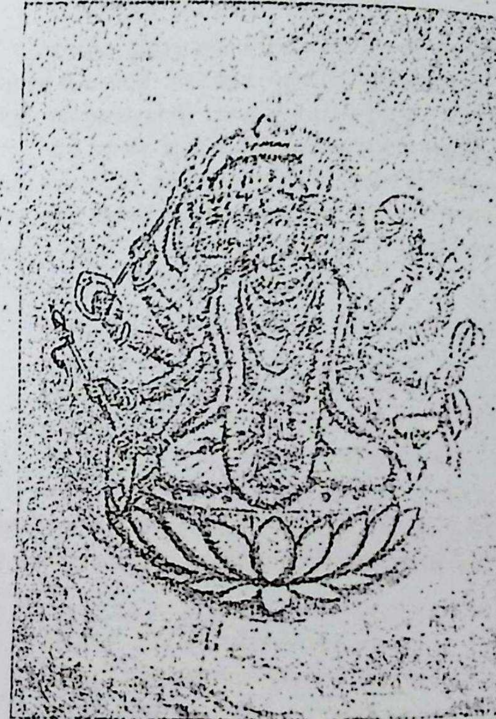
" कृष्णस्तु कालिका साक्षाद् राममूर्तिश्च तारिणी।
वराहो भुवना प्रोक्ता नृसिंहो भैरवीश्वरी॥
धूमावती वामनः स्याच्छिन्ना भृगुकुलोद्भवः॥
कमला मत्स्यरूपः स्यात् कुर्मस्तु बगलामुखी॥
मातङ्गी बौद्धइत्येषा षोडशी कल्किरूपिणी॥"

हमारा शास्त्र अगाध है, परन्तु उसका मार्मिक रहस्य न समझकर हमलोग अनेक मतावलम्बी बन रहे हैं। अपने ही शास्त्रकी हम निन्दा कर रहें हैं, फिर सिद्धि किस प्रकार मिले ? जो वैष्णव हैं वे शाक्तों की निन्दा करते हैं और जो शाक्त हैं वे वैष्णवों की निन्दा करते हैं दक्षिणाचारी, वामाचारी, और कौलाचारी लोगोंमें भी परस्पर विरोध करते हैं। परन्तु उद्देश्य तो एक ही है। केवल श्रेणीका भेद है। यह बात हमलोग नहीं समझते हैं। बौद्धमार्ग पशुवलि का पूर्ण विरोधी हैं, परन्तु उस शास्त्रों भी शाक्तमत में बौद्धतन्त्र के मतसे आर्यतारा की अधराम्नाय से उपासना करके चीनक्रम, महाचीनक्रम से पशुयाग करने की विधि बताई है। ऐसे बौद्धतन्त्र बहुतसे हैं। जो कर्म बहिर्भाव से अपवित्र हैं, वही अन्तर दृष्टि से पवित्र होते हैं। जैसे पशुवलि बहिर्भाव से पाप जैसा प्रतीत होती है। परन्तु अन्तर्भाव से यह परोपकार का काम है। छाग का जन्म ही वधके लिए होता है। हम हिन्दूलोग पशुयाग में उसका वध न करें तो भी उसकी जान नहीं बचेगी। ईसाई आदि अन्य धर्मावलम्बी लोग भक्षण के लिए उसका अवश्य ही वध करेंगे। हम लोगों में से भी भक्षण के लिए बहुत से वृथा हिंसा करेंगे। ईन सब बातोंसे यह विचार करना सरल है कि देव देवीयों के सन्निधान में प्राणत्याग करनेवाले जीवों की पुनर्जन्म की अवस्था अन्य स्थान में प्राणत्याग करनेवाले जीवों की पुनर्जन्म की अवस्था से बहुत उँचे दर्जे की होगी। कोई लोग पशुवलि के विषय में लिख सकते हैं कि " जो लोग पशुवलि करते हैं, क्या उन सब लोगों के अन्तर्चक्षु खुले हैं ?" इनको मेरा जवाफ यह है कि

" जब वे लोग इसे धर्म समझते हैं और यह शास्त्र विहितक भी है तो उन लोगों को इससे पुण्यलब्धि क्यों नहीं ? " शा में नरहत्या पाप है, परन्तु रण के लिए शास्त्र में नरहत्या पुण बताया गया है इसलिए रण में कितनी ही नरहत्या करने प भी वे अपने को धार्मिक समझते हैं। वास्तव में वे धार्मिक भी शास्त्र में लिखा भी है कि " मन एव मनुष्याणां कार बन्धमोक्षयोः "। तब ' पशुबलि से पाप होगा ' इस बात क लेश भी उन लोगों के मन में न होगा तो फिर पाप कैसा अब मैं इतने ही मैं यह पटल समाप्त करता हूं।

इति धनशम्शेर वर्मणासंग्रहित-श्री चान्तिकोपासनादर्पं पूर्व पीठिकानामः प्रथमः पटलः ॥





श्री कुल मार्तण्ड भैरव

* अथ द्वितीयः पटलः *

॥ ॐनमः श्रीपरदेवतायै ॥

अब देव-देवियों की उपासनाभेदका वर्णन करता हूँ। सबसे आगे आम्नायका प्रसङ्ग करता हूं। (आम्नायके ज्ञान विना किसी देव-देवीकी पूजा नहीं हो सकती। क्योंकी प्रत्येक देव-देवी की पूजा में प्रथम श्रीगणपति महाराज की पूजा करना अत्यावश्यक है श्रीगणेशजी का पूजा मन्त्र और ध्यानादि भी आम्नायों में विभाजन किया गया है। इसलिये जिस आम्नायके देव-देवी की पूजा होगी उसी आम्नायका गणपति का अर्चन होगा।) फिर प्रत्येक आम्नाय की हस्तक्रियादि विधियाँ पृथक् पृथक् होती हैं आगे ही लिख चुका हूं कि (आम्नायें १० है उनमें से नैऋत्याम्नाय मुमुक्षु लोगोंके लिए त्याज्य होने के कारण आम्नायों नव (९) ही है। परन्तु शक्ति के विना अन्य देवों को उपाम्नाय (ईशान, आग्नेय और वायव्य) में विभाजन नहीं किया है। इसलिये अन्य देवों का छ ही आम्नायें है) शक्तिसङ्गमतन्त्र में लिखाहै कि:-

"आम्नायो नवधा प्रोक्तश्चोत्तमादिप्रभेदतः।
त्रिभेदे यतु भेदस्य त्रितयं त्रितयं त्रिषु ॥
उत्तमं शृणु तत्रादौ शैवादिदशने नच ।
शाक्तं शैवं वैष्णवं च सौरं गाणपमेवच ॥
बौद्धं च देवदेवेशि दर्शनानिच षट् क्रमात्।
षट्दर्शनस्य परमन्त्रा ऊर्ध्वाम्नाये प्रकीर्तिताः ॥
अनेनैव प्रकारेण पूर्वदक्षिण पश्चिमः ।
उत्तराधेत्यूर्द्धसंज्ञा षडाम्नायाः प्रकीर्तिताः ॥"

बहुत से लोगोंके विचार में "तन्त्र और वेद पृथक हैं, कौलिक और वैदिक पृथक है" यह दृढ हैं। परन्तु यह बडी ही खेदकी बातहै कि वेलोग विना शास्त्रावलोकनकर शास्त्रका मर्मनहीं समजकर यात–बातमें ही उड़ते है। उनलोगों के लिये मैं यहा छोटासा प्रमाण देता हूँ। मेरुतन्त्रमें लिखा है कि:—

"नवेदः प्रणवं त्यक्त्वा मन्त्रो वेदसमन्वितः ।
तस्माद्वेदपरो मन्त्रो वेदाङ्गश्चागमः स्मृतः ॥"

(आगमशास्त्र तन्त्रशास्त्रका पर्याय वाचक शब्द है।("आगम" पदका अर्थ रूद्रयामलतन्त्र इसप्रकार सें लिखंता है कि:—

"आगतः शिववक्त्रेभ्यो गतश्च गिरिजामुखे।
मग्नस्तस्या हृदम्भोजे तस्मादागम उच्यते ॥

इस प्रमाण से रामायण भी आगम शास्त्र याने तन्त्र शास्त्र हैं। रामानन्दी लोग भी तान्त्रिकही है। कौलिकों के विषयमें वही रूद्रयामल तन्त्रमें लिखा हैं कि.—

"कौलिकं कुर्वतः कर्म्म वैदिकंनावधीयते।
विरूद्धादुभयं नष्टं तस्मादेकपथा चरेत् ॥"

इस लिए कौलिक और वैदिक एकही हैं। हाँ बौद्धतन्त्र तो वेद से अलग है ऐसे प्रमाण बहुत हैं। लेखविस्तारभयसे यहाँ थालिपुलाकन्यायसे इतना ही प्रमाण देता हूँ।

अब गणपति के विषयमें मेरेको विशेष मालूम नहीं हैं। मन्त्र ध्यानादि जो जानताहूँ आम्नायों के विवरण में लिखुंगा। फिर सूर्यके विषयमें सूर्यका सकलही भेद दक्षिणाम्नायात्मक होनेके कारण दक्षिणाम्नायका विवरणवाले पटलमें दिया जायगा। सूर्यके विषयमे पुरश्चर्यार्णव में लिखा हैं कि:—

"एक एवास्य चाम्नायो दक्षिणः परिकीर्तितः।
यथाऽयं यवनं विप्रं सममेव करैः स्पृशेत् ॥
उपासना तथैवास्य स्वधर्माचार पूर्विका ।
चतुर्युगेषु प्रत्यक्षो देवोऽयं सर्वं संमतः ॥
सर्वेषा मेव देवानां नेत्रभूतो जगत्पतिः ॥

अब मैं वैष्णव दर्शन के विषयमें वैष्णवों के भेदका वर्णन करता हूं। वैष्णव मार्गमे दशभेद हैं याने १० प्रकार से उपासना होता हैं। इस विषयमें शक्तिसंगमतन्त्रमें लिखा हैं कि:—

वैखानसो भवेदादौ श्रीराधावल्लभ स्तथा।
गौकुलेशो महेशानि तथा वृन्दावनी भवेत् ॥
पंचरात्रः पंचमः स्यात् षष्ठः श्रीवीरवैष्णवः।
रामानन्दी हरिव्यासी निम्बार्कश्च महेश्वरी ॥
ततो भागवतो देवी दशभेदाः प्रकीर्तिताः ॥

अब ये दशभेदों मेंसे किस किस मत किस किस प्रकार के होते हैं। और किस किस प्रकार से उपासना करते हैं। इस विषयका मैं यहां वर्णन करता हूं। यही शक्तिसंगमतन्त्र में लिखा है कि:—

[१] " वैखानसादिदीक्षाचैर्भूषित स्मार्त वैष्णवः ॥ "

अब ये वैखानस लोग वेद सें भी अधिक स्मृतिशास्त्र से चलते हैं। इनलोगों के किसी किसी गुरुके परंपरा में तो वेदोक्त गायत्री भी नहीं जपते हैं। इन लोगोंका शुक्र पश्वाचार है।

राधावल्लभ। शक्तिसंगमतन्त्र में लिखा हैं कि:-

" वैष्णवाचारनिरतो विष्णुमन्त्रैकपारगः।
अनन्यचेताः शान्तात्मा विष्णुचिन्हपरायणः ॥

श्री राधावल्लभो देवि ···। "

ये राधावल्लभ लोग राधाकृष्णका उपासना करते हैं, और दिव्यपशुभाव से उपासना करते हैं।

(२) गोकुलेश शक्तिसंगमतन्त्रमें लिखा है कि:—

" ········ गोकुलेशं श्रृणु प्रिये।

नानाभरणसंपन्नो नाना सौगन्ध्य भूषितः॥
सर्वांकुलं श्रीगणतः कलिकृष्ण स्वरूप धृक् ॥
शरीरमर्थं प्राणांश्च तन्निवेदन कारकः।
अन्तः शक्तिपरादेवि बहिर्वैष्णवरूपधृक् ॥
गन्धर्वाचारनिरतो लतावेष्टित तत्परः।
संप्रदायो गोकुलेशः सर्वसिद्धिकरो भुवि ॥"

इस गोकुलेश मतमें सकल राजसी ठांटसें और कौलाचार स पंचमकार प्रयोग करके उपासना होगा। " लतावेष्टित तत्परः " इसपदसे पंचमकारका प्रयोग और कौलिकाचारका संकेत है। इसपदका मतलबहै कुलसन्ध्या यह विधि अत्यन्त गोप्य होनेके कारण मैं यहाँ नहीं ले सकुंगा कौलिक लोग स्वयं ही समझलेंगे। विना मकार कुलसन्ध्याविधि नहीं हो सकती। फिर " गन्धर्वाचारनिरतो " यहपद राजसी ठाँटका सूचक और उपास्य देवता गोपालसुन्दरी हैं। ऊर्ध्वाम्नायसे उपसना होगी। गन्धर्वक्रमके विषयमें पुरश्चर्यार्णव का पृष्ठ ८४७ में लिखा हैकि:-

"गन्धर्वाख्यक्रमेणैवे सुन्दरी सिद्धिदायिनी।
गन्धर्वाख्यक्रमो देवि कथ्यते श्रृणु सन्निहितम् ॥
भ्रूमध्ये कुंकुम देवि तन्मध्ये मलयागुरू।
अष्टगन्ध त्रिपुंड्रस्य मध्येकस्तूरि कान्वितम् ॥
सुगन्धिश्वेतलोहित्यपुष्पैः संभूषितो नरः।
अष्टगन्धस्य धूपेन नानासौगन्ध्यभूषितः ॥
रक्तमाल्याम्बरधरो मुक्ताहारोपशोभितः।
पूर्णाभिषिक्ते शिरसि तेनतत्र नमुण्डनम् ॥
सदा चोष्णोदकैः स्नायात् तदभावे यथोदकैः।
गृहं चित्रैरतु संचित्रं दर्पणोदरसन्निभम् ॥
वितानध्वजभूषाढ्यं घण्टा नादोपशोभितम्।
पंचयादित्रसंयुक्तं नानाघोषसमन्वितम् ॥
अन्तः सूदमाम्बरैर्युक्तं स्वर्णपात्रादि रञ्जितम्।
ग्रैवेयवलयाङ्गुल्य भूषणैर्भूषितः सदा ॥
नानामधुरभोज्यैश्च दुग्धपानैरनेककैः।
नानाभोगेन युक्तोऽयं गन्धर्वाख्यक्रमो भवेत् ॥ "

(४) वृन्दावनी शक्तिसंगमतन्त्र में लिखा है कि:—

" विगताशः प्रसन्नात्मा विष्णुभक्तिपरायणः ।
कामिनीसङ्गचपलो वनक्रीडा विनोदधृक् ॥
सौगन्ध्यभूषिततनुः स्त्रीध्यानैकपरायणः ।
विष्णुसारूप्यतत्वज्ञः प्रोक्तो वृन्दावनी शिवे ॥"

यह वृन्दावनी मतमें प्रकृतिर्विष्णु यानी वंशीधर द्विभुज-कृष्णका उपासना दिव्य पशुभाव से होती है। पूर्वोक्त गोकुलेश, राधावल्लभ और यह वृन्दावनी इन ३ मतों से मिश्रित कर किसी किसी ने " राधा कृष्ण " नामक झंडापंडा मत निकाला है। इस मतका मैं अनभिज्ञ होनेके कारण इस के विषयमें मैं कुछ भी नहीं लिखसकता हूं। प्रकृतिर्विष्णु के विषयमै महाकाल संहितामें लिखा है कि:—

" स्त्रीणां त्रैलोक्यजातानां कामोन्मादैकहेतवे ।
वंशीधरः कृष्णदेवः प्रकृतिर्विष्णुरूच्यते ॥
उभयोर्मेलनाद्देवि शिवशक्तिर्हि गीयते ।"

फिर शक्तिसंगमतन्त्रमें लिखा हैं कि:—

" कदाचिदाद्या ललिता पूंरूपा कृष्णविग्रहा ॥
लोकसंमोहनार्थाय स्वरूपं बिभ्रति परम् ॥
वेणुनादसमारम्भसर्वसंमोहनक्षमम् ।
कदाचिदाद्या श्रीकाली शैवताराऽस्ति पार्वती ॥
कदाचिदाद्या श्रीतारा पुंरुपा रामविग्रहा ।
रावणस्य वधार्थाय देवानां स्थापनायच ॥
दैत्यसंहरणार्थाय पुंरूपं बिभ्रती परम् ।

आद्या तारा महाशक्तिः सैव काली महेश्वरी ॥
या महा वैष्णवी माया सा महा सुन्दरी मता ।
नैव स्त्री न पुमानेषा नैव चापि नपुंसकम् ॥
यद्यच्छरीरमाधत्ते युज्यते तेन तेन सा " ।

(५) पंचरात्र। इस विषयमें शक्ति संगमतन्त्रः में लिखा हैकि:-

" पञ्चरात्रव्रतं प्राप्ता पञ्चरात्राः प्रकीर्तिताः ।
दिनपञ्चकपर्यन्तं शैवानाम त्रिलोचनाः ॥

यह मततो श्लोक से ही स्पष्ट हुवाहै । पंचरात्र है दिनु पंचक। इसमें शुष्क पशुभाव से उपासना होगी।

(६) वीर वैष्णव। इस विषयमें गोपालपद्धतिमें लिखा हैकि:-

कायेन मनसा वाचा भजते विष्णुमेव यः।
स वीर वैष्णवः प्रोक्तो देवतान्तरानन्दकः ॥
चराचरमिदं विश्वं जानन्नारायणात्मकम् ।
कंचिन्न द्वेष्टि यः सोऽयमुत्तमा वीरवैष्णवः॥

यह मत तो श्लोक सेही स्पष्ट हुवाहै। परन्तु येलोग किस भाव से उपासना करते हैं वह मैं नहीं जानताहूँ। शायसः यति लोगों में यह मत मिलती हैं।

(७) रामानन्दी। इस विषय मे गोपालपद्धति में लिखाहैंकि:-

हृदयाम्भोजमध्यस्थे श्रीरामे परमात्मनी ।
आनन्दं भजते यस्तु रामानन्दी सउच्यते ॥

यह लोग शुष्कपाशवकल्पसें कट्टरवनके उपासना करते है। भाषामें इनलोगोंको वैरागी भी कहते है। गुरु

है कि कोई-कोई यह मत वीरकल्प और कुलकल्पसे भी उपासना करते है। परन्तु इसविषयमें मेरेको कुछभी मालुम नहीं है।

(८) हरिव्यासी इसविषयमें शक्तिसंगमतन्त्रमें लिखाहै कि:-

'पाप संहरणाशक्तो विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः।
यमादि नियमैर्युक्तो युक्ताचार परायणः॥
सोपयोगफलग्राही परकार्यपरायणः ।
हरिव्यासी महेशानि शिवशक्तिस्वरूपधृक् ॥"

इनलोगोंकोभी पाशवकल्पोक्त यम नियममें खुब ध्यान देकर उपासना करना चाहिये ।

(६) निम्बार्क। इस विषयमें शक्तिसंगमतन्त्रमें लिखा हैकि:-

" नित्यार्चनकमाशक्तः स्वतन्त्रैकपरायणः।
बाह्यपूजादिनिरतोऽनन्य भक्तः प्रसन्नधीः॥
आर्यपक्षान्वितः स्वच्छः स्वच्छन्दाचारतत्परः।
स्वतन्त्रः स्मार्तविद्वेषी निम्बार्को भगवान् हरिः ॥

ये लोग केवल वेदके सिवाय स्मृति और पुराण बिलकुल नहीं मानते हैं। और आर्द्र पाशव कल्पसे उपासना करते हैं

(१०) भागवत। इसमत के विषयमें शक्तिसंगमतन्त्रमें लिखा है कि:—

विष्णु भक्तैकनिपुणो विजितात्मा प्रसन्नधीः।
स्मार्त गर्वान्वितो देवि तदन्याचार तत्परः ॥
केवलं विष्णुभक्तिज्ञः प्रोक्तो भागवतः शिवे ॥"

ये लोग स्मृति और पुराणके आधार पर चलते हैं। श्रीमद्भागवतका एकादशस्कन्धमें भागवत मत के विषयमें लिखा है कि:—

" सर्व भूतेषु यः पश्येद् भगवद्भाव मात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥"

इस भागवतमें भी दो भेदहैं । उत्तम भागवत और प्राकृत भागवत । ये दोनो का लक्षण श्रीमद्भागवतके एकादशस्कन्ध में इसप्रकार लिखा है कि:—

१. " गृहीत्वाऽपीन्द्रियैरर्थान यो नद्वेष्टि न हृष्यति।
विष्णोर्मायामिदं पश्येत् सवै भागवतोत्तमः॥"
२. " अर्चाया मेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते ।
नतद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः॥"

वैष्णवों के यही १० भेद हैं। वैष्णवों का श्रेयस्कर पाशव कल्पही है। यह पाशव कल्पका आचार क्याहै इस विषयमें भावचूड़ामणि में लिखा है कि:—

' पशुभावं प्रवक्ष्यामि श्रृणुवत्स समाहितः।
यथाविधि पशोर्विद्यां गृहीत्वा भावतत्परः॥
प्रथमं पूर्व सेवार्थं यत्नतः शुद्धिमाचरेत।
नमस्य भोजनं कुर्यान् नस्त्रियं मनसा स्मरेत्॥
नपरद्रव्यलोभीस्याद्म भोगे मानसं भजेत्।
सिन्धुतीरे पर्वते वा कानने च शुरालये ॥
बिल्वमूले विविक्ते च पुण्यक्षेत्रे च शोभने।

न म्लेच्छदर्शनं कुर्यात् कौटिल्यं यत्नतस्त्यजेत् ॥
देवता शुभवर्णातु ध्यातव्या सुसमाहितैः॥
त्रिसन्ध्यं देवपूजातु त्रिसन्ध्यं जपमाचरेत्।
रात्रौ मन्त्रंचमालाश्च स्पृशेन्नैव कदाचन॥
नमंत्र मुच्चरेद् भुक्त्वा मौनी स्यात्सर्व कर्मसु॥
पूर्वकाले स्त्रियं नैव गच्छेत्साधक सत्तमः।
पुष्पं गन्धं जलंचैव स्वयमानीय पूजयेत ॥
मैथुनं तत्कथालापं तद्गोष्ठीं परिवर्जयेत्।
ऋतुकालं विना चापि न गच्छेत् स्त्रियमादरात्॥
पुराणश्रवणे श्रद्धा वेदवेदार्थ तत्परः।
नरात्रौ भोजयेद्विद्वान् ताम्बूलं परमेश्वर ॥
गुरुणा यद्यदादिष्टं तत्सर्वं यत्नतश्चरेत् ॥
स्वजातकुशुमं चैव हेतुद्रव्यं च भैरवम्।
स्पृष्ट्वा तथा समाघ्राय पञ्चगव्येन शुध्यति॥
रक्तवस्त्रं न गृह्णियाद्देवी भक्तिपरायणः।
विष्णुतन्त्रेषु कल्पाणि तदनुष्ठान मेवच॥
कार्यंवीरकथालापं न कुर्याद् वीरवन्दिते।
नित्यश्राद्धं गयाश्राद्धं सन्ध्या वन्दनमेवच॥
तीर्थस्नानं पीठदेशगमनं धर्म तत्परः॥

फिर मेरुतन्त्रमें लिखा है कि:—

"देवस्थाने गुरुस्थाने श्मशाने च चतुस्पथे।
पादुकासन विण्मूत्रमैथुनानि विवर्जयेत् ॥
प्रमत्तामन्त्यजां कन्यां पुष्पितां पतितस्तनीम्।

विरूपां वामुक्तकेशीं कामार्तां च ननिन्दयेत्॥
कन्यायोनौ पशुक्रीडां दिग्वस्त्रां प्रकटस्तनीम्।
नालोकयेत् परद्रव्यं परदारांश्च वर्जयेत्॥
अन्यगोगुरुदेवाग्निकुशपुस्तकसंमुखम्।
नैव प्रसारयेत् पादौन चैतानि विलंघयेत्॥
आलस्यमदसंमोहशापपैशून्यविग्रहान्॥
असूया मात्मसन्मानं परनिन्दाश्च वर्जयेत्॥"

पाशव कल्पमें ऐसे नियम के साथ चलना अत्यावश्यक है। फिर नियमसे अतिरिक्त सिद्धि कैसी हो सकी। और इस नियम में रहना कलिकालमें बड़ा ही कठीन हैं, फिर त्याग और वैराग्य मिलना तो असंभव जैसा है। इस लिये श्रीशंकरजी ने रुद्रयामल तन्त्रमें बताया है कि:—

कृते श्रुत्युक्तमार्गः स्यात् त्रेतायां स्मृति भाषितः।
द्वापरे वै पुराणोक्तः कलावागम संभवः ॥

इसलिये जो लोग वैष्णव पथानुयायी हैं और त्याग और वैराग्य प्राप्त नहीं करसके तो वेलोग मन्त्र, देवता और गुरुओं के दोष न देवें। वह निजी ही दोष है क्योंकि वह कलि के प्रभाव से शास्त्रोक्त नियम की पूरी पालना नहीं करसके। तथापि हतचित्त नहोके विहंगम मार्गका आशा छोडकर पिपिलिका मार्गका अनुयायी बनें। पिपिलिका मार्गके विषयमें आगममें लिखा है कि "अनेक जन्म संसिद्ध स्ततो याति परां गतिम्।" इसलिए मुमुक्षु वैष्णव जो पिपिलिका मार्गमें चलने को कृतनिश्चय होगया है वह जिस अवतारका विष्णु-

का दीक्षा ग्रहण किया है उसी रूपका ऐक्य जो महाविद्या है (मुण्डमाला तन्त्रोक्त वचन दश महाविद्या के साथ विष्णुका दशावतारका ऐक्य का पूर्व ही देखुका हूँ) वही महाविद्याके दीक्षा लेकर वीरभावमें अवलंबन करसकता। यदि केवल विष्णुका दीक्षा है तो शैवमार्ग में अवलंबन करें। यदि श्रीकृष्ण किसीका इष्ट देव है तो वह दक्षिणकालीका दीक्षा ग्रहण कर वीरबनें। अथवा गोपाल पद्धत्युक्त गोपालक्रम से गोपालसुन्दरी (सुन्दरी गोपाल) का दीक्षा लेकर कौल भावमें आरूढ़ हो सकता है। वीरभावके विषयमें भाव चूडामणिमें लिखा है किः—

" यद्देशे विद्यते वीरस्तत्कुलं वाऽपि भैरव।
नचमारीभयं तत्र नचराजभयादिकम् ॥
सुमंगलं सदा तत्र धनपुत्रविवर्धनम्।
लक्ष्मीस्तत्र महादेव सुस्थिरा भवति ध्रुवम् ॥
मन्त्रः स्वप्नप्रबोधिन्या अवश्यं वृक्षमूलके।
योजनीयः प्रयत्नेन नचविघ्नः प्रजायते ॥
नान्यवीरस्यत योग्यं ब्रह्मणैर्दैवतैरपि।
यागिनीभिने लुप्तंच तन्न पापेनलिप्यते ॥
यत्र तत्र कुजे वारे श्मशानगमने कृते।
पूजाफलं भवेत् तत्र सप्तवासर सम्मितम् ॥
चतुर्दश्यां गतेतत्र पक्ष पूजाफलं लभेत्।
न गच्छेन्नार्यंतः स्थाने पशुरेव न संशयः ॥
नास्त्यस्माद्धिकं देव इति चिन्तापरायणः।
मद्येन द्रव्यभोक्ता च भवेत् कुलपरायणः ॥

साधके क्षोभमापन्ने मम क्षोभः प्रजायते।
तस्मात्पत्नी वीरवरो भवेद्भोगयुतः सुखी ॥
भोगेन मोक्षमाप्नोति भोगेन कुलसाधनम्।
विना हेतुमना स्याद्य क्षाभयुक्तो महेश्वर ॥
न पूजा मम संपर्क न ध्यानमनुचिन्तनम्।
तस्माद्भुक्त्वा च पीत्वा च पूजयेत् परमेश्वरीम् ॥
नात्रप्रच्युति दोषोऽस्ति नापरं दोषभूषणम्।
यद्यत्करोति निद्राति यत् करोति यदर्चति ॥
तत्सर्वं कुलरूपंच ध्यात्वा च विहरेत् सुखी।
एकाकी निर्जने देशे श्मशाने पर्वते वने ॥
शून्य गेहे नदीतीरे निः सङ्गो विहरेन्मुदा।
वीराणां जपकालस्तु सर्वकालः प्रशस्यते ॥
सर्वदेशे सर्वपीठे कर्तव्यं च न संशयः ॥ "

(वीरभाव और दिव्यभावमें विशेष भेद नहीं है। वाममार्गी लोग केवल वीरभावसे ही उपासना करते है और दक्षमार्गी केवल पशुभावसे ही उपासना करते हैं। परन्तु दिव्यभावसे उपासना कौलाचारसे ही हो सकती है अन्तः और बहीर्क्रिया दोनों ही को केवल कौलाचारही साथ साथ ले सकते है। दिव्यभाव के आचार वीरभावका आचार जैसा ही है केवल हस्तक्रिया में पूर्वोक्त वचनानुसार " दक्षवामक्रिया युक्तः कौलश्चो भयमिश्रितः। " भेदस्पष्ट मालूम होता है कि दिव्यभाव कौलों का भाव है। दिव्यभाव और वीरभाव के लक्षण का भेद के विषयमें भावचूडामणिमें लिखा है किः—

" दिव्य वीरेन भेदोऽस्ति यद्भेदं तत् तु कथ्यते ।
शान्तो विनीतो मधुरः कलालावण्यसंयुतः ॥
दिव्यस्तु देववत् प्रायो वीरश्चोद्धतमानसः ॥ "

"देववत्" का मतलब ही है मनोभाव ठीक रखना । विशेपतः दिव्यभावके विषयमें वही भावचूडामणिमें ही लिखा है किः—

" प्रथमो दिव्यभावस्तु कथ्यते श्रृणु सादरम् ।
यद्वर्णंदेवता यत्र तत्तेजः पुञ्जपूरितम् ॥
तेजोमयं जगत्सर्वं विभाव्यं मूर्तिकल्पनम् ।
तत्तन्मूर्तिमये मन्त्रे स्वेन स्वेनैव वा पुनः ॥
आत्मानं तन्मयं दृष्ट्वा सर्वभावं तथैवच ।
तत्सर्वं योषिति ध्यात्वा चिन्तये द्यतमानसः ॥
अशेष कुलसंपन्ना नानाजाति समुद्भवा ।
नानादेशोद्भवा वाऽपि गुणलावण्यसंयुता ॥
द्वितीय वत्सराद्ध्र्वं यावत्स्यादष्टमाब्दकम् ।
तावत् कुमारी विज्ञेया मन्त्रयन्त्रफलप्रदा ॥
कुमारी पूजना च्चैव कुमारी भोजनादपि ॥
एकद्वित्र्यादिवीजानां फलदा नात्र संशयः ।
ताभ्यः पुष्पं फलं वाऽपि अनुलेपादिकं तथा ॥
वलि प्रियंच नैवेद्यं दत्वा तद्भावपूरितः ।
दत्वा तदङ्ग आत्मानं वलि भावे विचेष्टितम् ॥
ताभिः प्रायः कथालापं क्रीडा कौतूहलादिकम् ।
यथा तथा तत्प्रियकृत् कृत्वा सिद्धीश्वरो भवेत् ॥

तस्मात् षोडशपर्यन्त युवतीति प्रचक्ष्यते ॥
तत्र भावप्रकाशश्चेत् सद्भावः परमो मतः ।
दूषितव्याः प्रयत्नेन अज्ञातास्ता नकारयेत् ॥
एतते कथितो देव दिव्यभावः सुखावहः ।
नदेयो यस्य कस्यापि पशो गोप्यः प्रयत्नतः ॥"

फिर भावके विषयमें बृहद्वडवानल तन्त्रमें लिखा हैकिः—

" भावस्तु त्रिविधो देवि दिव्यवीर पशुत्रयम् ।
नभावेन विनादेवि तन्त्रमन्त्राः फल प्रदाः ॥
कौलानां दिव्यभावोऽस्तु वीरभावोऽस्तु वामिनाम् ।
पशुभावोऽस्तु देवेशि दक्षमार्गाभि गामिनाम् ॥ "

अस्तु अब मैं प्रथम शैवोंका भेदका यथाज्ञान वर्णन करता हूं ! तत्पश्चात् फिर यह भाव और आचारों के विषय में कुछ कुछ लिखूँगा ।

शैवोंका भेद ७ प्रकारका होता है। इस विषयमें शक्ति संगम तन्त्रमें लिखा है। किः—

" शिखी मुण्डी जटी चैव द्विश्रिदण्डी क्रमेणच ।
एकदण्डो महेशानि वीरशैवस्तथैवच ।
सप्त पाशुपताः प्रोक्ताः ॥ "

(१) अथ सबसे प्रथम शिखी का वर्णन शक्ति संगम तन्त्रमें इस प्रकार लिखा है किः—

" अथ पाशुपतानां च लक्षणं शृणु पार्वति ।
शिखी पाशुपतो देवि शिखासूत्र धरः शुभः ॥
समाधि नत्परो देवि समाधौ शिवपोठ धृक् ।
रुद्राक्षं च तथा भस्म लिङ्गं शैवाऽभिदं प्रिये ॥
प्रशान्तात्मा शान्तचित्तो ब्रह्मचारी प्रकीर्तितः ॥ "
मतं श्रीबिन्दु मालिन्याः समाश्रित्य प्रतिष्ठितः ॥"

यह मत द्विजके शिवाय शूद्रादिकेलिये नही हैं । खास करके ब्रह्मचर्याश्रम के लिये द्विजों को पशुभावसे उपासना करने को कहा है । परन्तु बहुतसे गृहस्थाश्रमी द्विज और उनकी भार्यायें भी यह मत ग्रहण करते हैं । कहाँ का किस वचन प्रमाण से वे लोग इसमतको अपनाते हैं । वह मेरेको मालूम नहीं है । इसलिये मैं उसका प्रमाण नहीं देसकता हूं ।

(२) मुण्डी शक्तिसंगमतन्त्रमें लिखा है किः—

" मुण्डी त्रिशद्विधो देवि तारासूक्ते प्रकाशितः ।
तत्र पाशुपताचार संपन्नो मुण्डितो भवेत् ॥

इन मुण्डीलोगोंमें ३० भेद हैं वहसब शिखासूत्र परित्याग-करनेवाले यतिलोगहैं ।

(३) जटी का लक्षण शक्तिसंगमतन्त्र में लिखा हैं किः—

" त्रिजटैक जटाधारी तथा चक्रजटाधरः ।
नग्नस्तपस्वी शान्तात्मा देहक्लेशपरायणः ॥
कर्मत्रितयसंपन्नो जटी पाशुपतः स्मृतः ॥ "

(४) द्विदण्डी के लक्षण वही शक्तिसंगमतन्त्रमें लिखा है कि-

" द्विदण्डी तु महेशानि वाङ्मनो दण्ड संयुतः ॥

येलोग सब अन्तर्याग वाले हैं । आर्द्र और दिव्यपशुभाव से उपासना करते हैं ।

(५) त्रिदण्डी के लक्षण शक्तिसंगमतन्त्र में लिखा हैकिः-

" कायवाङ् मनसां दण्डी, त्रिदण्डी परिकीर्तित " ॥

ये लोग भी अन्तर्याग वाले है । आर्द्र और दिव्यपशुभावसे उपासना करते हैं ।

(६) एकदण्डी के लक्षण शक्ति संगम तन्त्रमें लिखा हैकिः-

" मनोमात्रस्य दण्डोयः एकदण्डी-प्रकिर्तितः ॥ "

ये लोग वीरभाव तथा दिव्यपशुभावसे केवल भक्ति योगसे उपासना करते हैं ।

(७) वीरशैव के लक्षण शक्तिसंगमतन्त्र में लिखा है किः-

-" केवलं शिवसंपन्नः स्वस्य देवस्य निन्दकः ।
वीरशैव इति ख्यातः ··· ··· ··· ॥ "

ये लोग शुष्कपाशवकल्पसे उपासना कर सकते हैं, परन्तु पाशुपतत्रय ग्रहण करनेवाले में से कोई पशु तथा कोई कौलहोते हैं। वैष्णव लोग शैवमत ग्रहणकर सकते हैं । क्यों कि शिव और विष्णुका ऐक्य है । इस विषयमें शक्तिसंगमतन्त्रमें लिखा है किः—

" एक स्मिन् समये पूर्वं विष्णुरूपावुभावपि ।
विष्णु स्वरूपसिद्ध्यर्थं तपस्तेपे हरःस्वयम् ॥

शिवस्वरूपसिद्ध्यर्थं तपस्तेपे हरिः स्वयम् ।
षड्वृन्द युगसंख्यातमुमो तपःपरौ शिवे ॥"

फिर रुद्रयामल तन्त्रमें भी पंचदेवोंका ऐक्य बताया है कि:-

"गणेशार्कहरीशानां दुर्गारूप सरस्वती ।
महाश्यामा महाविद्या पूजनीया यथा क्रमम् ॥
नकुर्यादृ भेदमेतेषां कौलिको वैष्ण वस्तथा ।
गणेशार्कहरि शानदुर्गाणां परमार्थवित् ॥
पूजयेदैक्य भावेन देवीं भक्तश्च बुद्धिमान् ।
देवीचक्रेऽर्चयेत् सर्वान् शिवलिङ्गेऽथ वाशिवे ॥
शालग्रामशिलायां वा सूर्यपीठेऽथ वा शिवे ।
श्रीगणेश्वर चक्रेवा नभेदं कारयेत् सुधी ॥
भेदं वै कुरुते यस्तु स शैव शिवहा भवेत ॥"

ऐसा है तो भी वैष्णव दर्शनसे शैवदर्शन उच्च श्रेणी के होनेके कारण वैष्णव शैव बन सकता है, परन्तु शैव वैष्णव नहीं बन सकता । यह श्रेणीयों के विषयमें मेरुतन्त्रमें लिखा है कि:—

"सर्वेषामुत्तमो वेदो वेदाद्वैष्णवमुत्तमम् ।
वैष्णवादुत्तमः शैवं शैवादक्षिणमुत्तमम् ॥
दक्षिणादुत्तमं वामं वामात् सिद्धान्तमुत्तमम् ।
सिद्धान्तादुत्तमं कौलं कौलात् परतरंनहि ॥"

पिप्पिलिका मार्गका क्रम है। यहां वेद पदसे त्याग और वैराग्य रहित वक वेदान्तियोंका वेदान्त दर्शनका सूचक है।

...भगा प्रथम वेदमाता गायत्री उपनयनमें ग्रहण कर उनकी ...पासना करनेकी सूचना है । क्योंकि वैष्णवाचार से लेकर ...ाचार तक सकल चारोंमें ही वैदिक मत परिपूर्ण है वेदके ... आधार से ये सब मतमतान्त निकले है। वेदकेऽनभिज्ञ ...न होना तो अवैदिक बौद्ध मार्ग होजाताथा । पूर्वोक्त श्लोकमें ...क्षिणसे उपर वाम लिखा है तो भी दक्षिण वाम नहीं बन ...कता, और वाम दक्षिण नहीं बन सकता । ये दोनोंही सि...द्धान्ती बनके कौल बनना चाहिए । इस विषयमें मेरुतन्त्र...में लिखा है कि:—

"वाममार्गी यदा दक्षं प्रविशेत्तत्सुरैः सतु ।
विघ्न्यन्ते पिड्यते चापि नसिद्धि मधिगच्छति ॥
दक्षमार्गी यदा वामं प्रविशेत्तत्सुरास्तथा ।
लोकद्वयाद्धापयन्ति तं प्रसन्ति च वामिनम् ॥
तस्मात् स्वकुलमार्गं तु ज्ञात्वा कुर्यादुपासनम् ॥"

अब किस किस आम्नायमें किस किस मार्ग से उपासना करनी चाहिये । इस विषयमें चड्वानलतन्त्रमें लिखा है कि:-

"पूर्वाम्नाये दक्षमार्गो वामः स्यात् पश्चिमे परे ।
दक्षिणोत्तरयोरूर्ध्व मार्गौ तौ वामदक्षिणौ ॥
विहाय सर्वं सर्वत्र कौलमार्गः प्रशस्यते ॥'

इसका अभिप्राय यह है कि पूर्वाम्नायमें दक्षिणाचार से, पश्चिमाम्नायमें वामाचार से, फिर दक्षिणाम्नायमें उत्तराम्नायसे और ऊर्ध्वाम्नायमें वाममार्ग अथवा दक्षिणमार्ग दो में से एक से उपासना किया करें। सकल ही आम्नायों में

कौलमार्ग से उपासना हो सकती है। फिर किस किस आम्ना-यमें उपासना करनेका फल क्या क्या होगा इस विषयमें मेरु तन्त्र में लिखा है कि:-

दक्षिणोपासकः कालो ऊर्ध्वः सायुज्यमाप्नुयात् ।
देवतायास्तथा पूर्वः सारूप्यं लभते परम् ॥
सामीप्यं चोत्तरो लोके पश्चिमस्तद्वे द्विफं फलम् ।
लाभस्त्यागश्चोपकारो ह्यधोमार्गोऽप्युदर्कयुक् ॥"

यहाँ "काल" पद महाकालस्वरूपी शिवका सूचक है। क्यों कि एक आगम वचन है कि:-

"पञ्च लक्षण संयुक्तो ब्राह्मणः काल एव सः।"

यहाँ भी "काल" का अर्थ शिव में ही घटादिया है। फिर दूसरे आगम में लिखा है कि:—

"यत्प्रसादादहंत्वं च जातः काल इवाऽपरः।"

यथार्थ उपासक के मनका संकल्प किस प्रकारका होना चाहिये इस विषयमें सिद्धान्तसार तन्त्रमें लिखा है कि:—

"निन्दन्तु बान्धवाः सर्वे त्यजन्तु स्त्रीसुतादयः ।
जना हसन्तु मां दृष्ट्वा राजानो दण्डयन्तु वा ॥
रोगदारिद्य दुःखार्तः पीड़ितोऽप्यनिशं त्वहम् ।
लक्ष्मी स्तिष्ठतु वा यातु न मुञ्चामि पदं त्विदम् ॥
एवं यस्य दृढा भक्तिः स भक्तः सिद्धिमाप्नुयात् ॥"

अब एक याद रखने की बात है कि कौलों का कुलमार्ग का कल्पका कुलकल्प और आचारका कुलाचार कहते हैं।

यदि "कुल" पदके आगे "स्व" अथवा "निज" पद रह-जाएगा तो अपने पितृपरंपरागत का अर्थ समझा जाएगा। जैसाकि "कुलधर्म"। इसका अर्थ है कौलिक का धर्म, फिर "स्वकुलधर्म" इसका अर्थ है अपने अपने पितृपरंपरागत धर्म। इसके विषयमें बहुतसा भ्रम होता है। कुल या कुलस्त्री है कुण्डलिनी शक्ति, अकुल या कुलगुरु है सहस्रारस्थ पर-शिव कुलदेवी है सच्चैतन्य शक्ति (Will power) कुण्डलीका आरोहावरोह क्रमको कुलाकुल क्रम भी कहते हैं। अब मैं (दक्षिणाचार, वामाचार और कौलाचार या कुलाचार) आचार त्रय विषयका आगम वचन देदूंगा उससे पाठक वर्गों को यह सब विदित होगा। रुद्रयामल तन्त्र में लिखा हैं कि:--

"प्रथमो दक्षिणाचारो वामाचारो द्वितीयकः ।
तृतीयस्तु कुलाचारो विधिं तेषां शृणुप्रिये ॥

१. दक्षिणाचार-प्रभाते स्नानसंध्यादि मध्यान्हे जपमीश्वरि ।
और्णमासनमातमार्थं भक्तं पायसशर्करम् ॥
माला रूद्राक्षसंभूता पात्रं पाषाणसं भवम् ।
भोगः स्वक्रियकान्ताभिर्दक्षिणाचार इत्ययम् ॥

२. वामाचारः-वामाचारं प्रवक्ष्यामि श्रीदुर्गासाधनं परम् ।
यंविधायकलौ शीघ्रं मान्त्रिकः सिद्धिभाग् भवेत् ॥
माला नृदन्तसंभूता पात्रं कापालमुण्डकम् ।
आसनं सिद्धचर्मादि कङ्कणं स्त्रीकचोद्भवम् ॥
द्रव्यमासवतत्वाख्यं भक्तं मांसादिकं शिवे ।
चर्वणं बालमत्स्यादि मुद्रा वीणारवः कथा ॥
मैथुनंपरकान्ताभिः सर्ववर्णं समानता ।

वामाचार इति प्रोक्तः सर्व सिद्धिप्रदः शिवे ॥
अन्यथा सिद्धिहानिः स्यान्मन्त्रस्यास्य कुलेश्वरि।
३. कुलाचारः-कुलाचारं प्रवक्ष्यामि सेव्यं योगिभिरुत्तमैः ॥
कुलस्त्रियं कुलगुरूं कुलदेवीं महेश्वरि।
नित्यं यत् पूजयेद्विश्व स कुलाचार उच्यते ॥
कुलस्त्रियं शिवे ज्ञात्वा नुत्वा नत्वाम हेश्वरि।
हठादानीय संपूज्य ततो भोगं विधायच ॥
तेजसा तर्पयेद्देवीं श्रीदुर्गां चक्रनायिकाम्।
नीलकण्ठं च विधिना जपं कुर्याद्विशेषतः ॥
तत्पूर्वकं चरेद्धोमं कुलकान्तां विभूषयेत्।
पानैः पेयैस्तथा भक्ष्यैः संतर्प्य कुलयोषितम् ॥
प्रत्यहंवै चरेदेवं कुलाचार इति स्मृतः ॥ "

फिर मेरुतन्त्र में लिखा है कि:-

" विनासनं विनास्नानं गन्धपुष्पाक्षतान्विना।
विना मद्य विना मांसं कुलपूजां न कारयेत् ॥ "

परा तन्त्रमें दक्षिणाचार के लिए नहीं परन्तु वामाचार और कौलाचार के लिए लिखा है कि:—

" मद्यं मांसन्तथा मत्स्यं मुद्रा मैथुनमेवच।
एतैः पञ्चमकारैस्तू रहितं पूजनं वृथा ॥"

फिर बृहद्बडवानल तन्त्रमें कुलधर्म के विषयमें लिखा है कि:-

" अन्तर्यागं वहिः पूजां मकारैः पंचकैर्युताम्।
जपं त्रिरूचणं कार्यं निशि भोजन मेवच ॥

सएवकुलधर्मात्मा शिवोन्योभूतले भवेत्
तस्माच्छुभकरो धर्मः कुलधर्मः सनातन ॥ "

फिर वही मेरुतन्त्रका प्रकाशान्तर में लिखा है कि:—

" पेयं मद्यं पलं खाद्यं समालोक्यं प्रियामुखम्।
इत्येवाचरणं श्रेष्ठं पामराः प्रवदन्ति च ॥
मद्य पानेन मनुजो यदिसिद्धिं लभेत चेत्।
मद्यपानरताः सर्वे किं सिद्धा न भवन्त्युमे ॥
मांसभक्षणमात्रेण यदिपुण्या गतिर्भवेत्।
क्रव्यादानां तथा मोक्षो मांसादन्यो न युज्यते ॥
स्त्रीसंभोगेन देवेशि यदि मोक्षोऽभिजायते।
तदा सर्वेऽपि मुक्ताः स्युः कस्य जन्म भविष्यति ॥
कृपाण धारागमनाद् व्याघ्रकर्णावलं वनात्।
भुजङ्ग धरणान्नून म शक्यं कुलवर्त्मनि ॥ "

यह कुलमार्ग ऐसा कठीन है। इसलिए एकदम उपर पहुँचने की आशा न लेकर धीरे धीरे पिप्पिलिका मार्गसे क्रमदिक्षा के क्रम से चलनेसे यह कुलमार्ग शिथिल होजायेगा। क्रम के विषयमें तन्त्रचिन्तामणिमें लिखा है कि:—

" सुन्दरी तारिणी काली क्रमदीक्षाभिगामिनी।
क्रमपूर्णा महेशानि क्रमाच्छंभुर्भविष्यति ॥ "

फिर वडवानल तन्त्रमें भी लिखा हैं कि:—

" गणपतिसूर्याग्नीशाश्च कथ्यन्ते द्विषु चक्रमात् ।
देशिकेन क्रमशोन दीयन्ते यद्विधानतः ॥
क्रमदीक्षेति सा प्रोक्ता व्युत्क्रमो नैव सिद्धिदः ।
क्रम दीक्षाविधिर्यत्र तत्र पूर्णाभिषेचनम् ॥

अब मैं इतने मेंही यह पलट समाप्त करके, नीचेके पटलो में मन्त्रविद्यादिका वर्णन करूँगा ।

इति श्री धन शम्शेर धर्मणा संग्रहित श्रीतान्त्रिको पासनादर्पणे उपासना भेदनियमादिनामो द्वितीयः पटलः ॥

—:०:—



श्री भुवनेश्वरी

॥ अथ तृतीय पटलः ॥

॥ ॐ नमः श्री परदेवतायै ॥

अब इस पटलमें पूर्वाम्नाय विषय के मेरे अनुभव का वर्णन है। यह पूर्वाम्नाय में विरिञ्चिगणपति हैं। उनके विषयमें स्वतन्त्रतन्त्र में लिखा है कि:—

"अथातः संप्रवक्ष्यामि पूर्वाम्नाय गणेश्वरम्।
काश्यां वल्लभेशसौम्यस्थं विरिञ्चिगणनायकम्॥
ह्रीं विरिञ्चि पदं प्रोक्त्वा ङेऽन्तं गणपतिं ततः।
प्राग्वद्वरवरे त्यादि षड्विंशत्यक्षरो मनुः॥
मुनिर्गणक आख्यातो गायत्री छन्द ईरितम्।
वेद पञ्चेषु पञ्चेषुद्वार्णैरुक्तं षडङ्गकम्॥"
"इत्यादि" का संकेत "सर्वजन में वशमानय स्वाहा"

यह द्वादशाक्षर प्रत्येक गणेशके तन्त्रो में प्रायसः होता है। अब यह विरिञ्चि गणपतिका ध्यान यह है कि:—

"अस्य ध्यानं प्रवक्ष्यामि ह्यूर्ध्वमूर्ध्वकरेषु च।
वीजपूर गदां चापं चक्रं मालां च दक्षिणे॥
वामे पद्मं पाशवाणान् दन्तं रत्नाढ्यकुंभकम्॥
पद्मद्वयकरां पुष्टि मङ्कस्था मरुण प्रभाम्॥

आलिङ्गयन्तमरुणं स्रवन्मदकपोलकम्।
त्रिनेत्र पीतवसनं रथमुत्थापित ध्वजम् ॥
किरीटिनं कुण्डलिनं ध्यायेदेवं गजाननम् ॥"

अब शक्तियों के विषयमें लिखता हूं। शिव और विष्णु के विषयमें भी साथ साथ ही लिखूंगा। वडवानलतन्त्रमें लिखा है कि:-

" पूर्णेशी भुवनेशानि ललिता चापराजिता।
लक्ष्मीः सरस्वती वाणी पारिजातपदाङ्किता ॥
अन्नपूर्णा जयाद्याश्च पूर्वाम्नायसमाश्रिताः॥"

फिर परातन्त्रमें लिखा है कि:-

" जया जयन्ती विजया अजिता नारसिंहिका।
व्याघ्रेश्वरी करालाच राजेशी भुवनेश्वरी॥
रक्तदन्ता विशालाक्षी कामेशी भुवनेश्वरी।
विद्युज्जिह्वा डामरेशी नादेशी नृत्यनायिका॥
नन्दी चैव महाकाल भृङ्गानी च कुलालिका।
नर नाटेश्वरी तत्र चतुः पञ्चरसान्विता॥
बहुभेदादेव देवी भैरवाष्टकमातृका।
नाटेश्वरेति विख्यातो भैरवश्च कपालकः॥
क्षेत्रविघ्नेशवटुकयोगिनी मातृकाष्टकाः।
ब्रह्माण्याद्याः प्रपूज्यन्ते कुमारी कामदा सदा॥
नृत्यमाने पुरादेवे भैरवो मातृभिर्वृतः।
नृत्य भैरवनामातु पूर्वचक्रे व्यवस्थिताः॥"

पूर्णेशी का ध्यान परातन्त्रमें इस प्रकार है कि:—

" पूर्णेश्वरी महोग्रासा पूर्वाम्नायः प्रकीर्तिता।
चक्रेश्वर्यातु वक्ष्यामि साधकानां हिताय वै॥
ध्यानं तु चित्तेऽधिष्ठाय ध्यातव्या परमेश्वरी।
इन्द्रनीलसमप्रख्या दशदोर्दण्डधारिणी॥
वरा भयकरं रम्यं शक्तिशूलकपालकम्।
डमरूं चाक्षमालां च शक्तिं चैव कराम्बुजैः॥
इक्षुचापं शरंचैव खड्गहस्त सुशोभिनीम्।
महा प्रेतो परिगतौ सूर्यचन्द्रासनस्थिता॥
वासुकी शङ्खपालौ तौ द्वौकर्णौभूषिताङ्गतौ।
अनन्तहार मालाच हारा लङ्कार भूषिता॥
विशाल त्रयनेत्रा च चन्द्रार्द्ध कृतशेखरा।
एषा पूर्णेश्वरी देवी हाहारावरवप्रिया॥
पूर्णेश्वरीति विख्याता साहंकार रजोयुता।
गिरौपूर्णालये पीठे लक्ष्मीवनश्मशानके॥
इन्द्रेणाराधिता नित्या बहुरूपावतारिणी।
पूर्वाम्नायेति विख्याता पूर्वे देवर्षिपूजिता॥
ईश्वरी सर्वदेवानां महाभाग्य हरावहा।
नानारूपधरा नित्या बहुरूपावतारिणी॥"

इन के मन्त्र बहुत हैं उनमें से जो मेरेको मालूम है वह मैं देता हूं।

" पूर्णेश्वरी मनुं वक्ष्ये पूर्वाम्नायसुसिद्धिदम्।
तारो माया रमाकामो नमोऽन्तश्चपडर्णकः।
मुनिर्ब्रह्मा भवेदस्य छन्दोत्रुष्टुप् च देवता॥

"पूर्णेश्वरो च बीजं तु लज्जा शक्तिर्हरिप्रिय।
कामन्तु कीलकः प्रोक्तः पुरुषार्थचतुष्टये॥
षड्दीर्घभाजालज्जातु षडङ्गेषु प्रकितिंतः॥

इस मन्त्रमें अनुकल्पसे अन्नपूर्णा केही ध्यान करते हैं। पूर्णेश्वरी वास्तवमें अन्नपूर्णा केही नामान्तर है। पूर्वोक्त ध्यान भी अन्नपूर्णा केही ध्यानान्तर है। मैं यहाँ पूर्वोक्त वडवानल तन्त्रोक्त वचनानुसार नामके क्रमानुसार वर्णन कररहा हूँ, जब अन्नपूर्णा की वारी आयेगी तब यथार्थ वर्णन कियाजाएगा। पूर्वोक्त नामावली में उन्मनी का नाम नहीं दिया गया है। तथापी पूर्वाम्नाय की आद्यविद्या उन्मनी ही है। पूर्वाम्नाय के क्रमदीक्षा के विषयमें वृहद्वडवानल तन्त्रमें लिखा है कि:-

"पूर्वाम्नाये चोन्मनो च पुर्णेशी भुवनेश्वरी।
द्वीपशाम्भवकं दिव्यं लिङ्गमूले व्यवस्थितम्॥"

यह क्रम पूर्ण करके पूर्णाम्नाय की सर्वाधिकार दीक्षा मिलेगी। अब उन्मनीका मन्त्रोद्धार इस प्रकार का है कि:-

"मायया पुटितां छुन्मनीत्यक्षरो मनुः।
ऋषिः शक्ति स्तथा छन्दो गायत्री देवता शिवे॥
उन्मनी च द्विरावृत्या कुर्यादङ्गानि षट्क्रमात्॥"

फिर उनका ध्यान यह है कि:-

"उद्यद्भास्वत्समाभां विजितनवजयामिन्दुखण्डावनद्ध।
द्योतन्मौलिं त्रिनेत्रां विविधमखिलसत्कुण्डलां पन्नगांश्च॥

हारग्रैवेयकाञ्चीगुणमणिवलयाद्यैर्विचित्राम्बराढ्या-
मम्बां पाशाङ्कुशाढ्या भयवरदकरा मुन्मनीं तां नमामि॥

अब इस आम्नायमें आद्यविद्या उन्मनी, द्वितीया विद्या पूर्णेश्वरी अथवा अन्नपूर्णा और तृतीया विद्या भुवनेश्वरी हैं। इसलिए उन्मनीका जितना मन्त्र ध्यानादि के भेद है उनमेंसे किसी एकका मन्त्र गुरू मुखसे ग्रहण किया हो तो अन्य पूर्णेश्वरी अथवा अन्नपूर्णा और भुवनेश्वरी के सिवाय अन्य पूर्वाम्नायात्मक मन्त्र सब केवल दक्षिणा मूर्तिद्वारा ग्रहण करके स्वयं उपासना भी करसकते अन्य लोगोंको भी देसकते हैं। उसमें गुरुकी जरुरत नहोगी। इस प्रकार ही पूर्णेशी अथवा अन्नपूर्णा की दीक्षा के बाद केवल भुवनेश्वरी के सिवाय अन्य विद्याओंकी दीक्षा, फिर भुवनेश्वरीकी दीक्षाके पश्चात पूर्वाम्नायके अन्य सकल मन्त्र दक्षिणामूर्ति गुरुसे होसकतेहै। जब पूर्वाम्नायका सर्वाधिकार कूटाक्षर का ग्रहण और पूर्वाम्नाय सर्वाधिकार दीक्षाका ग्रहण होगा तब पूर्वाम्नायका सकल मन्त्रोंका पूर्णाधिकार होजायगा। यह सकल तन्त्रोंका अभिप्राय है। अन्य अन्य आम्नायोंमें भी ऐसाही है। क्रमदीक्षाका क्रम अपने अपने गुरुपरंपरा के अनुसार पृथक् पृथक् वहुत प्रकारका होता है। यहाँ मैं केवल वृहद्वडवानलतन्त्रोक्त क्रम देरहा हू। क्यों कि अन्य क्रम मुझे मालूम नहीं हैं। परन्तु कोई क्रमतो अवश्यही ग्रहण करना चाहिए। एक खेदकी बात है कि वहुतसे लोग अपने अधिकार का विचार न करके वर्णाभिमान से केवल ग्रन्थावलोकन के भरसे दुर्गमं।

दीक्षा प्रदान करते हैं । तो शिष्योंको कैसे सिद्धि होसकेगी। जब सिद्धि नहोगी तब वेलोग शास्त्रपर अश्रद्धा करके हँसी उडाने लगेंगे तो किस प्रकार हमारेशास्त्र औ धर्म की उन्नती होगी। इसी कारणसे हमारे शास्त्र लोपहोरहे हैं। अस्तु अब किस प्रकार दक्षिणमूर्ति गुरुसे मन्त्रान्तर ग्रहणकरना चाहिए इस विषयमें मेरु तन्त्रमें लिखा है कि:—

" अथ तान्त्रिक मन्त्राणां दीक्षां शृणु गुरूं विना।
शुक्लपक्षे त्रयोदश्यां चन्द्रतारावलान्विते ॥
गत्वा च दक्षिणामूर्त्तेः सन्निधौ पूजयेच्चतम्।
कलशस्थापनं कृत्वा तदग्रे चोपरि क्षिपेत् ॥
तालपत्रे मनुं लेख्यं मन्त्रदेवं च पूजयेत् ।
देवो गुरुरिति ध्यात्वा मन्त्रं व्यक्तं तु वाचयेत् ॥
अष्टोत्तरशतं चैतन्मंत्रग्रहणमुच्यते।
एतत् तत्वं समाख्यातं गोप्यं मातरि जारवत् ॥
गुरौ लोभादयो दोषास्तस्मादुद्विजतं मनः ।
अतः शास्त्रगुरुं कृत्वा दक्षिणामूर्तितो मनुः ॥

अर्थात शुक्लपक्ष की त्रयोदशीमें शुभदिन प्राप्तकर तालपत्रमें मन्त्र लिखकर कलशकेउपर रखकर पूजाकर दक्षिणामूर्ति गुरु के भी पूजनकर स्वयं मन्त्र पढकर ग्रहण करें तत्पश्चात् १०८ जपभी करें।

अब पूर्वोक्त वडवानलतन्त्रोक्त नामावलीमें "भुवनेशानी" यह पद "भुवनेश्वरी" पदका पर्याय वाचक है। फिर उसकेवाद ललिता का नामदिया है। फिर परातन्त्रोक्त

नामावलीमें दो जगहपर भुवनेश्वरीका नाम दियागया है। इसका मतलब यह है कि पूर्वाम्नाय की तृतीयाविद्या भुवनेश्वरी भी ३ क्रममें विभाजित कीगई है। एकाक्षरी, त्र्यक्षरी और पञ्चाक्षरी। यह सब भुवनेश्वरी ही है, तथापि उनके नामके पर्याय वाचक नाम देदिया है। वहहै एकाक्षरी भुवना, त्र्यक्षरी गुरुपरंपरा भेदसे भुवनेशी अथवा ललिता और पञ्चाक्षरी भुवनसुन्दरी। पाठकवर्गोंको यह समझना होगा कि मन्त्रका और ध्यानका आन्तरीक अर्थ विल्कुल एकही होता है। इसलिए प्रत्येक मन्त्रका प्रत्येक ध्यान होता है। परन्तु यन्त्रका केवल भावार्थ ही मन्त्र के साथ मिलने के कारण सकलही भेदोंका एक ही यन्त्र भी हो सकता है। गुह्यकाली के विना अन्य विद्यायों के पूजन यन्त्रोंमें ऐसा ही है। परन्तु धारण यन्त्र तो अनेक प्रकारका होसकता है। अब भुवनेश्वरी यानि भुवना की एकाक्षरीमन्त्र ध्यानादि इस प्रकारका हैं कि:—

" अथ वक्ष्ये जगद्धात्रीमधुना भुवनेश्वरीम् ।
यस्याद्योऽपि यां ज्ञात्वा लेभिरे श्रियमूर्जितम् ॥
नकुलीशोऽग्नि मारूढो वामनेत्रार्धचन्द्रवान् ।
बीजं तस्याः समाख्यातं सेवितं सिद्धिकांक्षिभिः॥
ऋषि शंक्तिर्भवेत् छन्दो गायत्री देवता मनोः।
कथिता सुरसंघेन सेविता भुवनेश्वरी ॥
षड्दीर्घयुक्त वीजेन कुर्यादङ्गानि षट्क्रमात् ॥

अस्या ध्यानम्:-

" उद्यदिन द्युतिमिन्दुकिरीटाम्।
तुङ्गकुचांनयनत्रययुक्ताम् ॥

स्मेरमुखीं वरदाङ्कुशपाशा-
भीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम् ॥"

अब त्र्यक्षरी भुवनेश्वरी याने भुवनेशी को दो प्रकार इस तरहका हैं। एक के मन्त्रध्यानादि यह हैं कि.—

"वाग्बीजपुटिता माया विद्येयं त्र्यक्षरीमता।
मध्येन दीर्घयुक्तेन वाक्पुटेन प्रकल्पयेत् ॥
"अङ्गानिजातियुक्तानि क्रमेण मनुवित्तमः॥"

अस्या ध्यानम्:-

"श्यामाङ्गीं शशिशेखरां निजकरैर्दानंचरक्तोत्पलम्।
रत्नाढ्यं चषकं परं भयहरं संविभ्रतीं शाश्वतीम् ॥
मुक्ताहारलसत्पयोधरनतां नेत्रत्रयोल्लासिनीम्।
वन्देऽहं सुरपूजितां हरवधूं रक्तारविन्दस्थिताम् ॥"

मन्त्रान्तरम्:-

"अनन्तो विन्दुसंयुक्तो मायाब्रह्माग्नितारवान्।
पाशादित्र्यक्षरोमन्त्रः सर्ववश्यफलप्रदः॥
ऋष्याद्याः पूर्वमुक्ताः स्युर्बीजैनाङ्गक्रियामता ॥"

अस्याध्यानम्:-

"वराङ्कुशौ पाशमभीतिमुद्रां करैर्वहन्तींकमलासनस्थाम्।
बालार्ककोटिप्रतिमांत्रिनेत्रां भजेऽहमाद्यां भुवनेश्वरींताम् ॥

(अब "ललिता" नाम से जगदम्बाको दो आम्नायों में श्रीशंकरजीने विभाजित करदिया हैं। एक पूर्वाम्नायमें दुसरी ऊर्ध्वाम्नायमे। "ललिता" शब्द "सुन्दरी" शब्दका पर्याय

वाचक शब्द है। इसलिए "ललिता शब्दसे जब त्रिपुरसुन्दरी समझि जायगी तब वह श्रीविद्याललिता होगी, उनका वर्णन ऊर्ध्वाम्नायका पटलमें देदूंगा। जब वही "ललिता" पदके भुवनसुन्दरी यानि भुवनेश्वरी समझि जायगी तब वह भुवनेश्वरीललिता होगी। यह पूर्वाम्नायात्मिका ललिता का मन्त्र त्र्यक्षरी है। उनके मन्त्र ध्यानादि इसप्रकार के हैं कि.-

"वाग्भवं शम्भुवनिता रमाबीज त्रयात्मकम्।
मन्त्रं समुद्धरेन्मन्त्री त्रिवर्गफलसाधनम् ॥
षड्दीर्घभाजा मध्येन वाग्भवाद्येन कल्पयेत्।
षडङ्गानि मनोरस्य जातियुक्तानि मन्त्रवित् ॥"

अस्या ध्यानम्:-

"सिन्दूरारुणविग्रहां त्रिनयनां माणिक्यमौलिस्फुरत्।
तारानायकशेखरां स्मितमुखीमापीनवक्षोरुहाम् ॥
पाणिभ्यां मणिपूर्णरत्नचषक रक्तोत्पलं बिभ्रतीम्।
सौम्यां रत्नघटस्थरक्त चरणां ध्यायेत् परामम्बिकाम् ॥

अब भुवनेश्वरी का पञ्चाक्षरी मन्त्र याने भुवन सुन्दरी के मन्त्र का वर्णन करता हूँ। भुवनेश्वरीका महामन्त्र यही है। इसमें ही ६ ओं आम्नाय बीज विद्यमान है। इन के मन्त्र ध्यानादि इस प्रकार के हैं।

"वाणी माया रमाचैव शारदा भुवनेश्वरी।
एताभिर्भुवनेश्वर्या पञ्चाक्षरमनुर्भवेत् ॥
महाविद्या ह्यसौवत्स गुप्ता कुलवधूरिव।
भुक्तिमुक्ति प्रदाविद्या न प्रकाश्यो कदाचन ॥"

तस्या ध्यानम्:-

" भजे भुवन सुन्दरी मरुणनील शुभ्रानन-
त्रयां त्रिनयनाम्बुजां धतवरत्रिशूलाङ्कुशाम् ॥
सुपाशडमरूकरामभयदां सरोजस्थिताम् ।
स्मितां शशीधरां परामरुणवस्त्र भूषोज्ज्वलाम्॥ "

उन्मनी के सकल भेदों का और भुवनेश्वरी के सकल भेदों का भैरव सदाशिव ही है। केवल अपने अपने गुरुपरंपरा भेद से मन्त्र ध्यानादि पृथक हैं। सदाशिव पूर्वाम्नायात्मक हैं। सदाशिव का मैं जितना भेद जानता हूं वह यहाँ देता हूं। वह ऐसा है कि:-

" अथवक्ये महेशस्य मन्त्रान् सर्वार्थ सिद्धिदान्।
यैः पूर्वमृषयः प्रोक्ताः शिवसायुज्यमञ्जसा ॥
हृदयं वपरं साक्षि लान्तोऽनन्तायुतो मरुत्।
पञ्चाक्षरो मनुः प्रोक्तस्तारावोऽयं षडक्षरः ॥
वामदेवो मुनिश्छन्दः पङ्क्तिरीशोस्य देवता।
षड्भिर्वर्णैः षडङ्गानि कुर्यान्मन्त्रस्य देशिक ॥

अस्य ध्यानमः-

" ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसम्।
रत्ना कल्पो ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् ॥
पद्मासीनं समन्ता स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिंवसानम् ।
विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं निखिल भयहरंपञ्चवक्त्रंत्रिनेत्रम् ॥"

अन्तरम्:-

षडक्षरः शक्तियुक्तः कथितोऽष्टाक्षरो मनुः ।
ऋषिश्छन्दः पुरा प्रोक्तो देवतास्या उमापतिः ॥
अङ्गानि पूर्वमुक्तानि सोममीशं विचिन्तयेत् ॥"

अस्य ध्यानम्:-

बन्धूकाभं त्रिनेत्रं शशिशकलधरं स्मेरवक्त्रं वहन्तम् ।
हस्तैः शूलं कपालं वरदमभयदं चारुहारं भजामि ॥
वामोरुस्तंभगायाः करतलविलसच्चारुरक्तोत्पलाया ।
हस्तेनाश्लिष्टदेहं मणिमयविलसद्भूषणायाःप्रियायाः ॥

अन्यातरम्:-

" सान्तः सद्यान्तसंयुक्तो बिन्दुभूषित मस्तकः।
प्रसादाख्यो मनुः प्रोक्तो भजतां सर्वसिद्धिदः ॥
षड्दीर्घयुक्तबीजेन षडङ्गविधिरीरितः ।
वामदेवो मुनिश्छन्दः पङ्क्तिर्देव सदाशिवः।
ईशानादीन्यसेन्मूर्ति रङ्गुष्ठादिषु देशिकः।
ईशानाख्यं तत्पुरुषमघोरं तदनन्तरम् ॥
वामदेवाह्वयं सद्यमाद्यं बीजं क्रमाद्विदुः ॥ "

अस्य ध्यानमः—

" ततः समाहितो भूत्वा ध्यायेदेवं सदाशिवम्॥
मुक्तापीतपयोदमौक्तिकजपावर्णैर्मुखैः पञ्चभि-
स्त्र्यक्षैरञ्चितमीशमिन्दुमुकुटं पूर्णेन्दुकोटिप्रभम्।
शूलं टङ्कृपाणवज्रदहनान् नागेन्द्रघण्टाङ्कुशान्।
पाशंभीतिहरं दधानममिता कल्पोज्वलंचिन्तयेत् ॥

मन्त्रान्तरम्:—

" तारोमायावियद्बिन्दुमनुस्वरसमन्वितम् ।
पश्चाद्दस्समायुक्तो वसुवर्णो मनुर्मतः ॥
पश्चाक्षरोक्त वत्कुर्यादङ्गन्यासादिकंबुध. ॥"

अस्य ध्यानम्:—

" वन्देसिन्दूरवर्णं मणिमुकुटलसच्चारुचन्द्रावतंसम् ।
भालोद्यन्नेत्रमीशं स्मितमुखकमलं दिव्यभूषाङ्गरागम् ॥
वामोरून्यस्तपाणे स्तकण कुवलयं संदधत्याप्रियायाः ।
वृत्तोत्तुङ्गस्तनाग्रे निहितकरतलं वेदटङ्केष्टहस्तम् ॥"

अथ भुवनेश्वरी के सकल भेदोंका श्रीभुवनेश्वरी का यन्त्र जिसको पूर्वाम्नायका श्रीयन्त्र भी कहते हैं वह इस प्रकार का है कि:—

" पद्ममष्टदलंबाह्ये वृत्तषोडशभिर्दलैः ।
विलिखेत् कर्णिकामध्ये षट्कोणमतिसुन्दरम् ॥
चतुरस्रं चतुर्द्वारमेव मण्डलमालिखेत् ।
पूर्वाम्नायात्मकमिदं श्रीयन्त्रं भुवनात्मकम् ॥
(भुवनायाः आत्मकम् इत्यर्थः)

तस्यावरणपूजा:—

" गुरुपंक्ती प्रपूज्यादौ कर्णिकायां पुनर्यजेत् ।
हृल्लेखां गगनां रक्तां तथाचैव करालिकाम् ॥
महोच्छुष्माश्च पञ्चैता मध्ये पूर्वादिके यजेत् ।
षट्कोणे चैव गायत्रीं ब्रह्माणं पूर्व कोणके ॥

नैरृत्ये चैव सावित्रीं विष्णुं वायव्यके पुनः ।
सरस्वतीं च रुद्रं तु वह्निकोणे श्रियं ततः ॥
धनपतिं पश्चिमेतु रतीं च स्मरमीशके ।
पुष्टिं गणपतिं चैव पूजयेत्साधकोत्तमः ॥
पार्श्वयोश्च शंखनिधिं तथा पद्मनिधिंततः ।
केशराग्रविनिकोणानि षडङ्गं च प्रपूजयेत् ॥
ततोऽष्टदलमध्येतु पूजयेदष्टशक्तयः ।
अनङ्गकुसुमा चैव ह्यनङ्गकुसुमातुरा ॥
अनङ्गमदना पश्चा दनङ्गमदनातुरा ।
ततो भुवनपाला च पुन र्भुवनवेगिनी ॥
शशिरेखा पुन श्चेति ख्याताः दिव्याष्ट शक्तयः ।
करालीं विकरालीं च ह्य माञ्चैव सरस्वतीम् ।
श्रियं दुर्गामुषां लक्ष्मी श्रुतिञ्चैव स्मृतिं धृतिम् ।
श्रद्धां मेधां मतीं कान्ति चार्यां मिन्दुदलेयजेत् ॥
अनङ्गरूपां देवेशि ह्यनङ्गमदनां ततः ।
अनङ्ग मेखलां चैव पत्राग्रे परिपूजयेत् ॥
तेषामस्त्राणि तद्बाह्ये पारम्पर्येण पूजयेत् ॥ "

(जैसा जिस आम्नायकी शक्ति है उनका भैरव रूप शिव उसी आम्नायका होता है, वैसा ही दशमहाविद्याओं में जिन आम्नायकी विद्यामें विष्णुका जिस अवतार का ऐक्य पूर्वोक्त मुण्डमाला तन्त्रमें बताया है वह विष्णुका अवतार उसि आम्नायात्मक होगा। इसलिए भुवनेश्वरी और वराह के ऐक्य के कारण वराह भगवान पूर्वाम्नायात्मक हैं,) उन का मन्त्र ध्यानादि इस प्रकारका है।

" अथातः सम्प्रवक्षामि वराहाक्षरं परम् ।
ॐ भूर्वराहाय नमो मुनिर्ब्रह्मा समीरितः ॥
जगती छन्द उद्दिष्टं वराहो देवता स्मृतः ।
पदैः समस्तमन्त्रेण पञ्चाङ्गानि प्रकल्पयेत् ॥

अस्य ध्यानम्—

" कृष्णाङ्गं नील वस्त्रंच मलिनं पद्म संस्थितम् ।
पृथ्वी शक्तियुतं ध्यायेच्छंखंचक्राम्बुजं गदाम् ॥
भूलक्ष्मी कान्ति रतिभिः समन्तात् परिवारितम् ॥"

(इस प्रकार वराहजी के मन्त्र ध्यानादि के भेद बहुत हैं अपने अपने परंपरा भेदसे उपासना किया करते हैं। किसीकिसी परंपरामें वराहजी को पशुबलि भी समर्पण करतेहैं। हमारे नेपाल में भी कहीं कहीं वराहजीके पीठमें पशुबलि की प्रथा परापूर्व कालसे चलरही है। फिर हमारे नेपाल एक प्रमुख तान्त्रिक पीठ होनेके कारण यहाँ गणेशजी की प्रत्येक मूर्ति और पीठोंमें पशुबलि की प्रथा प्राचीन कालसे चलरही है।) अब वराहजी के विषयमें कुछ कहना हैं। आगम में ऐसा कहाहैकि

" शक्त्या विना शिवे शुष्के नामधाम नविद्यते।
शिवं विना चित्कलानां फलात्वं नकचिद् भवेत् ॥

इसलिए शिव के बिना शक्तिकी और शक्ति के बिना शिव की उपासना कदापि नहीं होसकती। शक्त्युपासक शिवको और शिवोपासक शक्तिको गौणरूप से उपासना करतेहैं। इस विषयमें विशेष गुरुवक्त्रसे ही जानलेना चाहिये। वराहजीका

शक्ति धरणी है। यह भी अपने भैरव वराहजी केही सदृश पूर्वाम्नायसे ही पूजित होता है। उनके मन्त्र ध्यानादि इस प्रकार के हैं कि –

" हृदयं भगवत्यै स्याद्धरण्यै तदनन्तरम् ।
धरण्यन्तं धरेद्वन्द्वंठद्वयान्तोऽयं ध्रुवादिकः ॥
एकोनविंशत्वर्णाढ्यं धराहृदयमीरितम् ।
वराहोऽस्य मुनिः प्रोक्त श्छन्दो निवृदुदारितम् ॥
देवता सर्वभूतानां प्रकृतिर्वसुधा मता ।
हृदयं त्रिभिराख्यातं चतुर्भिः शिर ईरितम् ॥
त्रिभिः शिखा समुद्दिष्टा पंचभिः कवचं मतम् ।
द्वाभ्यां नेत्रं समाख्यातं द्वाभ्यामस्त्रं पुनर्भवेत् ॥
मन्त्रवर्णैः षडङ्गानि कुर्यादेवं विधान वित् ॥"

अस्या ध्यानम्:-

" श्यामां विचित्रांशुकरत्न भूषणाम् ।
पद्मासनां तुङ्गपयो धराननाम् ॥
इन्दीवरं द्वे नव शालिमञ्जरीम् ।
शुकं धानां वसुधां भजामः"

अब पूर्वोक्त वडवानलतन्त्रोक्त नामावली के अनुसार (अपराजीता भी पूर्वाम्नायमें है।) उनके मन्त्र ध्यानादि इस प्रकारके हैं कि:-

" तारं लज्जां समुच्चार्य संवर्तं साधरानलम् ।
बिन्दुनादयुतं बीजं प्रोच्चार्य चापराजिताम् ॥

संबोध्य ठद्वयंचोक्त्का भवेन्मन्त्रो दशार्णकः।
अपराजिता मनुश्चासौ सर्वत्रविजयप्रदः ॥
ऋषिर्नारद आख्यातो गायत्री छन्दउच्यते।
त्रौँ बीजश्च स्वाहा शक्तिः ह्रीँ कीलकमुदाहृतम् ॥
माया संवर्त्तषड्भाज सतारैश्च षडङ्गकम् ॥"

अस्या ध्यानम्:-

" नीलोत्पलदलाभासां भुजङ्गा भरणोज्वलाम्।
चतुर्भुजां पीतवस्त्राम् सर्वाभरणभूषिताम् ॥
खड्गचर्मधरा चोर्द्ध्वें वराभयमधः करैः।
ईसत् प्रहसितां त्र्यक्षां ध्यायेह मपराजिताम् ॥"

अस्या यन्त्रम्:-

" विन्दुत्रिकोणषट्कोण वसुपत्रसभूगृहम्।
अपराजिताख्य यन्त्रं तद्यात्राविजयकामदम् ॥"

तस्यावरण पूजा:-

" मूलदेवीं पूजनीया विन्दौ सयुधवाहना।
इच्छाज्ञान क्रिया पूज्या स्त्रिकोणेच ततः परम् ॥
षट्कोणे पूजनीयानि षडङ्गानि पुरोक्तवत्।
ततोऽष्टदलमध्येतु जयाच विजया तथा ॥
अजिताच जयन्ती च जंभिनी तंभिनी तथा।
मोहिनी चाकर्षिणी च पूजनीयाः क्रमात्ततः॥
पूजनीया भूगृहेच ब्राह्मी नारायणी तथा।
चर्चिका च तथा भद्रा गायत्री च सरस्वती ॥
उमाध्रुवेति विख्याता कामदा अष्टशक्तयः ॥"

इस अपराजिताका भैरव क्याहै वह मुझे मालूम नहींहै। यहविद्याकी विजया दशमी के रोज पूजा होतीहै। अब फिर पूर्वोक्त वडवानलतन्त्रोक्त वचनानुसार लक्ष्मी का वर्णन करता हूँ। कमलात्मिकालक्ष्मी को सौभाग्यलक्ष्मी भी कहते हैं। इन का एकाक्षरी मन्त्र से लेकर मन्त्रध्यानादिके भेद अनन्त हैं। इनको केवल श्री नामसे भी पुकारते हैं। करीब २०।२२ वर्ष हुआ मैंने एक आगमकी प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकमें पढ़ाथा कि "खास श्री तो श्रीविद्यामहात्रिपुरसुन्दरी ही है। जब समुद्र मथन हुवा उस अवस्थामें कमलात्मिका उत्पन्न हुई। तब उनने श्रीविद्यामहात्रिपुरसुन्दरी से ऐक्य होने केलिए बहुत आराधना की। तव श्रीविद्यात्रिपुरसुन्दरीने प्रसन्न होके उनको अपनेमें ऐक्य कर दशमहाविद्यायोंमें एक महाविद्या बनादिया। फिर श्री नामसे कमलात्मिका को ही लोक प्रसिद्ध होनेका वरदान देके श्रीविद्यामहात्रिपुरसुन्दरी अन्तर्ध्यान होगयी।" यह कब कहां मैंने देखाथा वह मुझे अभीठीक याद नहीं है। इसलिए मैं पाठक वर्गोंसे क्षमाप्रार्थी हूँ। अब लक्ष्मीके भेद बहुतहैं उनमेंसे मैं जितना जानता हूँ उतना देदुँगा। सबसे आगे कमलात्मिका का वर्णन करता हूँ। सोभाग्यलक्ष्मीकमलात्मिका के मन्त्रध्यानादि इस प्रकारके हैं कि:—

" अथ वक्ष्ये श्रियो मन्त्रान् श्रीसौभाग्यफलप्रदान्।
यस्याकटाक्षमात्रेण त्रैलोक्यमपि वर्धते ॥
वान्तं वह्निसमरूढं वामनेत्रेन्दुसंयुतम्।
बीजमेतच्छ्रियः प्रोक्तं चिन्तारत्नमिवापरम्।
ऋषिर्भृगुर्निवृच्छन्दो देवता श्रीः समीरिता।

षड्दीर्घयुक्तबीजेन षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ॥ "

अस्या ध्यानम्:—

" कान्त्याकाञ्चन सन्निभां हिमगिरिं प्रख्यैश्चतुर्भिर्गजैः।
हस्तोत्क्षिप्तहिरण्यमयामृतघटैरासिच्यमानां श्रियम्।
बिभ्राणां वरमब्जयुग्ममभयं हस्तैः किरीटोज्ज्वलाम्
क्षौमाबद्धनितम्बबिम्बललितां वन्देऽरविन्दस्थिताम्॥

मन्त्रान्तरम्:—

" वाग्भवं वनिताविष्णो मायामकरकेतनः।
चतुर्बीजात्मको मन्त्रश्चतुर्वर्गफलप्रदः॥
अङ्गानि कुर्याद्दीर्घाद्यैः रमाबीजेन तन्त्रवित्॥"

अस्या ध्यानम्:—

" माणिक्य प्रतिमप्रभां हिमनिभैस्तुङ्गैश्चतुर्भिर्गजैः।
हस्ताग्राहित रत्नकुंभसलिलैरासिच्यमानांसदा॥
हस्ताब्जैर्वरदानमब्जयुगला भीतिर्दधानांहरेः।
कान्तां कांक्षित पारिजात लतिकां वन्दे सरोजाननाम्

मन्त्रान्तरम्:—

" दीर्घाद्यादि विसर्गान्तो ब्रह्माभानुर्वसुन्धरा।
वान्ते सिन्धै प्रिया वन्हेर्मनुः प्रोक्तो दशाक्षरः॥
ऋषिर्दक्षो विराट्छन्दो देवता श्रीः समीरिता।
देव्यै हृदयमाख्यातं पद्मिन्यै शिर ईरितम्॥
विष्णुपत्न्यै शिखा प्रोक्ता वरदायै तनुच्छदम्।

"अस्त्रं कमलरूपिण्यै नमोऽन्ताः प्रणवादिकाः॥
अङ्गमन्त्राः समुद्दिष्टा ध्यायेद्देवीमनन्यधि।"

अस्या ध्यानम्:—

आसीना सरसीरुहे स्मितमुखी हस्ताम्बुजैर्बिभ्रती-
दानं पद्मयुगाभयं च वपुषा सौदामिनी वल्लभा॥
मुक्तादामविराजमान पृथुलोत्तुङ्गस्तनोद्भासिनी-
पायद्वः कमला कटाक्ष विभवैरानन्दयन्तीं हरिम्॥

(अब लक्ष्मी के विषयमें मेरी एक कहने की वातहै। लक्ष्मीका पोड़श भेदहैं इनमेंसे पञ्चलक्ष्मी ही मुख्य मानी गयीहैं। येविद्यायें क्याक्याहैं वे इसप्रकार कीहैं। सौभाग्यलक्ष्मी, महालक्ष्मी, त्रिशक्तिलक्ष्मी, साम्राज्यलक्ष्मी और सिद्धिलक्ष्मी ये पाँच है। उर्द्धाम्नायी लोग सिद्धिलक्ष्मी की जगह श्रीविद्यालक्ष्मी (महात्रिपुरसुन्दरी), पश्चिमाम्नायी लोग राजलक्ष्मी (कुब्जिका) और पूर्वाम्नायी लोग धानालक्ष्मी (अन्नपूर्णा) मानतेहैं। फिर यह तीन लक्ष्मीयाँ समेत अष्टलक्ष्मी याँ हुई। (आद्र पाशवकल्प, दिव्यपाशवकल्प, वीरकल्प और दिव्यकल्पमें इन्हीं अष्टलक्ष्मियों को मानते हैं।) इन्हीं अष्टलक्ष्मियों के हेतु पर हेतु मतसे दो दो में विभाजन करके अन्य अन्य नाम से पोडशलक्ष्मी मानके शुष्कपशुभावमें दध्यक्षत घलि देनेके प्रथाहैं। मैं शुष्कपशुभाव का नहोनेके कारण वह पद्धति मैंने एक वार वहुतरोज आगे देखाथा परन्तु अपनेको दरकार नहोनेके कारण वह संग्रह भी नहीं किया अभी भूलभी गया। इसलिए इन पोडशलक्ष्मियों का नाम ध्यानमन्त्रादि मुझे स्मरण नहोने के कारण मैं यहाँ नहीं

देसकता हूँ। इसलिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ। अब मैं इन अष्टलक्ष्मियों का विवरण देरहा हूँ। अनादि जो परब्रह्म की शक्ति हैं उनका रूप कहिये अथवा अवतार कहिये वह ३ विद्याओं में विभाजित की गई हैं। महाविद्या, सिद्धविद्या और क्षुद्रविद्या। इनमें से महाविद्या दक्षिणकालिकादि दसहै वे ये हैं कि —

"काली तारा महाविद्याषोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ताच विद्या धूमावती तथा॥
बगला सिद्धविद्याच मातङ्गी कमलात्मिका॥"

इसका तात्पर्य यह है। "काली" पदसे दक्षिणकाली ही महाविद्या, काली के अन्यभेद गुह्यकाल्यादि सिद्धविद्या हैं। सब विद्यायें जाकर षोडशी (महात्रिपुरसुन्दरी) मेंही समष्टि हो जाती हैं। इसलिए "महाविद्याषोडशी" लिखा। "सिद्धिविद्याचमातङ्गी" लिखने का अभिप्राय यहहै कि मातङ्गी का कोई भेद सिद्धविद्यामें है कोई महामिद्यामें है।) उसका विवरण पिछे देदूँगा। सिद्धविद्या तो बहुत है वह लेख विस्तार भयसे नहीं देसकता हूँ। महाविद्या और सिद्धविद्यामें वागर्थ वत् परस्पर अभेद हैं। यह दोनों ही विद्याओंमें परस्पर में समष्टि होते हैं। फिर यह दोनोंही विद्याओंसे पुरुषार्थ चतुष्ट यही मिलसकते हैं। इसलिए दशमहाविद्याके शिवाय सकल दुर्गादि विद्यायें जो पुरुषार्थ चतुष्टयके लिए साधन हो सकते हैं वह सब सिद्धविद्यायें हैं। और क्षुद्रविद्यायें षट्कर्म्मादि क्षुद्र कर्मके लिए प्रयोग होनेवाली यक्षिण्यादि विद्यायें हैं। मुमुक्षुलोग से क्षुद्रविद्या त्याज्य हैं। इसलिए मैं क्षुद्रविद्या के विषयमें कुछ भी नहीं लेखसकता हूँ। अब यहसबबात छोडकर फिर

मैं आगेके विषयमें लौट के फिर सौभाग्यलक्ष्मी कि ओरजाऊँगा।
(कमलात्मिका याने सौभाग्यलक्ष्मीका भैरव नारायण है। वह भी पूर्वाम्नाय से पूजित होता है) उनके मन्त्र ध्यानादि इस प्रकारके हैं कि।

"तारं नमः पदं पश्चात्ब्रौ दीर्घसमन्वितौ।
पवनो णायमन्त्रोऽयं प्रोक्तो वस्वक्षरात्मक॥
साध्यो नारायणः प्रोक्तो मुनिश्छन्द उदाहृतम्।
मन्त्रस्य देवी गायत्री देवता विष्णुरव्ययः॥
क्रोदोल्काय हृदाख्यातं महोल्काय शिरस्मृतम्।
वीरोल्काय शिखाप्रोक्ता द्युल्काय कवचं मतम्॥
सहस्रोल्कायास्त्रमुक्तमङ्गल् क्लृप्तिरियं मता।
भूयोर्वर्णैर्मनोः षड्भिः षडङ्गानि समाचरेत्॥
अवशिष्टौ पुनर्वर्णौ विन्यसेत् कुक्षिपृष्ठयोः॥"

अथ ध्यानम्:—

"उद्यत्कोटिदिवाकराभमनिशं शंखं गदां पंकजम्
चक्रंबिभ्रतमिन्दिरावसुमती संशोभि पार्श्वद्वयम्।
कोटीराङ्गदहारकुण्डल धरं पीताम्बरं कौस्तुभो—
दीप्त विश्वधरं स्ववक्षसि लसच्छ्रीवत्सचिन्हं भजे॥"

(यह कमलात्मिका महाविद्या है। यह सौभालक्ष्मी और नारायणका ऐक्य रूप लक्ष्तोनारायण है वह भी पूर्वाम्नायमें ही पूजित हैं परन्तु पश्चाचारसे नहीं। इनको कौलाचार से ही उपासना करनाचाहिए।) उनसब बातोंका नीचे लिखेहुये शास्त्र वचन प्रमाणसे स्पष्टी करण होता है। क्योंकि श्मशानमें इन॥ पुरश्चरण करनेको कहा है। यह श्मशान चर्या पाशवनाना।

नहीं हो सकता फिर पूर्वाम्नायमें वामाचार निषेध होनेके कारण कौलाचारसे करना होगा। इन लक्ष्मीनारायण के विषयमें श्रीविद्यार्णवतन्त्र के सप्तविंश श्वासमें मन्त्र ध्यान यन्त्र पुरश्चरणादि के विषयमें लिखा है कि:—

"मन्त्रोद्धारं प्रवक्ष्यामि लक्ष्मीनारायणस्यते।
आशुसिद्धिप्रदं सद्यः साधकानां सुखावहम्।
तारं परां च हरितं परां लक्ष्मीं ततोऽभिधाम्।
लक्ष्मीनारायणायेति विश्वमन्ते मनुः स्मृतः॥
नास्य विघ्नो नवा दोषो न भोनि र्न विपर्ययः।
साक्षान्मोक्षप्रदो मन्त्रः सर्वार्थफलदायकः॥
वर्णलक्षं पुरश्चर्यां विनायं चास्ति दोषभाक्।
जीवहीनो यथा देही सर्वकर्मसु न क्षमः॥
पुरश्चरणहीनोऽपि न मन्त्रः फलदायकः।
वटेऽरण्ये श्मशाने च शून्यागारे चतुष्पथे॥
अर्धरात्रे च मध्यान्हे पुरश्चरणमाचरेत्।
वर्णलक्षं पुरश्चर्यां तदर्धं वा महेश्वरी॥
एकलक्षावधि कुर्यान्नातो न्यूनं कदाचन।
प्रथमं गुरुहस्तेन साधकस्य करेण वा॥
ततः स्वयं चरेद्वह्नि पुरश्चर्याविधानतः।
जपाद् दशांशतो होमस्तद् दशांशेन तर्पणम्॥
मार्जनं तद्दशांशेन तद्दशांशेन भोजनम्।
विना दशांश होमेन न तत्फलमवाप्नुयात्॥
पञ्चरत्नेश्वरीं विद्यां लक्ष्मीनारायणस्य हि।
जपेत् तां पञ्चभिः सार्धं पुरश्चर्याफलं लभेत्॥
मन्त्रस्यास्य महादेवि वर्णितोऽत्र ऋषिः शिवः।

त्रिष्टुप्छन्दः समाख्यातं देवतापि समीरिता॥
लक्ष्मीनारायणो देवी बीजं लक्ष्मीरुदा हृता।
शक्तिः परा तथा तारं कीलकंसमुदा हृतम्॥
भोगापवर्गसिद्ध्यर्थं विनियोगः प्रकीर्तितः।
ध्यानमस्य प्रवक्ष्यामि लक्ष्मीनारायणस्य ते॥
येनैव ध्यानमात्रेण लक्ष्मीसिद्धिमुपैष्यति।
पूर्णेन्दुवदनं पीतवाससं कमलासनम्॥
लक्ष्म्याश्रितं चतुर्बाहुं लक्ष्मीनारायणं भजे।
तारमाभूतिबीजैश्च षड्दीर्घान्तै र्महेश्वरि॥
न्यासं कुर्यात् षडङ्गानि करशुद्ध्यादिपूर्वकम्।

अस्य यन्त्रम्:—

"यन्त्रोद्धारं प्रवक्ष्यामि सर्वाशासिद्धिदं परम्।
सर्वसंमोहनं यन्त्रं वाञ्छितैक प्रदायकम्॥
बिन्दु त्रिकोणं वस्वस्रं वृत्ताष्टदल मण्डितम्।
षोडशारं च वृत्तं च भूगृहेनोप शोभितम्॥
लक्ष्मीनारायणस्यैतच्छ्रीचक्रं परमार्थदम्॥"

अस्यावरणपूजाः—

"लयाङ्गं देवि वक्ष्यामि भोगमोक्षप्रदायकम्।
वेदागमरहस्याढ्यं पूजा कोटि फलप्रदम्॥
वज्रशक्तिदण्डखड्गपाशयष्टिध्वजा स्तथा।
शूलं पूज्या शिवेचैव बाह्यद्वारेषु सर्वदा॥
इन्द्राग्नियमरांक्षादवरुणानिलवित्तपाः।
सेश्वराः साधकैः पूज्या ब्रह्मानन्तादयस्तथा॥
केशवं माधवं कृष्णं गोविन्दं मधुसूदनम्।

गदाधरं शंखधरं चक्रपाणिं चतुर्भुजम् ॥
पद्मायुधं कैटभारिं घोरदंष्ट्रं जनार्दनम् ।
वैकुण्ठं वामनं चैव पूजयेद्गरुड ध्वजम् ॥
षोडशारेषु देवेशि वामावर्तेन साधकः ।
तत्रार्चयेन्महादेवि मन्त्री गुरुचतुष्टयम् ॥
अमृताङ्गं हंसकेतुं वंशपाणिं च पूजयेत् (श्रीपतिम्) ।
वृत्तत्रयेषु देवेशि साधको गन्धपुष्पकैः ॥
संहारं रुरुकं चण्डं भूतेशं कालभैरवम् ।
कपालं भीषणं चैव तथा श्मशानभैरवम् ॥
पूजयेत्साधकः सिद्धयै वसुपत्रे महेश्वरि ।
विष्णुं च वासुदेवं च देवि दामोदरं तथा ॥
नरसिंहं च देवेशि देवि संकर्षणं तथा ।
त्रिविक्रमं चानिरुद्धं विश्वक्सेनं च साधकः ॥
लक्ष्मीशब्दान्तिको देवि वसुकोणेषु पूजयेत् ।
गंगां च यमुनां चैव त्र्यस्रे सरस्वतीं तथा ॥
पूजयेदग्रवह्नीशक्रमयोगेन पार्वती ।
लक्ष्मीनारायणं देवं पूजयेद्बिन्दुमण्डले ॥"

अब फिर कमलात्मिका याने सौभाग्यलक्ष्मी के सकल मन्त्रों के यन्त्र के विषयमें लिखा है कि:—

"धर्मादिकल्पिते पीठे भूपुरद्वारशोभिते ।
दलाष्टके केशराढ्ये कर्णिकायां यजेदिमाम् ॥"

अस्यावरणपूजाः—

"षडङ्गेन प्रपूज्यादौ केशरेषु च साधकः ।
दिक्षुपूर्वादिपत्रेषु वासुदेवं यजेत्ततः ॥

संकर्षणं च प्रद्युम्नं चानिरुद्धं विदिक्षु च ।
दमकं सलिलं चैव गुग्गुलं च कुरण्टकम् ॥
देव्या दक्षे शंखनिधिं तत्रैव वसुधां यजेत् ।
वामे शंखनिधिं तत्र पुनर्वसुमतिं ततः ॥
द्वारेषु वलाकां च विमला धनमालिका ।
विभीषिकां ततो बाह्ये दिक्पालान् सायुधान् यजेत् ॥"

अब महालक्ष्मी के विषयमें लिखत हूं। महालक्ष्मी नामसे सिद्ध-विद्यालक्ष्मीको ४ रूपमें आम्नाय भेद कर शंकरजीने विभाजन किया है। उनमें से प्रथम पूर्वाम्नायसे पूजिता महालक्ष्मी जोकि केवल पाशवकल्प से उपासिता हैं, उनके मन्त्र ध्यानादि इस प्रकार हैं कि:—

"शम्भुपत्नी श्रिया रुद्धा कमौ भगवती मही ।
ब्रह्मादित्यो धरादीर्घा लकारो भगवान् मरुत् ॥
प्रशीद युगलं भूयः श्रीरुद्धा भुवनेश्वरी ।
महालक्ष्मी नमोन्तस्यात् प्रणवादिरयं मनुः ॥
सप्तविंशत्यक्षराढ्यः प्रोक्तः सर्वसमृद्धिदः ।
कमले हृदयं प्रोक्तं शिरः स्यात्कमलालये ॥
शिखा प्रसीद तेनैव कवचं चतुरक्षरैः ।
अस्त्रमेतैः पदैः कुर्याच्छ्रीबीज पुटितैः पृथक् ॥"

अस्या ध्यायम्ः—

"सिन्दुरारुण कान्तिमब्जवसतीं सौन्दर्यवारां निधिम्
कोटीराङ्गदहार कुण्डलकटीसूत्रादिभिर्भूषिताम् ॥
हस्ताब्जैर्वसूपत्र मब्जयुगलादर्शौ वहन्तीं परा-
गावीतां परिचारिकाभिरनिशं ध्यायेत्प्रिया शार्ङ्गिणः ॥"

अनुकल्प से वही महालक्ष्मी के सप्तविंशाक्षरी मन्त्र और ध्यानमें किञ्चित् भेद है वह ऐसा है कि:-

" अथातः संप्रवक्ष्यामि सप्तविंशाक्षरं मनुम् ।
तारो रमा शक्ति लक्ष्मीः कमले कमलालये ॥
प्रसीदद्वितयं श्रीँ ह्रीँ श्रीँ महालक्ष्मी हृत्तथा ।
गायत्री छन्द उद्दिष्टं मुनिर्दक्षप्रजापतिः ।
लक्ष्मीर्देव्यथ पंचाङ्गं त्रिबीज पुटितैर्मनोः ॥
वर्णै स्त्रिपंचरामाग्निरामै र्ध्यानमथो ब्रुवे ॥ "

अस्या ध्यानम्:-

" सिन्दूराभांच पद्मस्थां पद्मपत्रंच दर्पणम् ।
अर्घपात्रं च दधतीं सद्धारमुकुटान्विताम् ॥
नानाभ्दालीपरिवृतां कांचीकुण्डल मण्डिताम् ।
लावण्य भूमिकां वन्दे सुन्दराङ्कदबाहुकाम् ॥"

फिर कल्पभेदसे वही महालक्ष्मी के मन्त्र ध्यानादि पृथक् हैं वे इस प्रकारके है कि:-

" वाग्भवं शम्भुवनिता रमा मकरकेतनः ।
तात्तीयं च जगत्पार्श्वोवह्नीबीजंसमुज्वलः ॥
अर्धीशाढ्यो भृगुस्त्यै ह्न्मन्त्रोयं द्वादशाक्षरः ।
महालक्ष्म्या समुद्दिष्ट स्ताराद्यः सर्व सिद्धिदः ॥
ऋषिर्विधा समुद्दिष्टो गायत्री छन्दईरितम् ।
देवता जगतामादिर्महालक्ष्मीः समीरिता ॥
हस्तौ संशोध्य मन्त्रेण तारादि हृदयान्तिकम् ।
बीजानां पंचकंन्यसेदङ्गुलीषु यथा क्रमम् ॥

मन्त्रशेषंन्यसेन्मन्त्री तलयो रूभयोरपि ।
मूर्धादि चरणं यावन्मन्त्रेण व्यापकं चरेत् ॥
मूर्धाक्षिवक्त्रोगुह्यार्ध्यैः पंचबीजानिविन्यसेत् ।
शेषान्न्यसेत् सप्तवर्णान् हृदये सप्तधातुषु ॥
अङ्गानि पञ्चभिर्बीजैरस्त्रं शिष्टाक्षरैर्भवेत् ।
ज्ञानैश्वर्यादिभिर्युक्तैश्चतुर्थ्यन्तै सजातिभिः ॥
ज्ञानमैश्वर्य शक्ति च बलवीर्य स्वतेजसा ।
ज्ञानैश्वर्यादयः प्रोक्ताः षट्क्रमादङ्गयोजिता. ॥"

अस्या ध्यानम्:-

" बालार्कद्युतिमिन्दुखण्डविलसत्कोटीरहारोज्ज्वलाम् ।
रत्नाकल्पविभूषितां कुचनतां शालैः करैर्मञ्जरीम् ॥
पद्मौकौस्तुभरत्नमप्यविरतं संविभ्रतीं सुस्मिताम् ।
फुल्लाम्भोजविलोचनत्रययुतां ध्यायेत्परां देवताम् ॥ "

यह महालक्ष्मी का यन्त्र इस प्रकार का है कि:-

" अष्टपत्राम्बुजद्वन्द्वं कर्णिकाकेशरोज्ज्वलम् ।
चतुर्द्वार समायुक्तं चतुरस्रत्रयावृतम् ॥"

अस्यावरणपूजा:-

" पूर्वोदिते यजेत् पीठे वर्तमानेन वर्त्मना ।
पूरोङ्गानि यजेत् पश्चाच्छ्रीधरादींस्ततः परम् ॥
श्रीधरश्च हृषीकेशो वैकुण्ठो विश्वरूपकः ॥
वासुदेवः संकर्षणश्च प्रद्युम्नानिरुद्धकौ ॥
तदग्राष्टदलेपूज्या भारती पार्वती तथा ।

ब्राह्मी सती दिक्षुचैता आग्नेयादिविदिक्षुतुः ॥
दमकःसलिलश्चापि गुग्गुलुश्चकुरन्तकः ।
चत्वारस्तु गजाएते तृतीयेष्टदलेऽर्चयेत् ॥
अनुरागो विसंवादो विजयो वल्लभो मदः ।
हर्षोबलश्च तेजस्वी यजेल्लोकेश्वरान्वहिः ॥
तदायुधानि तद्बाह्ये पूजयेच्चन्दनादिभिः ।
एवं संपूजयेल्लक्ष्मीं यो मर्त्यः स धनी भवेत् ॥

अब यह महालक्ष्मीका भैरव वासुदेव हैं । उनके ध्यानादि इसप्रकारके हैं किः-

" प्रणवो हृद्भगवते वासुदेवाय कीर्तितः ।
प्रधानं वैष्णवे तन्त्रे मन्त्रोयं द्वादशाक्षरः ॥
ऋषिप्रजापतिश्छन्दो गायत्री परिकोर्तिता ।
देवतास्य मनोः प्रोक्तो वासुदेवो मनीषिभिः ॥
तारेण हृदयंप्रोक्तं नमसा शिर ईरितम् ।
चतुर्वर्णैः शिखाप्रोक्ता पञ्चार्णैः कवचंमतम् ॥
समस्तेन भवेदस्त्र मङ्गकल्पनमीरितम् ॥."

अस्यध्यानम्ः—

" विष्णुं शारदचन्द्रकोटिसदृशं शङ्खं रथाङ्गं ग
मम्भोजं दधतं सिताब्जनिलयंकान्त्या जगन्मोहनम्
आबद्धाङ्गदहार कुण्डल महामौलिं स्फुरत्कंकणम्
श्रीवत्साङ्क मुदारकौस्तुभधरंवन्दे मुनीन्द्रैःस्तुतम् ॥

यह महालक्ष्मी और वासुदेवका ऐक्यमूर्त्ति लक्ष्मीवासुदेव हैं उनके विषयमें ऐसा लिखा हैं किः-

" हृल्लेखाबीजयुगलं रमाबीजयुगं ततः ।
लक्ष्म्यन्ते वासुदेवाय हृदन्तः प्रणवादिकः ॥
चतुर्दशाक्षरैः प्रोक्तो मन्त्रोऽयं सुरपादपः ।
हृदयं शक्तिबीजाभ्यां रमाभ्यां शिर ईरितम् ॥
लक्ष्मण प्रोक्ता शिखा वर्म वासुदेवाय ईरितम ।
नमः सास्त्रं समादिष्टं सर्वं तारादि कल्पयेत् ॥"

अस्य ध्यानम-

" विद्युच्चन्द्रनिभंवपुः कमलजा वैकुण्ठयोरेकताम् ।
प्राप्तं स्नेहवसेन रत्नविलसद्भूषाभरालङ्कृतम् ॥
विद्यापंकजदर्पणान् मणिमयं कुम्भं सरोजं गदां च ।
शंखं चक्रममूनि विभ्रदमितां दिश्यात्श्रियं वः सदा ॥"

(अब दूसरी महालक्ष्मीका वर्णनकरता हुं । वहहैं सकलतंत्र की तेजोराशिसमुद्भवा । और आग्नेयाम्नायनायिका हैं । उनके मन्त्र ध्यानादि इसप्रकारके हैं कि :—

" इशानो वह्निमारूढः सेन्दुवामाक्षि भूषितः ।
प्रणवादि नमोन्तश्च भवेद्वेदाक्षरो मनुः ॥
ऋषिर्विष्णुर्भवेच्छन्द उष्णिक्च देवता परा ।
महालक्ष्मी समाख्याता महिषासुरमर्दिनी ॥
षड्दीर्घभाजाबीजेन कुर्यादङ्गानिषट्क्रमात् ॥ "

अस्या ध्यानम्ः—

" अक्षस्रक्परशुं गदेषु कुलिशं पद्मं धनुः कुण्डिकाम् ।
दण्डंशक्तिमसिञ्च चर्मजलजं घण्टा सुराभाजनम् ॥

शलं पाशानुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रवाल प्रभाम्।
सेवे सैरिभमर्दिनी मिहमहालक्ष्मीं सरोजस्थिताम् ॥"

अस्या यन्त्रम्:—

" त्रिकोण पञ्चर युगप्रभावां षट्कोणमिश्रां हृदसारयुक्ताम्।
अष्टार चक्रादि निवास भूतां तांविश्वयोनिं शरणं प्रपद्ये ॥
पुनर्दशारद्विनयेनयुक्तां पञ्चारकोणां धृतभूगृहाञ्च।
यन्त्राधिवासामपियन्त्ररूपां तां विश्वयोनिं शरणं प्रपद्ये।।"

इसयन्त्रको महालक्ष्मी का श्रीयन्त्र भी कहते हैं। इस यन्त्रमें सकलही लक्ष्मी की भेदोंकी पूजा हो सकतीहै। इसकी आवरणपूजा लम्बी है। फिर मेरेपास पद्धतिरूपका आवरण पूजा है। परन्तु श्लोकमें पटलरूप नहोनेके कारण मैं नहीं देसकताहुँ। इसमें क्षमाप्रार्थी हुं।

अब तीसरी महालक्ष्मी वही अष्टादशभुजीमहालक्ष्मी का रूपान्तर उग्रचण्डामहालक्ष्मी है इनको दुर्गालक्ष्मी भी कहते है। इनका विवरण पश्चिमाम्नायके विवरणमें दिया जायगा। यह उग्रचण्डा दुर्गा होनेकेकारण छ वों अम्नाय से पूज्या है। चौथी महालक्ष्मी अष्टमातृका की महालक्ष्मी है। उनको मातृकामहालक्ष्मी कहते है। अब दुर्गामहालक्ष्मीका भैरव नवात्मभैरव हैं। और मातृकामहालक्ष्मीका भैरव संहारभैरव हैं। येदो भैरवोंका विवरण पीछे उनकी शक्तिके साथ साथ ही देदूँगा। फिर वह सप्तशति वर्णित महालक्ष्मीका भैरव विष्णु हैं उनके मन्त्र ध्यानादि यह हैं किः--

" अथ मन्त्रान्तरं वक्ष्ये विष्णोः सर्वार्थसाधकम्।
ङेऽन्तं विष्णुं समुद्धृत्य हृदयं बाणवर्णकः ॥
भवाब्धेः सेतुभूतोऽयं मन्त्रराजः षडक्षरः।
नारदोऽस्य मुनिश्छन्दो गायत्री विष्णुरव्ययः ॥
देवता मन्त्र वर्णैस्तु षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ॥"

अस्य ध्यानम्--

" शंखचक्रगदापद्म धरं लक्ष्मीसमावृतम्।
पीताम्बरं घनश्यामं ध्यायेद्विष्णुं सनातनम् ॥"

(अब त्रिशक्तिलक्ष्मी का विवरण करता हूं। यह त्रिशक्तिलक्ष्मि तो बालाकास्थितिरूही है अतः इनकावर्णन उर्ध्वाम्नायके विवरणमें, सिद्धिलक्ष्मी गुह्यकालीके भेद होनेकेकारण उत्तराम्नायके विवरणमें और राजलक्ष्मी कुब्जिका ही होनेकेकारण पश्चिमाम्नायके विवरणमें देदूँगा। खास राजलक्ष्मी कुब्जिका ही हैं परन्तु जिनलोगों को कुब्जिका विद्याका अधिकार नहीं है। उन लोगों (पाशवकल्पी) के लिये राजलक्ष्मी ऐसी है किः--

" रलाचस्स्वैरम्बु स्याद्धाताग्नी तदनन्तरम्।
राज्यदे राज्यलक्ष्मीति हृन्माया व्युत्क्रमात् त्रयम् ॥
विद्यासौ राज्यलक्ष्म्यास्तु षोडशार्णा समीरिता ॥"

मेरे गुरु परंपरामें कुब्जिका कोही राज्यलक्ष्मी मानते हैं इसलिए यह राजलक्ष्मीको इतनाही जानता हूं। उस मन्त्रकी उद्धार कठिन है तथापि मैं यहादेता हूँ किः—

ह्रीँ श्रीँ क्लीँ अ इ राज्यदे राज्यलक्ष्मी सः क्लीँ श्रीँ ह्रीँ
अब साम्राज्यलक्ष्मी भी पूर्वाम्नाय में हैं। उनके मन्त्र ध्यानादि इसप्रकारके हैं कि:–

" अथातः संप्रवक्ष्यामि लक्ष्मी–साम्राज्यसंगितम्।
आदौ श्रीबीजमुच्चार्य सहकलहरास्ततः ॥
ईकारान्ता विन्दुयुता द्वितीयं कूटमुच्यते।
पुनश्च श्रीं समुच्चार्य मन्त्रस्त्र्यक्षर ईरितः॥
ऋषिर्हरिस्तथा छन्दो गायत्रीदेवता मता।
तथैव मोहिनी लक्ष्मीस्सर्वसाम्राज्य दायनी॥
बीजं कूटं समाख्यातं शक्तिः श्रीबीजमुच्यते।
षड्भिर्दीर्घैः स्वरैर्विद्वान् षडङ्गानि प्रविन्यसेत्॥

तस्य ध्यानम्–

" अतसी पुष्पसंकाशां रत्नभूषण भूषिताम्।
शंख चक्रगदापद्मशार्ङ्गबाणधरां करैः॥
षड्भिः कराभ्यां देवेशीं वरदाभयशोभिताम्।
एवमष्ट भुजां ध्यायेत् सर्वं साम्राज्यसिद्धये॥"

अस्यायन्त्रम्:–

"पूजयेत्तु जगद्धात्रीं विन्दु षट्कोणमेवच।
त्रिकोणं चाष्टपत्रंच भूपुरद्वारमण्डितम्॥
अस्मिन्समावाह्य देवीं पूजयेदुपचार कैः॥"

अस्या वरणपूजाः—

" विन्दौ देवीं षडङ्गानि षट्कोणेषु यजेत्ततः।
अग्रे यजेच्च गायत्रीं सावित्रीं च सरस्वतीम्॥

ब्राह्म्याद्याष्ट पत्रेषु भूपुरे मनुनामुनः।
अष्टादशमहाकोटि योगिनीभ्योनमस्त्विति॥
अर्च्याः स्युर्नेत्रयोगिन्यः शक्राद्यानायुधान्यपि।
पुनर्देवीं समभ्यर्च्य गन्धपुष्पाक्षतादिभिः॥
वटुकक्षेत्रपालेभ्यो योगिनीभ्यो बलीं हरेत्।
एवमष्टभुजां ध्यात्वा त्रिलक्षं प्रजपेत्सुधिः॥
तद्दशांशेन पद्मैस्तु हुनेत् साम्राज्यसिद्धये।
दक्षिणेनैव मार्गेण तस्याः सिद्धि र्न वामतः॥"

यह साम्राज्यलक्ष्मी का भैरव हरि हैं उनके मन्त्र ध्यानादि इस प्रकार के है कि:--

" देवीप्रणवमुच्चार्य हरिङेऽन्तंसमुच्चरेत्
ताराद्यः सिद्धमन्त्रोऽयं भवेत्सप्ताक्षरात्मकः॥

यह सिद्धमन्त्र होनेके कारण इसके विनियोग और न्यास नहीं है ध्यान ऐसा है कि:

" शङ्खचक्रगदापद्म धरं पद्मासनस्थितम्।
पीतांबरं घनश्यामं स्मितं शान्तं हरिं भजे॥"

अब वडवानलतन्त्रोक्त नामावलीके अनुसार सरस्वतीके विषयमें लिखता हूँ। (ब्राह्मीसरस्वती के सात भेद हैं।) वह इस हैं कि:--

"चिन्तामणि ज्ञाननीलघटाकिन्यन्तरित्ततः।
महत्पूर्वाश्चसप्तै तास्सरस्वत्यः प्रकिर्तिताः॥

वह इस प्रकारके हैं। १. चिन्तामणीसरस्वती। २. ज्ञान सरस्वती। ३. नीलसरस्वती। ४. घटसरस्वती। ५ किनिम-

रस्वती। ६ अन्तरिक्षसरस्वती। ७ महासरस्वती। ब्राह्मीसरस्वती के यह ७ भेद है। फिर शारदासरस्वती के ५ भेद हैं। वह इस प्रकारके हैं कि:-

"वाणी वागीश्वरीवाचा वाक्प्रदा च महत्पदा।
पंचैता चादीनादाख्या सरस्वत्यः प्रकिर्तिताः ॥

वह सब इसप्रारके हैं। १. वाणीसरस्वती। २. वागीश्वरी सरस्वती। ३. वाचासरस्वती। ४. वाकप्रदासरस्वती (वाग्देवी) ५. महासरस्वती। इस महासरस्वती और ब्राह्मीके भेद स्वरुप सरस्वती पृथक है। वह पीछे मालूम होजायगा फिर पारिजातसरस्वती, सन्ध्यासरस्वती और अनिरुद्ध सरस्वती ये ३ सरस्वतीयाँ पृथक् पृथक् है। अब सरस्वतीके मुख्य भेद ५ हैं, वह है १ सप्तभेदवाली ब्राह्मीसरस्वती। २.पंचभेदवाली शारदासरस्वती। ३.पारिजातसरस्वती। ४. सन्ध्यासरस्वती ५ अनिरुद्धसरस्वती। यह अनिरुद्धसरस्वतीके सिवाय अन्यसकल सरस्वतीया सिद्धविद्यायें है।

अब ब्राह्मीसरस्वती के मन्त्र ध्यानादि इस प्रकारके हैं कि:—

"ब्रह्म शक्तिस्तु शक्तीनां नायिका परिकिर्तिता।
योगिनां मुक्तीदात्री सा भोगिनां भोगदा मता ॥
ब्रामित्येकाक्षरं वीजं मुनिर्वाचस्पतिर्मतः ।
गायत्री छन्द उद्दिष्टं वः शक्तिः कीलकं च रः॥
वीजे नैव षडङ्गानि ततो ध्यायेत्सुरेश्वरीम् ॥"

अस्या ध्यानम्:—

"ध्यायेद् ब्राह्मीं पद्मसंस्थां हंसारूढां चतुर्मुखाम्।
अक्षमाला वराभीतिकमण्डलु करारुणाम् ॥"

अस्या यन्त्रम्:—

"षट्कोणं षोडशदलं चतुर्द्वारोपशोभितम्।
ब्राह्मी यन्त्रं भवेन्नूनं भुक्तिमुक्ति प्रदायकम्॥"

अस्या वरणपूजा:—

"षट्कोणेषु षडङ्गानि शक्तयोऽर्च्याः कलादले।
चिन्तामणि ज्ञान नील वटा किन्यन्तचिताः ॥
महत्पूर्वाश्चसप्तैतास्सरस्वत्यः प्रकीर्तिताः ।
लोकेश्वरीं शिवान्तेच त्रिपुराद्वितयं भवेत् ॥
वागीश्वरीरुद्रविष्णु मुखान्ते चाक्षयामता ॥
पद्मावत्येवरुढाच षोडशी किर्तिनायिका ॥
ततन्मन्त्रैः पूजनीया वाह्ये दिक्याः सहेतयः॥"

यह (ब्राह्मीसरस्वती पूर्वाम्नायसे पूजितहै। अब चिन्तामणि-सरस्वती भी पूर्वाम्नायसे ही पूजित हैं) उनके मन्त्र ध्यानादि इस प्रकारके हैं कि—

"अथादौ संप्रवक्षामि चिन्तामणिसरस्वतीम्।
तारं मायां च हसरानैकाराढ्यान्सविन्दुकान्॥
पुनर्मायां च तारं च वदेन् ङेन्तां सरस्ततीम्।
हृदयान्तो भवार्णोयं मन्त्रस्तु परिकीर्तितः॥
त्रिष्टुपछन्दो मुनिः कंठश्चिन्तामणि सरस्वती।
देवताद्यं च वीजंस्याद्यीँ शक्तिरत्वङ्ग कल्पनम्॥
स्वरसंपुटितैः कादिवर्गैः स्यादङ्ग कल्पनम्।
पुनश्चतार हृल्लेखा पुटितं दीर्घषट्कयुक्॥

स्वकूटं तेन चाङ्गानि मन्त्रार्णान् विन्यसेत्ततो ।
मुर्द्धभ्रूमध्यकर्णाक्षिनासिकास्यगुदांघ्रिपु ॥ "

अस्या ध्यानम्:—

" हंसारूढां मौक्तिकाभां मन्दहासेन्दु शेखराम् ।
वीणामृतघटाक्षस्रग्दीप्तहस्ताम्बुजस्थिताम् ॥

अस्या यन्त्रम्:—

" वृत्तं चाष्टदलंपद्मं भूद्वारेणोपशोभिति ।
चिन्तामणि सरस्वत्या यन्त्रं सर्वकामफलप्रदम् ॥"

अस्या वरणपूजा:—

" वाग्देव्यौ पार्श्वयोः पूज्ये संस्कृत प्राकृताह्वये ।
ततः पडङ्गावरणं ततश्चाष्टदलेर्चयेत् ॥
प्रज्ञांमेधां श्रुतिं चैव स्मृतिं शक्तिं ततोर्चयेत् ।
वागीश्वरीं वसुमतीं स्वस्ति ब्राह्म्यादिका अपि ॥
दिक्पालैश्च चतुर्थं स्याज्जपेद्द्वादश लक्षकम् ॥"

(अब ज्ञान सरस्वती ऊर्ध्वाम्नायसे पूजित है ।) उनके मन्त्र ध्यानादि इस प्रकार के है कि:—

" अथातः संप्रवक्ष्यामि ज्ञानपूर्वां सरस्वती ।
ऐकारयुक्ता हसरा विन्द्वन्ताः पूर्वं बीजकम् ॥
हसक्षलर इत्येवं पंच ईकार संयुता ।
विसर्गान्तास्तृतीयं स्याद्बीजं ज्ञानप्रदो मनु ॥
ऋषिस्तु दक्षिणामूर्त्ति र्देवीज्ञानसरस्वती ।
अन्त बीजं भवेच्छक्ति राद्यबीजंतु कीलकम् ॥

आद्यबीजेन चाङ्गानिकृत्वा बीजानि विन्यसेत् ।
दक्षिणे च करे वामेऽपि बीजत्रयं पुनः ॥
पादादिनाभिपर्यन्तं नाभ्यादि हृदयान्तकम् ।
हृदयादिच शीर्षान्तं क्रमाद्बीजत्रयं न्यसेत् ॥ "

अस्या ध्यानम्:—

" ततो ध्यायेत्सूर्यनिभां त्र्यक्षां चन्द्रकलाधराम् ।
करैर्धीर्बीजपवटीं पुस्तकं वरदाभये ॥
पीनोत्तुङ्गस्तनीं पूर्णां चन्द्रास्यामरुणाम्बराम् ।
एवं ध्यायेत् परांदेवीं ज्ञानपूर्वां सरस्वतीम् ॥ "

अस्या यन्त्रम्:—

" त्रिकोणनवकं चैव पंचकोणाष्टकोणके ।
मनोहरं वसुदलं वेदद्वारो पशोभितम् ॥
एतद्यन्त्रे यजेद्देवीं परां ज्ञान सरस्वतीम् ॥ "

अस्या वरणपूजा:—

" नवयोनित्रिकोणेषु वामाज्येष्ठादिकांयजेत ।
प्राङ्मध्ययोन्योरन्तस्तु यजेच्छक्ति चतुष्टयम् ॥
आद्याबहि विपघ्नीस्यात् ततो दूरतरामता ।
सर्वादौ तेनता बाह्ये पञ्चकोणे समर्चयेत् ॥
आग्नेयेशाननैऋत्यवायव्ये पश्चिमेक्रमात् ।
यजेत्कोणे पंचबाणा ञ्छोषणंमोहनन्तथा ॥
संदीप्तसंमोहनकौ तथा चोन्मादनोन्तिमः ।
ततोङ्गावरणं पूज्यं पूर्वाशाद्यष्टयोनिषु ॥
क्रमेण शक्तयः पूज्याः शुभगाच तथा भगा ।

भगपूर्वा सर्पिणी च ततश्च भगमालिनी ॥
अनङ्गानङ्गकुसुमा ततश्चानङ्गमेखला ।
अनङ्गमदनाचेति ध्यानमासां निरूप्यते ॥
अक्षस्रक्पुस्तककरा रक्ताभाः सर्वशक्तयः ।
दिव्याम्बराः सर्वभूषाः सर्वाभिष्टप्रदायिकाः ।
ब्राह्मयाद्याश्च ततोभ्यर्च्या स्तदग्रेपूजयेत्पुनः ॥
भैरवानसितांगाद्याञ्छुकादीन्ना युधान्यपि ।
यजेद्द्वादशलक्षं स्याज्जपस्त्रिमधुरान्वितैः ।
हुनेत् पलाशपुष्पैश्च दशाशं वा शतांशकम् ॥ "

अब नीलसरस्वती तो ताराके ही अङ्गहैं वह अधराम्नायसे पूज्या है। वामाचारी लोग उनको आर्यतारामें समष्टि करके अधराम्नायसे आर्यतारा केही यन्त्रमें अर्चनकरते हैं। फिर दक्षिणाचारी और कौलाचारी लोग वही नीलसरस्वतीको महोग्रतारामें समष्टि करके महोग्रताराके ही यन्त्रमें दक्षिणाम्नाय से अर्चन करते हैं। ये दो अवस्थामें नीलसरस्वतीके मन्त्र ध्यानादि पृथक् हैं। दक्षिणाचारी के नीलसरस्वती का विषय दक्षिणाम्नायके विवरणमें देदूंगा। अब यहाँ वामाचारीके नीलसरस्वती का वर्णन करताहूं। यह इस प्रकारका है:-

" अथातो वाममार्गस्थां वक्ष्ये नीलसरस्वतीम् ।
तारोलक्ष्मीश्च हृल्लेखा हसाद्योङ्कार सयुतो ॥
हूँफट् नीलसरस्वत्यै स्वाहान्तो मनुवर्णकः ।
ऋष्याद्या ब्रह्मगायत्र्यौ तथा नीलसरस्वती ॥
नेत्र चन्द्रेन्दु नेत्राङ्ग नेत्रार्णैरङ्ग कल्पनम् ॥ "

अस्य ध्यानम्:-

" मन्त्रोत्थितैरथो ध्यायेद्देवीं सर्वेष्टसिद्धिदाम् ।
घण्टां शिरः शूलमसिं कराब्जैर्दधतींभजे ॥
पोथयन्तीं पादतले पशुं चन्द्रकला धराम् ।
जपपूजादिकं सर्वमस्यास्तारा वदा चरेत् ॥ "

अब घटसरस्वती की आराधना भी वामाचार अधराम्नाय से होती है। यह बौद्धमार्गीय देवता होनेके कारण उनका ध्यान मुझे मालूम नहीं है। उनका मन्त्र इस प्रकारका है:-

" अथातः संप्रवक्ष्यामि वामां घटसरस्वतीम् ।
हलखफरवर्णाश्च ऐँकारेणसमन्विताः ॥
तस्याः स्यादादिमं कूटं,हसरा श्रौँ समन्विता ।
विसर्गान्ताद्वितीयंस्याद्धसौफो रफएवच ॥
ईकारेणच संयुक्तास्तृतीयं कूटमुच्यते ।
वाचं मायां रमां ग्रौँ ह्रीँ कामं ब्लूँ संस्तथैवच ॥
ग्रौँ बीजंच समुच्चार्य ततो घटसरस्वती ।
घटेवदद्वयं पश्चात् त्वरयुग्मं वदेत्ततः ॥
रुद्राज्ञया ममाभीति लाघं कुरू युगं तथा ।
स्वाहान्तोग्नि कृताणोयं प्राग्वत् पूजादिकंभवेत् ॥"

यह घटसरस्वती के विषयमें एक कहानी हैं। जब श्री १०८ स्वामी शङ्कराचार्यजी दिग्विजयकरके बौद्धमार्ग के खण्डन करतेहुये नेपालमें आपहुँच कर देखाकि यह देश बौद्धमार्गी लोगों से भराहुवाहै और शिवमार्गीय देवताओं का अवहेलन

हो रहा है। यहाँ तककि श्रीपशुपतिनाथको भी उन्निद्रष्टेश्वर बनाके लापरवाहिकर रहेथे। उस समयमें एक बाँडा बडाभारी बोद्धमार्गी तान्त्रिकथा। उसके साथ कोई भी शास्त्रार्थ नहीं कर सकताथा क्योंकि वह सबसे विजय लाभ ले लेताथा। इसकेहीं प्रभावसे इस नेपाल भूमण्डलमें वेदविरोधि बौद्धधर्म छागयाथा। उसी बांडा से श्री १०८ शंकराचार्यजीने शास्त्रार्थ करना शुरूकिया। प्रण यहथाकि जो विजय लाभ करेगा वह दुसरेको वधकर समस्त नेपाल देशमें अपमा धर्म स्थापना करेगा। शास्त्रार्थ करते करते जब एक दूसरेको हरा न सकातो श्रीशंकरजीने याद्किया कि कठिन प्रश्नके उत्तर देनेसे पहले उस बांडा पिछले परदेकि तरफ कानलगाके उत्तर देताथा। तब फौरन श्रीशंकराचार्यजी ने उठकर परदेके पट उतारकर देखा कि उस स्थानमें एक घटथा। उस घटमें घटसरस्वतीका आवाहन कर रखाथा और वही सरस्वती उस बाँडा को शास्त्रार्थका उपदेश कर रहीथीं। तब श्रीशंकरजीने संहार मुद्रासे उस सरस्वतीको विसर्जन कर वह घट तोडदिया और देखाकि वह बांडा मूक होगया। तब विजयप्राप्त कर उसको वधकिया।

अब किनिसरस्वती चामुण्डाके अङ्ग हैं उनकी वाममार्ग पश्चिमाम्नायसे उपासना होती हैं। उनके ध्यान यंत्रावरण पूजादि चामुण्डाके सदृश ही होते हैं। वह चामुण्डाका वर्णन पश्चिमाम्नायके विवरणमें देदूंगा। यहाँ अब वही किनिसरस्वतीका मन्त्र देता हू वह इस प्रकारका हैं:—

" अथातः संप्रवक्ष्यामि विद्यां किनिसरस्वतीम्।
वामाचारेणफलदां वाग्बीजं हैँ समुच्चरेत्॥
ह्रीमुच्चार्य किनिद्वन्द्वं विद्ये मन्त्रो नवाक्षरः।
चामुण्डा मन्त्र वत्सर्वं जपन्यासादिकं भवेत्॥"

अब अन्तरिक्षसरस्वती की वायवीय शरीर होनेके कारण ध्यान नहीं है। फिर यह सिद्धमन्त्र होनेके कारण न्यासादि भी नहीं है। यह अन्तरिक्षसरस्वती पूर्वाम्नायसे उपासना होती है। उनका मन्त्र इस प्रकारका है:—

" अथातः संप्रवक्ष्यामि ह्यन्तरिक्षसरस्वतीम्।
वाचं मायांमन्तरिक्ष सरस्वत्यग्निगेहिनी॥
द्वादशार्णो मनुर्जप्तो वर्णलक्षमितोयदा।
शृणुयादीप्सितां वार्तां दूरस्थामपि साधकः॥"

अब मैं यहाँ एक बात कहना चाहताहू। यहाँ यह मन्त्र १२ लक्ष जपने से सिद्धिमिल जायगी। यदि इतने मेंही विनागुरु विना अन्तर्याग यह जपेतो१२ लक्ष क्या १२कोटि जपने से भी सिद्धि नहीं होगी तब कहने लगेंगे "शास्त्रने झुटमुट बताया"। इसीका नाम है अन्धी श्रद्धा। इसी अन्धी श्रद्धासे हम लोग में शास्त्रमें अश्रद्धा, अन्य शास्त्रोका मतालम्बन और स्वधर्म कि निन्दा इत्यादि अनेक दुराचार कि सृष्टि हो रहीहै। इस अन्तरिक्षसरस्वतीके साधनका काम इसमन्त्रका अर्थ (Mental-affirmations) योग्य गुरुसे जानकर उसीका मनन (Auto-suggestion) करके दिव्यश्रुति (Clair-audience) प्राप्त करनेका अभ्यास करना है। ऐसाकरनेमें

अवश्य ही सिद्धि मिलजाएगी। इसप्रकार के राजाधिराजयं (Psycho-occult-science) का वर्णन सबसे अन्त्य पटलमें देदूंगा।

अब महासरस्वती यद्माह्मीका भेद नीलताराका अंश बौद्धमार्गीय अधराम्नायसे उपासना होती हैं । उनके मन्त्र ध्याना इस प्रकारके हैं:-

" महासरस्वतीं वक्ष्ये सर्वकामफलप्रदाम् ।
ऐँ ह्रीँ श्रीँ क्लीँ समुच्चार्य सौःक्लीँ ह्रीँ ऐँ पुनर्वदेत् ॥
ब्लूँ तु स्त्रीँ नीलतारेच सरस्वती पदंततः ।
द्राँ ह्रीँ क्लीँ ब्लूँ स उच्चार्य ऐँ ह्रीँ श्रीँ क्लीँ पुनर्वदेत् ॥
सौः सौःह्रीँ वह्निजायान्तो मन्त्रो द्वात्रिंशदर्णकः ।
ब्रह्मानुष्टुप्सरस्वत्यो मुन्याद्याः परिकीर्तिताः ॥
पंचपंचाए पञ्चेषु युगार्णैरङ्ग कल्पनम् ॥"

अस्या ध्यानमः-

" नवासनां सर्पभुषां कर्त्रीचापिकपालकम् ।
चषकं च त्रिशूलं च दधतीं च चतुस्करैः ।
मुण्डमलां भजेत्यक्षां महत्पूर्वां सरस्वतीम् ॥

आस्यायन्त्रमः—

" आदौत्रिकोणं षट्कोण मष्टषोडशपत्रकम् ।
द्वात्रिंशत्पत्रमन्ते स्याच्चतुःषष्टिदलं तथा ॥
त्रिरेखाढ्यं धरागेहं चतुरस्रं मतः परम् ।
एतद्यंत्रं समालिख्य बाह्यतः पूजनं चरेत् ॥"

यह बौद्धमार्गीय विद्या होनेके कारण इनकी लम्बी आवरणपूजा मैंने देखीहै। परन्तु उसका संग्रह नहींकिया; इसलिए यह यहाँ देनेको असमर्थहूँ। इसमे मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

(अब शांरदासरस्वती का वर्णन करता हूँ। इनको केवल सरस्वती भी कहते है खासकर सरस्वती नामसे इनकी ही बोध होगी। इनका जब सप्ताक्षरी मन्त्र होगा; तब यह विद्याके पूर्वाम्नाय से उपासना होगी। जब एकाक्षरी वाग्बीज होगी तब यह विद्याके उर्ध्वाम्नायसे उपसना होगी। ध्यान यन्त्रावरणादि एक ही हैं।) एकाक्षरीका उद्धार ऐसा है:—

" ऐमित्येकाक्षरो विद्या शारदायाः सुसिद्धिदा ।
अस्यास्मरणमात्रेण वागीशो जायते नरः ॥
ऋषिस्तु दक्षिणामूर्तिःपंक्तिश्छन्दश्च देवता ।
शारदा जगतां माता विनियोगः प्रकीर्तितः ॥
मूल बीजेन देवेशि कराङ्गानि प्रविन्यसेत् ।"

सप्ताक्षरि:—

" वाग्बीजं च समुच्चार्य ङेऽन्तां सरस्वतीं वदेत् ।
नमोन्तोऽयं महामन्त्रः सप्ताक्षरः प्रकीर्तितः ॥"

मन्त्रान्तरम्:—

" दण्डवर्णौ समुच्चार्य शारदायै ततो वदेत् ।
सप्ताक्षरि महाविद्या वाचासिद्धिप्रदायिनी ॥
अथवा वाग्भवान्तेच हन्मन्त्रं च समुच्चरेत् ॥"

अस्या ध्यानम्:—

" शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमामाद्यांजगद्व्यापिनीम्।
वीणापुस्तकधारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम्
हस्तैस्फाटिकमालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थिताम
वन्देतां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्॥'

अस्यायन्त्रम:—

" त्र्यास्मष्टदलं पद्मं वेदद्वारोपशोभितम् ॥
इयन्तु शारदायन्त्रं सर्वविद्याप्रदं नृणाम् ॥"

अस्यावरणपूजाः—

" त्रिकोणेऽङ्गानि षट्कानि मातृकाभिः प्रपूजयेत्।
योगं सत्यं च विमलां ज्ञानां बृद्धि स्मृति तथा॥
मेधां सरस्वतीं चैव यजेद्वसुदलेपुच ।
ब्रह्माद्याद्याश्च पत्राग्रेदिक्पालान्सायुधान्यजेत्॥
भूद्वारेपु ततो देवि ... ...॥"

अब यह वाग्बीज के विपयमें मेरी (कहनेकी) एक
है। जब इस बीजका अर्थ वाणी अथवा वाक् समझके म
होगा। तब यह पूर्वोक्तशारदाका एकाक्षरमन्त्र होगा। र
इसका अर्थ नादब्रह्म समझके मनन होगा तब र
वालात्रिपुराकी एकाक्षरी विद्या होगी। इनका ध्यान
प्रकार हैं:—

"विद्याक्षमाला सुकपाल मुद्राराजत्करां कुन्दसमानकान्तिम्।
मुक्ताफलालंकृतिशोभिताङ्गीं वालांस्मरेद्वाङ्मयसिद्धिहेतोः॥

(ऐसे अर्थ भेदसे देवता पृथक् होनेवाले बीज बहुत हैं। किर्या
(नामीमेंतो ऋष्यादि भी पृथक् होते हैं)यदि लिखने लिखने
कहीं प्रसङ्ग आयगातो देता जाऊँगा।

अब (वाणिसरस्वती पूर्वाम्नायात्मिका हैं) उनके मन्त्र
ध्यानादि इसप्रकारके हैं:—

" तारो मायाधरो बिन्दुः शक्तिस्तारं सरस्वती।
ङेऽन्ता नमोऽन्तिको मन्त्रः प्रोक्त एकादशाक्षरः॥
ब्रह्मरन्ध्रे भ्रूवोर्मध्ये नवरन्ध्रेषु चक्रमात्।
मन्त्र वर्णान् न्यसेन्मन्त्री वाग्भवेनाङ्गकल्पना॥"

अस्याध्यानम्:

" वाणीं पूर्णनिशाकरोज्ज्वलमुखीं कर्पूरकुन्दप्रभाम्।
चन्द्रार्धाङ्कितमस्तकां निजकरैः संविभ्रतीमादरात्॥
वीणामक्षगुणं सुधाढ्यकलशं विद्यां चतुङ्गस्तनीम्।
दिव्यैराभरणैर्विभूषित तनुं हंसादिरूढां भजे॥"

(अत्र वागीश्वरीसरस्वती भी पूर्वाम्नायात्मिका हैं। उनके
मन्त्र ध्यानादि इस प्रकारके हैं:—

" वाचस्पतेऽमृते भूयः प्लुवःप्लुवेतिकीर्तयेत्।
वागाद्यो मुनिभिः प्रोक्तो रुद्रसंख्याक्षरो मनुः॥
कुर्यादंगानि विधिवद्वागाद्यैः पंचभिः पदैः॥"

अस्या ध्यानम्:—

" आसीना कमले करैर्जपवटीं पद्मद्वयं पुस्तकम्।
बिभ्राना तरुणेन्दु बद्धमुकुटा मुक्तेन्दु कुन्दप्रभा॥
भालोन्मीलितलोचना कुचभराक्रान्ता भवद्भूतये।
भूयाद्वागधिदेवता मुनिगणैरासेव्यमानाऽ निशम्॥ "

अब वाचासरस्वती भी पूर्वाम्नायात्मिका हैं। उनके मन्त्र ध्यानादि इसप्रकारके हैं:—

" तोयस्थं शयनं विष्णोः सकेवल चतुर्मुखम्।
बिन्दुर्मीशयुतोवह्निबिन्दुसद्योऽम्बुमान् भृगुः॥
उक्तानि त्रीणि बीजानि सद्भिः सारस्वतार्थिनाम्।
अङ्गानि कल्पयेद्बीजैर्द्विरुक्तैर्जाति संयुतैः॥ "

अस्या ध्यानम्:–

" मुक्ताहारावदातां शिरसिशशिकलालंकृतां बहुभिः स्वै-
र्व्याख्या वर्णाक्षमालां मणिमयकलशंपुस्तकंचोद्वहन्तीम्।
आपीनोत्तुङ्गवक्षोरुहभरविनमन्मध्यदेशामधीशाम्।
वाचामीडे चिराय त्रिभुवनमितां पुण्डरीके निषण्णाम्॥"

अब वाक्प्रदासरस्वती इनको वाग्देवी भी कहतेहैं। या विद्या भी पूर्वाम्नायोपासिता है। उसके मन्त्र ध्यानादि यह है:

" हृदयान्ते भगवति वदशब्दयुगं ततः।
वाग्देवि वह्निजायान्तं वाग्भवाद्यं समुद्धरेत्॥
मनुं षोडशवर्णाख्यं वागैश्वर्यफलप्रदम्।
मनोः षड्भिः पदैः कुर्यात् षडङ्गं जातिसंयुतैः॥"

अस्या ध्यानम्:—

" शुभ्रां शुभ्रविलेपमाल्यवसनां शीतांशुखण्डोज्वलाम्।
व्याख्यामक्षगुणं सुधाढ्यकलशं विद्यांच हस्ताम्बुजैः॥
बिभ्राणां कमलासनां कुचनतांवाग्देवतां सुस्मिताम्।
वन्देवाग्विभवप्रदां त्रिनयनां सौभाग्य सम्पत्करीम्॥

इन चारों सरस्वती के यन्त्र और आवरणपूजा शारदाके समान है।

अब महासरस्वती खास महासरस्वती यह ही हैं। इनको वाय-व्याम्नायसे उपासना की जाती है। उनके मन्त्र ध्यानादि इस प्रकारके हैं.—

" तारं वाणीं समुद्धृत्य नमोऽन्तश्चतुरक्षरः।
भोगमोक्षप्रदो नृणां महासारस्वतो मनुः॥
ऋषिर्ब्रह्मा भवेदस्य गायत्री छन्दउच्यते।
बीजं चण्डेश्वरः प्रोक्तो विनियोगः प्रकीर्तितः॥
वाग्भवे नैव बीजेन कराङ्गानि प्रकल्पयेत्॥ "

ध्यानम्:—

" घण्टाशूलहलानि शङ्खमुशले चक्रं धनुः शायकम्।
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुशुक्लप्रभाम्॥
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वती मनुभजे शुम्भादि दैत्यार्दिनीम्॥"

अस्या यन्त्रम्:—

" त्रिकोणे बैन्दवंश्लिख्य पद्ममष्टदलं शुभम्॥
महासारस्वतं यंत्रंवेदद्वारोप शोभितम्॥ "

इनके आवरणपूजा मेरेपास श्लोकवद्धरुपमें नहोनेके कारण मै यहाँ नहीं देसकताहूँ। इसमें मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

अब पूर्वोक्त वडवानलतन्त्रकी नामावलीके अनुसार "वाणि पारिजातपदांङ्किता" पदका मतलब है पारिजातसरस्वती वह भी पूर्वाम्नायोपस्या हैं। उनके मन्त्र ध्यानादि इसप्रकारके हैं:—

"संपत्प्रदाया भैरव्या वाग्भवम्बीजमालिखेत्।
तारेणपरया देवी संपुटि कृत्य मन्त्रवित्॥
सरस्वत्यै हृदन्तोऽयं रुद्रार्णोमनुरीरितः।
ऋषिस्तद्दक्षिणामूर्ति र्गायत्री छन्द ईरितम्॥
पारिजतेश्वरीवाणी देवता परिकीर्त्तिता।
तृतीयंच द्वितीयंच वीजं शक्तिश्च तारकम्॥
कीलकं परमेशानि महासारस्वत प्रदम्।
षड्दीर्घस्वर संभिन्न वींजेनांङ्गानि विन्यसेत्॥"

अस्याध्यानम्—

"हंसारुढा वरहसितहारेन्दुकुन्दावदाता।
वाणी मन्दस्मिततरमुखी मौलिवद्धन्दुरेखा॥
विंद्यावीणामृतमयघटाक्षस्रजादीप्त हस्ता।
शुभ्राब्जस्था भवदभिमतप्राप्तये भारती स्यात्॥"

अस्या यंत्रम्—

"पद्ममष्टदले लेख्यं चतुरस्त्रावृतं शुभम्।
यंत्र मेतत्पारिजातसरस्वत्याः प्रकीर्तितः॥

आवरण पूजा.-

"कर्णिकायां मध्यदेशेमूलदेवीं समर्चयेत्।
पुनश्चतां षडङ्गेन संपूज्याष्टदलेषुच॥
वाणि वागीश्वरी भद्रा भारती वाक्प्रदा शिवा।
शारदा विमला चैता वसुशक्तिः प्रपूजयेत्॥
भूचक्रे दशदिक्पालान् सायुधान् क्रमतो यजेत्॥"

अब इन सरस्वतीयोंके भैरव ब्रह्माजी ही हैं। विधिजीको शाप होनेके कारण उनकी उपासना नहीं हो सकती केवल 'ॐ' मन्त्रसे शक्ति के दक्ष भागमें पूजने की प्रथा है। उनका ध्यान ऐसा है।

"पीतवर्णं चतुर्बाहुं पुस्तकाक्षौ च शुक्स्रुवौ।
दधानं रक्तवसनं पद्मस्थं हंसवाहनम्॥
चतुर्वेदसमायुक्तं सप्तर्षिगणसेवितम्।
सनकादिमुनीन्पश्यन् भजे श्रीचतुराननम्॥"

फिर जो ताराकी भेद सरस्वतीयाँ हैं उनके भैरव अक्षोभ्य हैं। इनका वर्णन ताराके साथ साथही करूंगा। सन्ध्यासरस्वती ब्रह्मगायत्रीका रूपान्तर होनेके कारण उर्ध्वाम्नायके विवरणमें और अनिरूद्धसरस्वती स्वयं दक्षिणकालीही होनेके कारण दक्षिणाम्नायके विवरणमें ये दोनों का वर्णन किया जायगा।

अब वडवानलतन्त्रोक्त नामावलीके अनुसार अन्नपूर्णाका वर्णन करताहू। ध्यान और मन्त्रके भेदसे अन्नपूर्णा पश्चाम्नायोपासिता भी हो सकती हैं। सकल भेदोंको मैं नहीं जानता हूँ। प्रत्येक प्रकारका एक एक मैं जानता हूँ वह दे रहाहूँ। पूर्वाम्नायसे उपासिता अन्नपूर्णा के मन्त्र ध्यानादि ऐसे है:—

" अथातः संप्रवक्ष्यामि अन्नपूर्णा महामनुम्।
ॐ ह्रीँ श्रीँ क्लीँ नमः भोरक्षा भगवति पदं वदेत्॥
माहेश्वरि चान्नपूर्णे स्वाहा विंशतिवर्णकः।
छन्दोऽनुष्टुप् मुनिर्ब्रह्मा ह्यन्नपूर्णा च देवता॥
ह्रीँ बीजं चापि शक्तिः श्रीँ कीलकं क्लीँ प्रकीर्तितम्।
षड्दीर्घयुक्त हल्लेखा षडङ्गेषु प्रकीर्तिता॥

अस्या ध्यानम्—

" तप्तस्वर्णनिभां शशांकमुकुटां रत्नप्रभां भासुराम्।
नानारत्नविराजितां त्रिनयनां भूमीरमाभ्यांयुताम्॥
दर्वीहाटक भाजनं चदधतीं रम्योच्चपीन स्तनीम्।
नृत्यन्तं शिवमाकलय्यमुदीतां ध्येयान्नपूर्णेश्वरी॥"

अब दूसरी आम्नायसे पूजिता अन्नपूर्णा के मन्त्र ध्यानादि ऐसे हैं:—

" माया हृद्भगवत्यन्ते माहेश्वरी पदं ततः।
अन्नपूर्णे ठ युगलं मनुः सप्तदशाक्षर॥
अङ्गानि मायया कुर्यात् ततादेवीं विचिन्तयेत्॥"

अस्या ध्यानम्:—

" रक्तां विचित्रवसनां नवचन्द्र चूडा—
मन्नप्रदाननिरतां स्तन भारनम्राम्॥
नृत्यन्तमिन्दुसकलाभरणं विलोक्य।
हृष्टां भजे भगवतीं भवदुःख हर्त्रीम्॥"

यह दोनों ही प्रकारकी अन्नपूर्णा के यन्त्र और आवरणपूजा एक ही हैं। यन्त्र ऐसा है:—

" त्रिकोणं च चतुः पत्रं वसुपत्रं ततः परम्।
कलापत्रं च भूबिम्बं चतुरस्रत्रयावृतम्॥"

अस्या वरणपूजा:—

" शिववाराहहृदीन् त्रिकोणे पूजयेत्ततः।
पार्श्वे धराञ्च लक्ष्मीञ्च ततो वेददले यजेत्॥
पराञ्च भुवनेशानीं कमलां सुभगामिति।
ततोऽष्टदलमध्येतु ब्राह्मीं माहेश्वरीं तथा॥
कौमारीं वैष्णवीं चैव वाराही मैन्द्रींमेवच।
चामुण्डाञ्च महालक्ष्मी मित्थं संपूज्य यत्नतः॥
ततः षोडश पत्रेषु ह्यमृतां मानदां तथा।
तुष्टिं पुष्टिं तथा प्रीतिं रतिं ह्रीञ्च तथा श्रियम्॥
स्वधां स्वाहाञ्च ज्योत्स्नाञ्च तथां हैमवतीं ततः।
छायां च पूर्णिमां नित्या ममावास्यां प्रपूजयेत्॥

इन अन्नपूर्णा का भैरव स्वर्णाकर्पणभैरव है, उनका मन्त्र ध्यानादि ऐसा है कि:—

" योनिं मायां रमां चोत्काबाग्भवं कमलां पुनः।
आपदुद्धारणायेति चोत्का ह्रौं ह्रीं ॡं च वदेत्॥
अजामलवद्धायेति लोकेश्वरञ्च ङेयुतम्।
स्वर्णाकर्पणपूर्वंतु भैरवाय पदं वदेत्॥
मम दारिद्र्यपदान्ते विपद्द्वेषाय घोषरेत्।
महाभैरवं ङेन्तंच दण्डं श्रौं ह्रौं च वाग्भवम्॥
एवं भैरव मन्त्रस्तु सप्तपञ्चाशद्वर्णकः॥"

अस्या ध्यानम्:-

" गाङ्गेयपात्रं डमरूं त्रिशूलं वरं करैः संदधतं त्रिनेत्रम्।
देव्या युतं तप्तसुवर्णवर्ण स्वर्णाकृतिं भैरवमाश्रयामः ॥ '

फिर दशमहाविद्यामें कमलात्मिका और विष्णुका मत्स्यावतार ऐक्य होनेके कारण मत्स्य भगवान् भी पूर्वाम्नायात्मक ही हैं उनके मन्त्र ध्यानादि ऐसे हैं:—

" एकमेवा भवन्मत्स्यावतारः कल्प आदिमे।
तस्यमन्त्रं प्रवक्षामि भुक्ति मुक्ति प्रदायकम् ॥
तारो नमो भगवते मँ मत्स्याय रमांवदेत् ।
द्वादशाक्षर मन्त्रोऽयं मुनिब्रह्मा समीरितः ॥
गायत्रीछन्द उद्दिष्टं देवता मीन विग्रह ।
भगवान् सरमानाथो वीजं श्री मँ च कीलकम् ॥
मन्त्रपदैः कराङ्गेषु न्यसेत्साधकसत्तमः ॥ "

अस्या ध्यानम्:—

" नाम्दाधो रोहितसम आकण्ठं च नराकृतिः
घनश्यामश्चतुर्वाहुः शङ्खचक्रगदाधरः ॥
शृङ्गीमत्स्यनिभो मूर्धा लक्ष्मीं वक्षोविराजितः।
पद्म चिह्नितसर्वाङ्गः सुन्दरश्चारुलोचनः ॥
एवं ध्यायेज्जगन्नाथं मत्स्यरूपं सनातनम् ॥ "

अब वडवानलतन्त्रोक्त नामावली के अनुसार जयाद्याका मतलबहै जया, जयन्ती, विजया, अजिता और अपराजिता यह ५ शक्तियाँ है। इनमेंसे अपराजिताका नाम आगेंहीदेचुका। उनका वर्णन भी होचुका। इसलिए जयाद्या पदसे उपरोक्त ४

शक्तियों को संकेत कियाहै। यह विद्यायें मेरे क्रममें नहोनेके कारण इस विषयमें मैं अनभिज्ञ हूँ। यह पूर्वाम्नाय सदाशिवके पूर्ववक्त्र तत्पुरुषः से वर्णित किया गयाहै। इसलिए तत्पुरुषः पूर्वाम्नायात्मक है उनके मन्त्रध्यान ऐसे हैं.—

" ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवायधीमहि
तन्नोरुद्रः प्रचोदयात् ।"

अस्य ध्यानम्:—

" प्रदीत विद्युत्कनकाव भासो
विद्यावराभीतिकुठारपाणिः ।
चतुर्मुखस्तत्पुरुषस्त्रिनेत्रः
प्राच्यांस्थितं रक्षतु मामजस्रम्॥"

बस अब इतना ही से अभी स्थालीपुलाकन्यायसे पूर्वाम्नाय-विषयमें मुझेजो याद था उसका दिग्दर्शन करादिया। प्रसंग-वश अन्य आम्नायोंके कोई मन्त्रों और देवताओंका इस आम्नायके देवता और मन्त्रों से संवन्ध हुआ और पिछले विवरणमें जिनका वर्णन वहुत आवश्यक नथा उनका वर्णन भी यहाँ ही देदिया है। इसी प्रकारसे अगले लेखों मे भी अन्य अन्य आम्नायोंका दिग्दर्शन करानेकी चेष्टा करूंगा।

अब यहाँ मैं एक बात लिखके यह पटल समाप्त करता हूं। पाशवकल्प के शुरुमें देहाभिमानसे तदन्तर आत्माभिमान से उपासना होती हैं। परन्तु वीर और दिव्यकल्पमें देहाभिमान में

उपासना हो ही नहीं सकती। जिस पटलमें चक्रार्चन और रा: भिराजयोगका वर्णन होगा उसमेंही यह सब शास्त्रवचन प्रमा साथ वर्णनकरूंगा। अबयहाँ छोटीसि एकदृष्टान्त देदूँगा। जो न न पुरुष, न नपुंसकहै और निराकार निर्लेप और एकरस है। उ उपासनाकरना मनुष्यमात्रका अधिकार है। इसलिए प्रथम अ अपने जन्मका वर्णाश्रम धर्मके अनुसार देहाभिमानसे पूर्ण निष्ठा और नियममें रहकर अपने अपने अधिकारानुसार दी ग्रहण कर उपर जाके जब देहाभिमान हटजाय तव आत्म मान से उपासनाकर शिवही वन् सकते है।) उदाहरणके लि मतङ्गऋषिको देखिये जो अन्त्यमे मतंङ्गभैरव वनगये वा कि ऋषिने अपने अधिकारानुसार "मरा" यह दो अक्षर दीक्षा ग्रहण कर अन्त्यमें ऋषिवर वनगये। इसलिए (वैष्ण का रामानन्दी (वैरागी) मतमें रामके दीक्षा देकर तुलसी कण्ठीदेकर, शैवोंमे विरजा हवन कराके संन्यास दीक्षा फिर शाक्तोंमें शाक्ताभिषेक देके जातीय भेदभाव हटाके देहा मानको हटाकर आत्माभिमानसे उपासना कराके गुरुक साथ समता देके अपने अपने गुट में ले लेते हैं।) कहा भि है:-

" नदेशकालनियमो भक्तादि नियमो नहि।
शौचादि नियमो नास्ति महामन्त्रस्य साधने ॥"

इसलिए साधक होनेका किसिको आकांक्षा हो तो किसी धर्मा का भी उपहास और निन्दा नकरें। देखिए शवरी नामक नारी जो जातकी भिलिनी थी उसने अपन उच्छिष्ट श्रीर

को भोजन करादी; क्यों कि यह भिलिनी देहाभिमान त्यागकर आत्माभिमानसे उपासना कर रही थी। ऐसे प्रमाण वहुत हैं लेख विस्तार भयसे यहाँ नहीं देसका। अव यहाँ यह लेख समाप्त करता हूं। मेरे लेखमें कोई त्रुटी होतो क्षमा प्रार्थी हूं।

इति श्रीधन शम्शेरवर्मणा संग्रहित श्रीतान्त्रिकोपासना-दर्पणे पूर्वाम्नाय विवरणन्नाम तृतीयः पटलः।



॥ अथ चतुर्थ पटल ॥

॥ ॐ नमः श्रीपरदेवतायै ॥



अब इसपटलमें दक्षिणाम्नायके विषयमें यथाज्ञान विवेचना करता हूँ। यह दक्षिणाम्नायमें लक्ष्मीगणपति हैं। उनका विवरण मेरुतन्त्रमें इसप्रकार दिया है:—

" वक्ष्येथ दक्षिणाम्नाये लक्ष्मी गणपतिं सुराः।
गजलक्ष्मी समायुक्तमयं योगोति दुर्लभः॥
श्रीँ गँ सौम्याय चोच्चार्यमहागणपति तथा।
ङेन्तमुक्त्वा वरवरदोक्त्वा सर्वजनं वदेत्॥
मेवशमानय स्वाहेत्येकोनत्रिंशदक्षरः॥
अन्तर्यामी मुनिश्छन्दो गायत्री त्रिवृदन्विता।
देवोलक्ष्मी गणेशोत्राथाद्यबीजद्वयेनतु॥
षड्दीर्घयुक्तेनांगानि जातियुक्तानिकारयेत्॥"

अस्य ध्यानम्—

" हेमाभं पीतवसनं शङ्खचक्रगदा भयान्।
दक्षोर्ध्वकरमारभ्य दक्षिणेधः करावधि॥
दधतं शुण्डया स्वर्णघटं पद्मोपरि स्थितम्।
वामाङ्काविष्टलक्ष्म्या चाश्लिष्टं दक्षभुजेनच॥



श्री दक्षिण काली

अस्य यन्त्रम्:—

" प्राक्प्रोक्ते तीव्रादि नवशक्तिके ।
अष्टपत्राम्बुजद्वन्द्वे कर्णिकाकेशरोज्ज्वले ॥
चतुर्द्वारसमायुक्त चतुरस्रत्रयावृते ॥ "

अस्यावरणपूजा—

" मूलेन मूर्ति संपल्प्य तस्यामावाह्य पूजयेत् ।
प्रथमावृत्तिरङ्गैः स्याद्वक्रतुण्डादिभिः परा ॥
अणिमा महिमा चैव लघिमा गरिमा तथा ।
ईशित्वं च वशित्वं च प्राकाम्यं प्राप्तिरग्रतः ॥
चतुर्थी मातृभिश्चाग्रे लोकेशानायुधानिच ।
लक्षं जपेद्धुनेद्बिल्वसमिधो मधुरप्लुताः ॥
तर्पणादि ततः कृत्वा काम्यकर्माणि साधयेत् ॥ "

अब श्रीसूर्य्य के विपयमें लिखता हूं । इनके द्वादशभेद हैं । दक्षिणाम्नायसे ही उन सबका उपासना होता है । इस विपयमें ऐसा लिखा है:—

" एक एवाऽस्य चाऽऽम्नायो दक्षिणः परिकीर्तितः ।
यथाऽयं यवनं विप्रं सममेव करैः स्पृशेत् ॥
उपासना तथैवाऽस्य स्वधर्म्माचारपूर्विका ।
चतुर्युगेषु प्रत्यक्षो देवोऽयं सर्वसंमतः ॥
सर्वेपामेव देवानां नेत्रभूतो जगत्पतिः ॥ "

श्रीसूर्यके द्वादश भेदों के विपयमें आगमशास्त्रमें ऐसा लिखा है:—

" वरुणः सूर्यवेदाङ्गो भानुरिन्द्रो रविस्तथा ।
गभस्तिस्तु यमः स्वर्णरेता श्चाऽथ दिवाकरः ॥
मित्रो विष्णु रिती प्रोक्ता आदित्या द्वादश क्रमात् ।
तपन्ति माघादारभ्य क्रमादमिततेजसः ॥ "

यह द्वादश भेदों में द्वादश ही मन्त्र ध्यानादि हो सकते हैं। परन्तु उनमें से केवल ४ ही मुझे मालुम हैं वह निचे देदूंगा। सूर्यके मन्त्र ध्यानादि ऐसे हैं।

" तारो घृणिर्भृगुः पश्चाद्वामकर्णविभूषितः ।
वन्ह्यासनो मरुच्छेपःसनेत्रोऽद्रिस्त्य पश्चिमः॥
अष्टाक्षरो मनुः प्रोक्तो भानोरभिमप्रदः ।
देवभागो मुनिः प्रोक्तो गायत्री छन्द ईरितम् ॥
आदित्यो देवता प्रोक्तो दृष्टादृष्टफलप्रदः ।
सत्याय हृदयं प्रोक्तं ब्रह्मणे शिर ईरितम् ॥
विष्णवे स्याच्छिखा वर्म रुद्राय परिकीर्तितम् ।
अग्नये नेत्रमाख्यातं सर्वायास्त्रमुदाहृतम् ॥
तेजोज्वाला मणि हूँ फट् द्विठान्तः पृथगीरिताः ॥"

अस्या ध्यानम्—

" रक्ताब्जयुग्मा भयदानहस्तं केयूरहाराङ्गदकुण्डलाढ्यम् ।
माणिक्यमौलिं दिननाथमीड़े वन्धूककान्तिविलसत्त्रिनेत्रम् ॥

भानुका मन्त्र ध्यानादि इस प्रकार के हैं:-

" आकाशमग्निदीर्घेन्दुसंयुतं भुवनेश्वरी ।
सर्गान्वितो भृगुर्भानो स्त्र्यक्षरो मनुरीरितः ॥

आधारादिपदाग्रान्तं क्रमाद्बीज त्रयं न्यसेत् ।
षड्दीर्घस्वरयुक्तेन मध्येनाङ्गानि कल्पयेत् ॥ "

अस्य ध्यानम्—

" रक्ताम्बुजासनमशेषगुणैकसिन्धुम् ।
भानुं समस्तजगतामधिपं भजामि ॥
पद्मद्वयाभयवरान् दधतं कराब्जै-
र्माणिक्यमौलिमरुणाङ्गरुचिं त्रिनेत्राम् ॥

रवि के मन्त्र ध्यानादि मेरुतन्त्रमें इसप्रकारके लिखे हैं:-

" अथमन्त्रान्तरं वक्ष्ये दिनेशस्य षडक्षरम् ।
हं खं खखोल्काय वाऽथ खखोल्कायाग्निगेहिनी ॥
मुनिर्ब्रह्मा च गायत्री छन्दः सवितृदैवतम् ।
सूक्ष्मरूपायाग्निवधूमन्त्रेण हृदयं मतम् ॥
सूक्ष्माकारायाग्निवधू रिती मन्त्रेण शीर्षकम् ।
सूक्ष्मवालाय स्वाहेति कवचं च सनेत्रकम् ॥
सूक्ष्मकाय हुँ फडिति शस्तं पञ्चाङ्ग मीरितम् ।
मन्त्रवर्णैः षडङ्गं स्याद्ध्यानमस्याच्यतेऽधुना ॥"

अस्य ध्यानम्—

" रक्तपद्मद्वयं हस्तैर्बिभ्राणं वरदाभये ।
वन्धूकाभं त्रिनेत्रंच रविं ध्यायेत्सुभूषितम् ॥ "

अथ वेदाङ्ग (सूर्य्य) के विषयमें मेरुतन्त्रमें लिखा है:-

" तत्र भास्करमन्त्रस्य हिरण्यस्तूपकोमुनिः ।
त्रिष्टुप्छन्दो देवतातु सविता परिकीर्तितः ॥
आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च ।

हिरण्यरथेन सवितारथेन देवो याति भुवनानिपश्यन्।
अंगुष्ठादिषडङ्गादि षड्वर्णान्वि भजंश्चरेत्।
ओसूक्तोक्तसुचां स्थाने ततो ध्यायेद्दिवाकरम् ॥"

अस्य ध्यानम्—

" पद्मासनं पद्मकरं पद्मगर्भसमद्युतिम्।
सप्ताश्वं सप्तरज्जुं च जातंदेशेकलिङ्गके ॥
विश्वामित्रार्षकं त्रिष्टुपछन्दः काश्यपगोत्रजम्।
रक्ताम्बर धरं रक्ताभरणैरुपशोभितम् ॥
रक्तगन्धानुलेपाङ्गं रक्तध्वजपताकिनम्।
किरीटिनं सकेयूरं मण्डितं रक्तकुण्डलिनम् ॥
रथारुढं तस्य सव्यं त्वधिदैवाग्न्यधिष्ठितम्।
प्रत्यधिदैवेश्वरेणासव्ययुक्तं च प्राङ्मुखम् ॥"

"यह सूर्य्य के द्वादशही भेदोंका समष्टि रुप मार्तण्डभैरव हैं।) उनका मन्त्र ध्यानादि के विषयमें शारदातिलक तन्त्रमें इस लिखा है:-

" आकाशमग्निपवनसाद्यान्तार्घी, शविन्दुमत्।
मार्तण्डभैरवं नाम बीजमेतदुदाहृतम् ॥
पुटितं विम्बबीजेन सर्वकामफलप्रदम्।
टान्तं दहननेत्रेन्दु सहितं तदुदाहृतम् ॥
पञ्चहस्वाद्यबीजेन पञ्चमूर्त्तीः प्रविन्यसेत्।
मध्यमादि कनिष्ठान्तमङ्गुलीषु क्रमादिमाः ॥
सूर्याख्यो भास्करो भानुस्ततो रविर्दिवाकरो।

शिरोवदन हृद्गुह्यपाददेशेषु ताः पुनः ॥
दीर्घयुक्तेन बीजेन नेत्राङ्गानि प्रविन्यसेत्।
व्यापकं मूलबीजेन कुर्वीत तदनन्तरम् ॥"

अस्य ध्यानम्-

" हेमाम्भोजप्रवालप्रतिमनिजरुचिं चारुखट्वाङ्गपद्मौ।
चक्रं शक्तिं सपाशं सृणिमतिरुचिरामक्षमालांकपालम् ॥
हस्ताम्भोजैर्दधानं त्रिनयनविलसद्वेदवक्त्राभिरामम्।
मार्तण्डं वल्लभार्धं मणिमयमुकुटं हारदीप्तं भजामः ॥"

(यह मार्तण्डभैरव के सिवाय अन्य सकल सूर्यके भेदोंका उपासना केवल पाशवकल्पसें होना चाहिये। सूर्यके सकल ही भेदोंका यन्त्र केवल "द्वादशदलपद्म" है।) इसमें केशर नहीदिया जाता।

अब शक्तिके साथही दक्षिणाम्नायपूजित शिव और विष्णुके भेदोंका भी वर्णन किया जाएगा।

वड़वानलतन्त्रमें लिखा है:-

" निश्शेशी दक्षिणाकाली वगला छिन्नमस्तका।
भद्रा तारा च मतङ्गी दक्षिणाम्नाय देवताः ॥"

फिर परातन्त्रमें लिखा है:-

" जम्भिनी स्तम्भिनी तारा मोहिनी अन्धिनी शिवा।
मृत्युञ्जया चर्चिका च सिंही दक्षिणकालिका ॥
प्रचण्डा उग्रचण्डा च उग्रतारा कपालिनी।
त्वरिता छिन्नशीर्षा च वगला वाक्प्रदायिनी ॥

नीलासरस्वती भीमा त्रैलोक्यडामरेश्वरी ।
त्रैलोक्यविजया चण्डी रक्तचामुण्डभैरवी ॥
दक्षिणाम्नाय देवेशि नाना भेदविसारिणी ॥ ”

फिर वृहद्वड्वानलतन्त्रका कतदीशाके पटलमें लिखा है:-

“आद्या श्यामा दक्षिणा च दक्षिणाम्नायवर्त्मनि ॥ ”

निश्शेशी के विषयमें यहविद्या मेरे क्रममें न होनेके कारण मैं बिलकुल अनभिज्ञ हूं । तथापि परातन्त्र में पढा हूँ। उसमें भी यहविद्याका केवल ध्यान तक लिखाहै परन्तु मन्त्रपूजादि का विवरण नहीं दियागयाहै । इसलिए मैं यहाँ उनका केवल परातन्त्रोक्त ध्यान देरहा हूँ । वह इसप्रकारका है:-

“ चतुर्वेदासनादेवी महाफुत्कारसंस्थिता ।
प्रोज्ज्वलन्ती चितामध्ये दक्षिणे दक्षदा परा ॥
अलातचक्रवद्यस्या भ्रमन्ती शिरमालिका ।
प्रपञ्चदक्षा ह्रस्वाङ्गी चास्थिचर्मावशेषिता ॥
व्याघ्रचर्म्मकटी वृत्ता नरचर्म्मोत्तरीयका ।
सहस्रादित्यसंकाशा तप्तकाञ्चनसंप्रभा ॥
पञ्चवक्त्राचातिभीमा त्रिपञ्चनयनैर्युता ।
ईषद्धास्या ललज्जिह्वा निम्ननाभिः कृशोदरी ॥
विकरालासने संस्था चक्रासनोपरिस्थिता ।
रौद्री भयावहा घोरा चन्द्रार्द्धकृतकेतना ॥
वर्वरोर्ध्वमुक्तकेशी नागराजविराजिता ।
कवन्धोऽष्णीशसंयुक्ता ब्रह्मशीर्षशिखामणि ॥
सद्यच्छिन्नगलद्रक्तशिरोमालाविभूषिता ।

भुजगोडशसंयुक्ता गजकंचुकिकिङ्किणी ॥
पाशांकुशकपालश्च खट्वाङ्गं मुण्ड डिण्डिमम् ।
खड्गखेटकबाणधनुश्चकदण्डकमण्डलुः ॥
(तन्त्रोंमें ऐसा छन्दो कहि कहि आर्षप्रयोगहोताहै)
अभयंवरदं चैव तर्जनीं च धृताकरैः ।
मुदिता सिद्धमधुना शक्तिभिः परिवारिता ॥
हुंहुंहुं कारनादेन त्रासयन्ती सुरासुरान् ।
ऋग्यजुः सामथर्वाख्यवेदस्यो परिसंस्थिता ॥
शवरुपमहादेवहृदयोपरिसंस्थिता ।
निश्शेशी सा महोग्राच दक्षिणाचार वर्जिता ॥ ”

अब वडवानल तन्त्रोक्त नामावलि के अनुसार दक्षिणकाली का वर्णन करनापडेगा और उसके साथ साथही काली का भेदका वर्णन करता जाऊँगा। काली अरूपा है उसकि साथ रुपकी कल्पना होजाती है । यह बाततो पूर्वही कहचुका हूँ । बहुतसे लोगोंको English word में बताने से विशेष बोध हो सकता होगा। इसलिए मैं यहाँ वैसाही करूंगा। काल है time उनका सत्ता Infinity है काली। इसलिए "काली" अति सूक्ष्मपदार्थ केवल चैतन्य है'। उनको शून्य भी कहसकते है। इसका तात्पर्य यह है कि जब अकेला ही शून्य रहजाएगा तव उसका कुछभी भाव (value) नहीं होगा; जब १ रुप ब्रह्म में वह शून्य लगायाजाएगातो, वह १० बन जाएगा। वैसाही जितना जितना ० बढ़जाएगा उतना उतना दश दश गुण वह १ का भाव बढ़कर अन्तमें (Infinity) अनन्त वन जाएगा । ० भी अवाङ्मनसगोचर

है अनन्त (Infinity) भी अवाङ्मनसगोचर है। इसलि
काली अतिसूक्ष्मा और अतिस्थूला कहगयी है।)

बहुतसे लोगोंको भ्रम है कि सबही कालीकायें महाकाली हैं और महाकाल संहाररूपा है। किन्तु ऐसा नहीं है। काल तो उपाधि-भेद से सृष्टिमूर्ति, स्थितमूर्ति, संहारमूर्ति अनाख्यामूर्ति होती है। प्रत्येक मूर्तिके मन्त्रयन्त्रध्याना में भी भेद होता है। बहुत से लोग श्यामाकाली (दक्षिणाकाली को आद्याकाली कहतें है। यह भी भ्रमोत्पादक बात है। दश महाविद्या के मतसे तथा हाद्याम्नायक्रम और लघुक्रमके मत श्यामाकाली (दक्षिणाकाली) को आद्या, नीलाकाली (तार को द्वितीया और प्रपञ्चेश्वरी रक्तकाली (महात्रिपुरसुन्दरी को तृतीया कहते हैं। परन्तु यह श्यामाकाली [दक्षिणाकाल आद्याकाली] नहीं है, किन्तु आद्यविद्या हैं। अब काली, केन केन मूर्ति क्या क्या है इस विषयमें लिखता हूं सृष्टिमू आद्याकाली, स्थितिमूर्ति श्यामाकाली, संहारमूर्ति महाका मतान्तरसे विपरीत प्रत्यङ्गिरा भद्रकाली अनाख्यामूर्ति गु काली, और भाषामूर्ति उत्तराम्नायी के लिए कामकला गु काली, दक्षिणाम्नायीके लिए कामकलादक्षिणाकाली त ऊर्ध्वाम्नायी के लिए बृहद्रक्तकाली (भाषामहात्रिपुरसुन्दर हैं। कामकला कोही भाषा कहते हैं। यह कामकला के व्याख विसदरूपसें मद्रचित "श्री पराविभूतिस्तोत्र" में एक मतसे त "श्री परामहिमस्तोत्र" में दुसरे मतसे शास्त्रवचनप्रम और व्याख्या सहित श्लोक बद्धकर प्रकाश करचुका हूं। विनामूल्य वितरण भी कर रहा हूँ। वह संस्कृत भाषामें

अभीवे पुस्तिकायें मेरे पास केवल १००।१५० कापियां बाकी हैं। (अब यहाँ संक्षेपतया कामकलाका वर्ण करता हूं। प्रकाश और विमर्श, शिव और शक्ति, आकर्षण और विकर्षण तथा Positive और Negative जो कहिये दो मूलतत्व (Electrical force) से दो विन्दु उत्पन्न हुए। एक श्वेतबिन्दु (Progitron) और रक्तविन्दु (Electron)। यह दो विन्दु मिलके तिसरा मिश्रविन्दु (Nutron) बन गया। इनमें से शुक्लविन्दु [Progitron] को चन्द्रविन्दु, रक्तविन्दु (Electron) को अग्निविन्दु तथा मिश्रविन्दु [Nutron] को सूर्यविन्दु कहते हैं। सूर्यविन्दुं को काम तथा चन्द्र और अग्नि विन्दु युगल के कला कहतेहै, इनका हेलमेल (Electrical movements) से एक नाभिकण [Proton] जो निकलजाता है वह सत्ता को कामकला कहते हैं) इस विषयमें आगमशास्त्रमें लिखा है:-

" एकारोर्ध्वगतोविन्दुर्मुखं भानुरधोगतौ।
स्तनौ दहनशीतांशू योनिर्हार्द्धकला भवेत्॥
बिन्दुं संकल्प्य वक्त्रन्तु तदधस्तात् कुचद्वयम्।
तदधः सपरार्द्धन्तु चिन्तयेत्तदधोमुखम्॥"

अन्यच्च -

" अग्रविन्दुपरिकल्पिताननामन्य बिन्दुरचितस्तनद्वयीम्।
नादबिन्दुरचनागुणास्पदां नौमि ते परशिवे परांकलाम्॥"

इस विषयमें श्री १०८ स्वामी शंकराचार्यने भी लिखा है:-

" मुखं विन्दुंकृत्वा कुचयुगमधरतस्य तदधो ।
हकारार्द्धं ध्यायेद् हरमहिषि ते मन्मथकलाम् ॥
स सद्यः संक्षोभं नयति वनिता इत्यदि लघु ।
त्रिलोकी मप्याशु भ्रमयति रवीन्दुस्तनयुगाम् ॥ "

अब मै यहा आद्याकाली के मन्त्रो का भेद लिखूँगा उन सवोंका दक्षिणाम्नायसे उपासना होगा । महानिर्वाणतन्त्रमें इसप्रकार लिखा है:-

" तत्रादौ शृणुदेवेशि मन्त्रोद्धार क्रमं शिवे ।
यस्य श्रवणमात्रेण जीवन्मुक्तोऽपिजायते ॥
प्राणेशस्तैजसारूढो भेरूण्डा व्योमविन्दुमान् ।
वीजमेतत् समुद्धृत्य द्वितीयमुद्धरेत प्रिये ॥
सन्ध्या रक्तसमारुढा वामनेत्रेन्दु संयुता ।
तृतीयं शृणु कल्याणि दीपसंस्थः प्रजापतिः ॥
गोविन्दर्विन्दुसंयुक्तः साधकानां सुखावहः ।
वीजत्रयान्ते परमेश्वरिसंवोधनं पदम् ॥
वह्निकान्तावधि प्रोक्तो दशार्णोऽयं मनुः शिवे ।
सर्वविद्यामयी देवी विद्येयं परमेश्वरी ॥
आद्यत्रयाणां वीजानां प्रत्येकं त्रयमेववा ।
प्रजपेत् साधकाधीशः धर्म्मकामार्थसिद्धये ॥
वीजमाद्यत्रयं हित्वा सप्तार्णोऽपि दशाक्षरी ।
कामवाग्भवताराद्या सप्तार्णोऽष्टाक्षरी त्रिधा ॥
दशार्णमन्त्रणपदात् कालिके पदमुच्चरेत् ।
पुनराद्यत्रयं वीजं वह्निजायां ततो वदेत् ॥

षोडशीयं समाख्याता सर्व तन्त्रेषु गोपिता ।
वध्वाद्या प्रणवाद्या चेदेषा सप्तदशी द्विधा ॥ "

(इनके मन्त्रोंके यह द्वादश भेदों के ही न्यास, ध्यान, यन्त्र तथा आवरणपूजादि सब एक ही है ।) फिर वही निर्वाणतन्त्र में इनके न्यासके विषयमें लिखा है:-

" अस्य मन्त्रस्य ऋषयो ब्रह्माब्रह्मर्षयस्तथा ।
गायत्र्यादीनि छन्दांसि आद्याकाली तु देवता॥
आद्याबीजं बीजमिति शक्तिर्माया प्रकीर्तिता ।
कमला कीलकं प्रोक्तं स्थानेष्वेतेषु विन्यसेत् ॥
शिरोवदन हृद्गुह्य पादसर्वाङ्गकेषुच ।
मूलमन्त्रेण हस्ताभ्या मापादमस्तकावधि ॥
मस्तकात्पादपर्यंतं सप्तधा वा त्रिधान्यसेत् ।
अयन्तु व्यापकन्यासो यथोक्तफलसिद्धिदः ॥
यद्बीजाद्या भवेद्विद्या तद्बीजेनाङ्गकल्पना ।
अथवामूलमन्त्रेण षड्दीर्घेन विना प्रिये ॥"

अस्या ध्यानम् महानिर्वाणतन्त्रे---

" मेघाङ्गीं शशिशेखरां त्रिनयनां रक्तांवरां विभ्रतीम् ।
पाणिभ्यामभयं वरञ्च विलसद्रक्तारविन्दस्थिताम् ॥
नृत्यन्तं पुरतो निपीय मधुरं माध्वीकमद्यं महा -
कालं वीक्ष्य विकासिताननवरामाद्यां भजे कालिकम् ॥"

अस्या यन्त्रम् तत्रैव-

" यन्त्रराजं प्रवक्ष्यामि समस्तपुरुषार्थदम् ।
मायागर्भं त्रिकोणञ्च तद्बाह्ये वृत्तयुग्मकम् ॥

तयोर्मध्ये युग्मयुग्मक्रमात् षोडश केसराम् ।
तद्बाह्ये ऽष्टदलं पद्मं तद्बहिर्भूपुरं लिखेत् ॥
चतुर्द्वारसमायुक्तं सुरेखं सुमनोहरम् ॥ "

अस्यावरणपूजा तत्रैव—

" अग्निर्निऋति वाय्वीशपुरतः पृष्ठतः क्रमात् ।
षडङ्गानि च संपूज्य गुरुपङ्क्तीः समर्चयेत् ॥
गुरुश्च परमादिश्च परापरगुरुस्तथा ।
परमेष्ठिगुरुश्चैव यजेत् कुलगुरूनिमान् ॥
गुरुपात्रामृतेनैव त्रिस्त्रिस्तर्पणमाचरेत् ।
ततोऽष्टदलमध्ये तु पूजयेदष्टनायिकाः ॥
मंगला विजया भद्रा जयन्ती चापराजिता ।
नन्दिनी नारसिंही च कौमारीत्यष्टमातरः ॥
दलाग्रेषु यजेदष्ट भैरवान् साधकोत्तमः ।
असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधोन्मत्तो भयङ्करः ॥
कपाली भीषणश्चैव संहारोऽष्टौ च भैरवाः ॥
इन्द्रादिदशदिक्पालान् भूपुरान्तः प्रपूजयेत् ॥
तेषामस्त्राणि तद्बाह्य पूजयेत्: तर्पयेत् ततः ।"

श्यामाकाली के मन्त्रोंके जिन भेदोंको मैं यहाँ लिखता हूँ उन सबोंके न्यास ध्यान, यन्त्र तथा आवरण पूजादि एक ही होनेके कारण यहाँ सबसे आगे न्यास और ध्यान लिखकर तत्पश्चात मन्त्रोंके भेद देता हूँ। श्यामाकाली (दक्षिणाकाली) तथा कामकला दक्षिणाकाली के भी मन्त्रोंके ऋष्यादि कर

गन्यास इसप्रकारके है:—

" महाकाल भैरवोऽस्य मुनिरुष्णिक्समाख्यातः ।
छन्दश्च दक्षिणाकाली देवता ब्रह्मरूपिणी ॥
बीजं लज्जा तथा कूर्चं शक्तिः कुन्ती चकीलकम् ।
प्रणवाद्येन चाद्यंन षड्दीर्घेणाङ्गकल्पना ॥ "

श्यामाकाली (दक्षिणाकाली)-का ध्यान इसप्रकार का है:—

" सद्यश्छिन्नशिरः कृपाणमभयं हस्तैर्वरं बिभ्रतीम् ।
घोरास्यां शशीशेखरां त्रिनयनामुन्मुक्तकेशावलीम् ॥
सृक्कासृक् प्रवहां श्मशाननिलयां श्रुत्योः शवालंकृताम् ।
श्यामाङ्गीं कृतमेखलां शवकरैर्देवीं भजे कालिकाम् ॥ "

अब दक्षिणाकाली यानि श्यामाकाली के विविध मन्त्रः भेदों का वर्णन करता हूं। मेरुतन्त्रमें लिखा है:—

" क्रीँ हूँ ह्रीँ त्र्यक्षरात्मायं मन्त्रः काल्याः प्रकीर्तितः ।
प्राग्वज्जपादिकं चास्य विशेषात् सन्ततिप्रदः ॥
काली बीजं च हूँ माया हूँ फट् पञ्चाक्षरो मनुः ।
न्यासध्यनादिकं प्राग्वद्विशेषाद्भूतनाशनम् ॥
क्रीँ हूँ ह्रीँ हुँ फडत्युक्ता स्वाहान्तः सप्तवर्णकः ।
मायाद्वन्द्वं कूर्चयुग्ममैन्द्रान्तं मदनत्रयम् ॥
मायाविन्द्विश्वरयुतं दक्षिणे कालीके पदम् ।
संहारक्रमयोगेन बीज सप्तकमुद्धरेत् ॥
एक विंशत्यक्षरात्मा ताराद्यः कालिकामनुः ॥ "

पुनश्च तत्रैव पटलान्तरे—

" अथान्यं संप्रवक्ष्यामि एकविंशतिवर्णकम् ।
ॐ ह्रीँ ह्रीँ हूँ युगं त्रिः क्रीँ दक्षिणेकालीके वदेत् ।
त्रिः क्रीँ हूँ हूँ शक्ति युग्ममस्य न्यासादि पूर्ववत् ।
विल्वमूले शवारूढो वटमूले तथैवच ॥
लक्षं मनुमिमं जप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत ।
पञ्चमं प्रतिनिध्यायं दक्षिणाम्नायसिद्धिदम् ॥ "

(अब कामकला दक्षिणाकाली को महामन्त्र द्वाविंशाक्षरी विद्या जिसको विद्याराज्ञी भी कहते है उनका वर्णन करता हूँ । यह कामकला दक्षिणकालीको अनिरुद्धसरस्वती भी कहते हैं । तथा दक्षिणकाली को कामकला (विपरीतरतातुरा) रुपको केवल दक्षिणा नामसे और साधारण (खडी) रुपको केवल श्यामा नामसे पुकारते हैं ।) इनके द्वाविंशाक्षरी महाविद्याके विषयमें कुमारीतन्त्रमें लिखा हैः-

" तस्या मन्त्रं प्रवक्ष्यामि यतो रक्षेज्जगत्त्रयम् ।
ककारं वह्निसयुक्तं रति विन्दुसमन्वितम् ॥
त्रिगुणं च ततः कूर्चयुग्मं लज्जायुगं ततः ।
दक्षिणे कालिके चेति पूर्व वीजानि चोच्चरेत् ॥
वह्निजायावधिः प्रोक्तो कालिकाया मनुः शिवे ।
द्वाविंशत्यक्षरी विद्या सिद्धिविद्ये यमीरिता ॥ "

इनका ऋष्यादिकरपडङ्गन्यास पूर्ववत् ही है । अव इनके रुपमन्त्रादि का वर्णन करता हूँ तत्पश्चात् ध्यानका वर्णन करूंगा । मेरुतन्त्रमें लिखा हैः-

" दक्षिणे कालिके स्वाहा मनुरष्टाक्षरः परः ।
न्यासः प्राग्वद्ध्यानमन्त्रश्चाय रूपशिवस्थिताम् ॥
महाकाल रतासक्तां शिवाभिर्दिक्षु वेष्टिताम् ॥ "

अन्यच्च तत्रैव—

" अथातः संप्रवक्ष्यामि शक्रवर्णं मनूत्तमम् ।
क्रीँ हूँ ह्रीँ दक्षिणकालिके क्रीँ हूँ ह्रीँ दहनप्रिया ॥
यजनं पूर्ववत् प्रोक्तं न्यासध्यानजपादिकम् ।
विशेषान्नृखुरादीनामयमाकर्षणक्षमः ॥
हूँ हूँ त्रिः क्रीँ द्विश्च लज्जां दक्षिणेकालिके पुनः ।
हूँ हूँ त्रिः क्रीँ द्विश्च लज्जां स्वाहेत्याकृतिवर्णवान् ॥
न्यासपूजादिकं प्रग्वद्विशेषेण वशीकृतिः ।
जपादेतस्य भवति सर्वमन्यत्तु पूर्ववत् ॥
क्रीँ क्रीँ क्रीँ हूँ समुच्चार्य हूं लज्जाद्वयमुच्चरेत् ।
दक्षिणे कालिके स्वाहा तिथिवर्णः प्रकीर्तितः ॥
मन्त्रराजाऽयमाख्यातः पूर्ववत् स्यादुपासना ।
विशेषाद्गतराज्यानामयं राज्यप्रदो भवेत् ॥ "

(अव एक याद रखने की वात है कि दक्षिणाकाली के जिन जिस मन्त्रमे स्वाहान्त है वह कामकला दक्षिणाकालीका मन्त्र है अन्य श्यामादक्षिणाकाली का हैं ।) कामकला दक्षिणाकाली का ध्यान मेरुतन्त्रमें लिखा हैः—

" करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम् ।
कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमाला विभूषणाम् ॥
खड्गाभयवरांश्छिन्नं मुण्डं च दधतीं करैः ।

महामेघप्रभां श्यामां तथा चैव दिगम्बराम् ॥
कण्ठावसक्तमुण्डालीं गलद्रुधिर चर्चिताम् ।
कर्णावतंसतानीत शवयुग्मविराजिताम् ॥
घोरदंष्ट्रां करालास्यां पीनोन्नतपयो धराम्।
शवानां करसंघातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम् ॥
सृक्कद्वयगलद्रक्तधाराविच्छुरिताननाम् ।
घोररूपां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम् ॥
दन्तुरां दक्षिणव्यापि मुक्तलम्बकचोच्चयाम्।
शवरूप महादेव हृदयोपरि संस्थिताम् ॥
शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम् ।
महाकालेन च समं विपरीतरतातुराम् ॥
सुखप्रसन्नवदनां स्मेराननसरोरुहाम् ।
एवं संचिन्तयेत्कालीं श्मशानालयवासिनीम् ॥"

श्यामा तथा दक्षिणाके यन्त्र और आवरणपूजा एक ही हैं। इनका यन्त्रोद्धारा ऐसा है:-

"त्रिकोणं पञ्चकं चाष्ट कमलं भूपुरान्वितम्।
मुण्डपंक्तिश्च ज्वालाश्च कालीयन्त्रम् सुसिद्धिदम् ॥"

अस्यावरणपूजा—

"षडङ्गानि प्रपूज्याथ प्रगुरुपंक्तोः समर्चयेत् ।
सर्वाः श्यामा असिकरा मुण्डमालाविभूषिताः ॥
तर्जनीं वामहस्तेन धारयन्त्यश्च सस्मिताः ।
एवं ध्यात्वा त्रिपञ्चारे पीठे संपूजयेत् क्रमात् ॥
कालीं कपालिनीं कुल्लां कुरुकुल्लां विरोधिनीम्।

विप्रचित्तां तथोग्रोग्रप्रभां दीप्तां तदन्तरम् ॥
नीलां घनां बलाकाञ्च मात्रां मुद्रां ततः पुनः ।
पद्माष्टदलमध्येतु ब्राह्मीं नारायणीं तथा ॥
माहेश्वरीं च चामुण्डां कौमारीं चापराजिताम्।
वाराहीं नारसिंहीं च पुनः पत्राग्रमण्डले ॥
भीषणास्यं त्रिनयन मर्द्धचन्द्रविभूषितम्।
स्फाटिकाभं कंकणादि भूषाशतसमायुतम् ॥
अष्टवर्ष वयस्कञ्च कुन्तलोल्लसितं भजे ।
धारयन्तं दण्डशूलौ भैरव्यादि समायुतम् ॥
एवं ध्यात्वा यजेत्तत्र वामावर्त्तेन साधकः।
असिताङ्गं रुरूं चण्डं क्रोधमुन्मत्त भैरवम् ॥
कपालिनं भीषणञ्च संहारभैरवं ततः ।
पुनस्तत्रैव देवेशि पूजयेत्साधकोत्तमः ॥
भावयेच्च महादेवीं चन्द्रकोट्ययुतप्रभाम् ।
हिमकुन्देन्दुधवलां पञ्चवक्त्रां त्रिलोचनाम् ॥
अष्टादशभुजैर्युक्तां सर्वानन्दकरोद्यताम् ।
प्रहसन्तीं विशालाक्षीं देवदेवस्य सन्मुखीम् ॥
श्रीभैरवीं महापूर्वां भैरवीं तदनन्तरम्।
सिंहपूर्वां धूम्रपूर्वां भीमपूर्वां तथैवच ॥
उन्मत्तभैरवीं पश्चाद्वशीकरण भैरवीम् ।
मोहनाख्यां भैरवीञ्च वामावर्तेन पूजयेत् ॥
मुण्डपंक्तौ राशिनक्षत्रात्मिका मुण्डमालिकाः।
ज्वालेषुचाष्टविंशतिनक्षत्रात्मकमस्तकान्ः ॥
सर्वसाधिनि ज्वालाञ्च कालसंकर्षिणी शिवाः।

श्रीचिताङ्गारमुण्डास्थिनिकरांश्च प्रपूजयेत् ॥
इन्द्रादि दशदिक्पालान् भूपुरे च यजेत्ततः ।
तेषामस्त्राणि तद्बाह्ये पूजयेत् तर्पयेत् क्रमात् ॥"

अब इनके भैरव महाकाल के मन्त्र ध्यानादि के विषयमें शक्तिसंगमतन्त्रमें लिखा हैं:—

"तस्यमन्त्रं प्रवक्ष्यामि येन रक्षेज्जगत्त्रयम् ।
कूर्चयुग्मं महाकाल प्रसीदेति पदद्वयम् ॥
लज्जायुग्मं वह्निजायासंयुक्तः षोडशार्णकः ।
षोडशार्णो यथा मुख्याः सर्वश्रीचक्रमण्डले ॥
तथायं सर्वकालीषु महाकालः प्रकीर्तितः ।
कालिकाऽस्य ऋषिः प्रोक्तो विराट्छन्दःप्रकीर्तितम् ॥
देवता तु महाकालः सर्वरूपी निरञ्जनः ।
कूर्चबीजं तथा माया शक्तिरस्य प्रकीर्तिता ॥
स्वाहा कीलकमुद्दिष्टं काल्यर्थे विनियोगता ।
मायया तु षडङ्गानि ध्यानं शृणु वरानने ॥"

अस्य ध्यानम्:—

"कोटिकालानलाभासं चतुर्बाहुं त्रिलोचनम् ।
श्मशानाष्टकमध्यस्थं मुण्डाष्टकविभूषितम् ॥
पञ्चप्रेतस्थितं देवं त्रिशूलं डमरुं तथा ।
खड्गं च खर्परञ्चैव वामदक्षिणयोगतः ॥
बिभ्रतं सुन्दरं देहं श्मशानभस्मभूषितम् ।
नानाशवैः क्रीडमानं कालिकां हृदयस्थिताम् ॥
लालयन्तं रतासक्तं घोरचुम्बन तत्परम् ।

गृद्धगोमायुसं युक्तं फेरवीगणसंयुतम् ।
जटापटलसोभाढ्यं सर्वशून्यालये स्थितम् ॥
सर्वशून्यं मुण्डभूषं प्रसन्नवदनं शिवम् ।"

(अब महाकाली के विषयमें लिखता हूं महाकाली के दोभेद हैं। एक पंचवक्त्रा दूसरी दशवक्त्रा है । इन मेंसे पञ्चवक्त्रा का उत्तराम्नाय से उपासना होता है।) इनके मन्त्र ध्यानादि का वर्णन मेरुतन्त्रमें लिखा है :—

"अथातः संप्रवक्ष्यामि महाकाली महामनुम् ।
ॐ ह्रूँ ह्रूँ क्रँ ततः क्रँ च पशुंगृहाण चोच्चरेत् ॥
हुँ फट् स्वाहा शक्रवर्णः सिद्धमन्त्र उदाहृतः ।
नास्य मुन्यादिकं न्यासः सिद्धमन्त्रस्य विद्यते ॥
कृष्णतोयेन संपूर्णे घटे चाहूय कालीकाम् ।
ब्राह्म्यादिभिश्च दूतीभिर्युक्तां संपूज्य भक्तितः ॥
अष्टमीं चण्डिकां त्वत्र देवीं ध्यायेद्गृहे पुनः ।

अस्या ध्यानम्—

"पञ्चवक्त्रां महरौद्रीं प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनाम् ।
शक्तिशूलधनुर्बाणखेटखड्गवराभयान् ॥
दधाद्दशभुजैर्देवीं बिभ्राणां भोगिभूषणाम् ॥"

(फिरदशवक्त्रा महाकाली ईशानाम्नायात्मिका हैं ।) उनेका मन्त्र ध्यानादि ऐसै हैं:—

"वामाक्षी धरणीयुक्तो ब्रह्मा चार्द्धेन्दु भूपितः ।
प्रणवान्ते च संयोज्य दण्डयुक्तो मनुस्मृतः ॥

महाकाल्या महामन्त्रः ह्ययं तु चतुरक्षरः ।
ऋषिर्महेश्वरः प्रोक्तोऽनुष्टुप्छन्दमुदाहृतः ॥
कामबीजं तु बीजं स्यात् पुरुषार्थ चतुष्टये ।
दीर्घ षट्केन कामेन न्यसेत्करषडङ्गकम् ॥"

अस्या ध्यानम्—

" खड्गं चक्रगदेषु चापपरिघान् शूलं भुशुण्डीं शिरः ।
शंखं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम् ॥
यामस्तौच्छयिते हरौकमलजो हन्तुं मधुंकैटभम् ।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकाम्॥

अस्या यन्त्रम्—

" षट्कोणमष्टपत्रञ्च वेदद्वारोपशोभितम् ।
श्रीमहाकालिकायन्त्रं सर्वकामार्थ सिद्धिदम् ॥"

इनका भैरव रुद्र हैं। उनका मन्त्र ह्रौं यह एकाक्षरी है।
भद्रकाली के दो भेद हैं वह पश्चिमाम्नायके विवरणमें तः
गुह्यकाली के भेदको उत्तराम्नाय के विवरणमें दियाजाएः
अभि यहाँ सिद्धिकालीका वर्णन करता हूँ। सिद्धिकाली
भी दो भेद हैं। एक सिद्धिकाली दक्षिणाम्नायोपासिता तः
दूसरी उत्तराम्नायोपासिता दशवक्त्रा रामोपासिता गुः
काली ही सिद्धिकालीगुह्या कहीजाती हैं। भरतोपासि
और रामोपासिता के ध्यान, यन्त्र तथा पूजा एकही हैं तथा
मन्त्र और न्यासादि पृथक् होनेके कारण रामोपासिताको सिं
काली फिर भरतोपासिताको सिद्धिकराली संज्ञा दीगयी हैं। ः
सबका वर्णन उत्तराम्नायके विवरणमें देदूँगा। अब दक्षिण।

म्नायात्मिका सिद्धिकाली के मन्त्र ध्यानादिके विषयमें श्रीवि-
णार्णवतन्त्रमें लिखा है:—

" अथवक्ष्ये महादेवी सिद्धविद्यां महोदयाम् ।
ईश्वरेण पुरा प्रोक्तां देवीं हृदीशसंज्ञिताम् ॥
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य हृल्लेखा बीजमुद्धरेत् ।
रतिबीजं समुद्धृत्य पपञ्चमभगान्वितम् ॥
ठद्वयेन समायुक्तं विद्या राज्ञी प्रकीर्तिता ॥
भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्ता विराट्छन्द उदाहृतम ।
सिद्धिकाली ब्रह्मरूपा देवता भुवनेश्वरी ॥
रतिबीजं बीजमस्या हृल्लेखा शक्तिरुच्यते ।
हृल्लेखया षड्दीर्घेन प्रणवाद्येन कल्पयेत् ॥
अङ्ग षट्कं ततोन्यस्य ध्यात्वादेवीं शिवोभवेत्॥"

अस्या ध्यानम्—

" खड्गोच्छिन्नेन्दुबिम्बस्रवदमृतरसाप्लाविताङ्गीत्रिनेत्रा ।
सव्येपाणौ कपालाद्गलदमृतयं मुक्तकेशी पिबन्ती ॥
दिग्वस्त्रा बद्धकाञ्ची मणिमयमुकुटाद्यैर्युता दीप्तजिह्वा ।
पायान्नीलोत्पलाभारविशशिविलसत्कुण्डलालीढपादा॥ "

(अब श्मशानकाली भी उत्तराम्नायात्मिका हैं) उनके मन्त्र
ध्यानादि के विषयमें स्वतन्त्रतन्त्रमें ऐसा लिखा हैः—

" श्मशानकालिकामन्त्रं शृणुष्वावहितो शिवे ।
वाणीं मायां ततो लक्ष्मीं कामबीजं ततः परम् ॥
कालिके संपुटत्वेन चतुष्कं बीजमालिखेत् ।
एकादशार्णा देवेशि चतुर्वर्गफलप्रदा ॥

ऋषिर्भृगुर्निचृच्छन्दो देवता कालिका परा ।
श्मशानाद्या च वाङ्माया बीजं शक्तिर्महेश्वरी ॥
कीलकं कामबीजं तं सिद्ध्यर्थं विनियोजितम् ।
चतुश्चतुस्त्रिचतुस्तु विद्यामन्त्रैः षडङ्गकम् ॥
विन्यस्य ध्यान कुर्वीत कालिकायां समाहितः ॥"

अस्या ध्यानम्—

" अञ्जनाद्रिनिभां देवीं श्मशानालयवासिनीम् ।
त्रिनेत्रां मुक्तकेशीञ्च शुष्कमांसातिभीषणाम् ॥
पिंगाक्षीं वामहस्तेन मद्यपूर्णं कपालकम् ।
सद्यः कृत्तशिरो दक्षहस्तेन दधतीं शिवाम् ॥
स्मितवक्त्रां सदाचाम मांस तर्पण तत्पराम् ।
नानालङ्कार भूषाङ्गिं नग्नां मत्तां सदा शवैः ॥"

अब विष्णुके विषयमें " कालीकृष्णयोरैक्यम् " यह बात पहले ही लिखचुकाहूँ । दक्षिणाकाली के दक्षिणाम्नायात्मिका होनेके कारण श्रीकृष्ण भी दक्षिणाम्नायात्मक हैं । फिर गुह्यकाली के उत्तराम्नायात्मिका होनेके कारण श्रीकृष्ण भी उत्तराम्नायात्मक हैं । और रक्तकाली (श्री मन्महात्रिपुरसुन्दरी) के उर्ध्वाम्नायात्मिका होनेके कारण श्रीकृष्ण उर्ध्वाम्नायात्मक हैं । " काली तु द्विविधा प्रोक्ता रक्ता श्यामा " आगममें ऐस लिखा हैं । इसलिए तन्त्र शास्त्र भी कालीकल्प और श्रीविद्या कल्प ये दो कल्पों में विभाजन किया गयाहै । अब श्रीकृष्णके कैन कैनसे मन्त्र और कैन कैनसे रुप किस किस आम्नायमें हैं यह वर्णन करता हूँ । देखिए महाकाल संहितामें लिख हैः—

" स्त्रीणां त्रैलोक्य जातानां कामोन्मादैकहेतवे ।
वंशीधरः कृष्णदेव प्रकृतिर्विष्णुरुच्यते ॥
उभयोर्मेलनाद्देवि शिवशक्तिर्हिगीयते ॥"

इसलिए और/ कामकला दक्षिणाकाली भी शिवशक्त्यात्मिका होनेके कारण वंशीधरकृष्ण दक्षिणाम्नायात्मक हैं । जब श्रीकृष्णने गोकुल त्यागदिया तब वंशी को भी हटादिया तब वह उत्तराम्नायात्मक बनगया । इसलिए राधाकृष्ण अथवा गोपीकृष्ण तथा गोपालकृष्ण दक्षिणाम्नायात्मक है फिर रुक्मिणीकृष्ण , सत्यभामाकृष्ण तथा द्वारकानाथकृष्ण उत्तराम्नायात्मक हैं । इनके मन्त्र ध्यानादि बहुतहैं, तथापि यहाँ उदाहरणके लिए कुछ कुछ लिखूंगा । दक्षिणाम्नायात्मककृष्ण के मन्त्र ध्यानादिका वर्णन करता हूं । शारदातिलकतन्त्रमें ऐसा हैः–

" कृष्णाय पदमाभाष्य गोविन्दाय ततः परम् ।
गोपीजन पदस्यान्ते वल्लभाय द्विठावधिः ॥
कामबीजादिराख्यातो मनुरष्टादशाक्षरः ।
नारदोऽस्य मुनिः प्रोक्तो गायत्रं छन्द उच्यते ॥
देवता कथितः कृष्णः सर्वकामफलप्रदः ।
चतुष्करणवेदाब्धिनेत्रसंख्याक्षरक्रमात् ॥
पंचाङ्गानि मनोः कुर्यान्मन्त्रविज्ज्ञाति संयुतैः ॥"

अस्य ध्यानम्:-

" फुल्लेन्दीवरकान्तिमिन्दुवदनं बर्हावतंसप्रियम् ।
श्रीवत्साङ्क मुदारकौस्तुभधरंपीताम्बरं सुन्दरम् ॥

गोपीनां नयनोत्पलार्चिततनुं गोगोपसंघावृतम् ।
गोविन्दं करवेणु वादनवरं दिव्याङ्ग भूषं भजे ॥ "

एवं दक्षिणाम्नायात्मककृष्ण के मन्त्र ध्यानादिके भे बहुत हैं । अब उत्तराम्नायात्मक कृष्णका वर्णन करूंगा रुद्रयामलतन्त्रमें लिखा है—

" तारंहृद्भगवते रुक्मिणीवल्लभाय ठद्वयम् ।
नारदोऽस्य मुनिः प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुप् प्रकीर्तिम् ॥
रुक्मिणीवल्लभो देवः पंचाङ्गं मान्त्रिकै पदैः ॥ "

मन्त्रान्तरं तत्रैव—

" अथातो नगवेदाख्ये क्लाँ कृष्णायाग्नि गेहिनी ।
षडक्षरो मन्त्रराजो जपध्यानादि पूर्ववत् ॥ "

अस्य ध्यानम्—

" तापिच्छच्छविरङ्कगां प्रियतमां स्वर्णप्रभामम्बुज-
प्रोद्यद्वामभुजां स्वबाहुलतयाश्लिष्यत्सचित्तास्मयाम्
श्लिष्यन्तीं स्वयमन्यहस्तविलसत्सौवर्णवेत्राश्चिरं
पायाद्वोऽशनसून पीतवसनो नानाविभूषो हरिः ।

श्रीकृष्णके रूपोंमें जिस जिस रुपके साथ शक्ति विद्या है, उस उस रुपमें पश्वाचार और कुलाचारमें से अपने अ अधिकारानुसार से उपासना हो सकता है। परन्तु जिस अ स्थामें रूप अकेले होगा उस अवस्थामें केवल पाशवकल्प स्थामें रूप अकेले होगा उस अवस्थामें केवल पाशवकल्प ही उपासना करना चाहिए। यहाँ यदि श्रीकृष्णके भेद जितने विदित हैं, केवल उतनेही लिखं तो भी लेख बडाल

हो जायगा। अतएव स्थालीपुलाकन्यायवत् संक्षेपमें केवल दक्षिणाम्नायका एक और उत्तराम्नायका एक लिखा है। उनमें बहुत भेद हैं प्रमाणके लिए देखिए। दक्षिणाम्नायमें कुलसंध्या गानी दूतीयागका विशेष फल है। लिखा भी है कि " न्यासप्रिया तु श्रीविद्या काली तु मैथुनप्रिया " । अतएव गोकुलमें गोपियोंके साथ श्रीकृष्णने जो रासलीलादि कर्म किया, वह दूतीयागादिके सिवा और कुछ नहीं है, यहबात गुरुमुखसे विदित हो सकेगी। इसलिए जिस अवस्थामें श्रीकृष्ण गोकुलवासी थे, उस अवस्थामें वह दक्षिणाम्नायात्मक थे। फिर कुलार्णवतन्त्र में लिखा है कि " पश्चिमं कर्मयोगं च ज्ञानयोगं तथोत्तरम् " इसलिए गोकुलका त्याग करनेके, वाद श्रीकृष्ण ज्ञानमूर्ति बन गए। उदाहरणके लिए श्रीमद्भगवद्गीता ही प्रशस्त हैं। अतएव द्वारकावासी होने की अवस्थामें श्रीकृष्ण उत्तराम्नायात्मक थे। ये दोनों ही अवस्थाके श्रीकृष्णका यन्त्र एक ही है। उनका उद्धार महाक्रमार्चन पद्धतिमें ऐसे लिखा है:-

" षट्कोणं च ततो वाह्ये त्रिकोणत्रृतयंततः ।
वाह्ये चाष्टदलं पद्मं वेदद्वारोपशोभितम् ॥ "

अब उर्ध्वाम्नायात्मक श्रीकृष्णका वर्णन करता हूँ। इनका अन्य भेद नहीं है। फिर श्रीविद्याका श्रीयन्त्रमें ही इनकी पूजा होती है। वह गोपालसुन्दरी के नामसे प्रसिद्ध हैं। फिर यह विद्या बहुत रहस्यपूर्ण और गोप्य भी है। केवल कुलाचारसे ही इनकाउपासना हो सकती है इनको मतान्तरसे सुन्दरीगोपाल भी कहते है। इनकाअर्थ द्वन्द्वसमास से नहोकर मध्यपदलोपी

कर्मधारयसमाससे करना होगा। "सुन्दरी च गोपालश्च" नहोकर "सुन्दरी एव गोपालः" ऐसे अर्थ है। इनके मन्त्र ध्यानादि मन्त्रमहोदधिमें ऐसे लिखे हैं:—

"गोपालसुन्दरीं वक्ष्ये भोगमोक्षप्रदायिकाम्।
मायारमाचित्तजन्माकृष्णायेतिपदं ततः ॥
आद्यं वाक्कूटमुच्चार्य गोविन्दाय पदं वदेत्।
द्वितीयं तु तत कूटं गोपीजनपदं ततः ॥
वल्लभायपदान्तं तु तृतीयं कूटमुच्चरेत् ॥
स्वाहान्ता वह्नियुग्मार्णा स्मृता गोपालसुन्दरी ॥"
त्रियाया द्वौ मुनी उक्तौ विधात्रानन्दभैरवौ ।
गोपालो मन्मथो बीजं शक्तिः पावकवल्लभा ॥
माया श्रीर्मन्मथौ हृत्स्यात् कृष्णाय शिर ईरितम्।
गोविन्दाय शिखा गोपीं जनेति कवचं मतम् ॥
वल्लभायस्मृतं नेत्रमस्त्रं पावकभार्यया ।
कूटत्रयद्विरावृत्त्यापडङ्गं पुनरा चरेत् ॥

अब यह ३ कूटका उद्धार उर्ध्वाम्नायके विवरणमें दिया जाएगा। अब यह गोपालसुन्दरीका ध्यान तत्रैव ऐसा है:—

"कमलावसुधायुक्तं ध्यायेच्छ्रीचक्रगं हरिम् ॥
क्षीरांभोधिस्थकल्पद्रुमवनविलसद्रत्नयुङ्मण्डपान्तः।
प्रोद्यच्छ्रीपीठसंस्थं करधृतजलजारीक्षुचापांकुशेषुम् ॥
पाशंवीणांखुवेणुं दधतमवनिमा शोभितंरक्तकान्तिम् ।
ध्यायेद्गोपालमीशं विधिमुख विबुधै रीड्यमानंसमन्तात्

अस्य पुरश्चरणपूजादि

"एवं ध्यात्वाजपेल्लक्षं दशांशं पायसां धसा।
जुहुयाद्वैष्णवे पीठे पूजयेत्सुन्दरीं हरिम् ॥
आदावंगानि संपूज्य प्रागाद्याशासुपूजयेत् ।
वासुदेवं संकर्षणं . प्रद्युम्नमनिरुद्धकम् ॥
पूज्याच ह्यादिकोणेषु शान्तिः श्रीश्च सरस्वती।
रतिः पुनर्दिक्षुपूज्या रुक्मिणी सत्यभामिका ॥
कालिन्दी जाम्बवत्याख्या मित्रविन्दा सुनन्दया।
सुलक्षणानाग्नि जिती ततोऽच्या निधयोऽपिच ॥
महापद्मश्च पद्मश्च शंखो मकर कच्छपौ।
मुकुन्दकुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयो नव ॥
ततश्च सुन्दरी प्रोक्तावृतिपूजां समाचरेत्।
प्रयोगानपि तत्रोक्तान्कुर्यादिष्ट प्रसिद्धये ॥"

(अब पूर्वोक्त वडवानलतन्त्रोक्त नामावलीके अनुसार बगला का वर्णन करता हूं। वगलाका 'मुख्यममंत्र स्थिरामाया ही है जैसा मायाबीजको भुवनेश्वरीवीज कहते हैं, वैसाही स्थिरामायाको भी वगलाबीज कहते हैं। फिर यह बीज दक्षिणाम्नायात्मक है। अतएव वगलाका बहुतसे मंत्रोंमें यह बीज होनेके कारण वगला दक्षिणाम्नायात्मिका है। खासकरके वगलाकी दोनों ही भुजायें हैं। जब वह चतुर्भुजी होंगी तब विपरीत गायत्री (ब्रह्मास्त्र) रुपिणी वन जाएगी, फिर इनके मंत्रोंमें बगलामाया की जगह भुवनामाया होगा तब वह वगला उर्ध्वाम्नायात्मिका होंगी। उदाहरणके लिए यहाँ प्रत्येक आम्नायके

अलग एक एक मंत्र ध्यानादि दिये जाएंगे यन्त्र और आवरणपूजा एकही है। अब दक्षिणाम्नायात्मिका बगलाके विषय में यामलमें लिखा है:—

" वह्निहीनेन्द्रयुग्माया बगलामुखि सर्वयुक्।
दुष्टानां वाचमित्युक्त्वा मुखंस्तम्भय कीर्तयेत्"
जिह्वां कीलय बुद्धिं च विनाशय पदं वदेत्।
पूर्वबीजं ततस्तारं वह्निजाया वधिर्भवेत् ॥
ताराधिका चतुस्त्रिंशदक्षरा बगलामुखी।
नारायणो मुनिश्छन्दः पंक्तिः श्रीबगलामुखी ॥
देवता मंत्रगं बीजं शक्तिः पावक सुन्दरी।
सर्वेशत्रुमुखस्तम्भे विनियोगः प्रकीर्तितः ॥
षड्दीर्घभाजा बीजेन षडङ्गन्यास ईरितः ॥"

अस्या ध्यानम्-

" मध्ये सुधाब्धि मणिमण्डपरत्नवेदीं-
सिंहासनोपरिगतां परिपीत वर्णाम्॥
पीताम्बरां कनकभूषणमाल्यशोभाम्।
देवीं भजामि धृतमुद्गरवैरि जिह्वाम् ॥
जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं।
वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम्॥
पादाभिघातेनच दक्षिणेन।
पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि

अब उर्ध्वाम्नायात्मिका बगलाके मन्त्र ध्यानादिके विषय लिखा हैं:-

" देवि श्रीभयवल्लभे शृणुमहामन्त्रं विभूतिप्रदम् ॥
देव्या धर्मयुतं समस्तसुखदं साम्राज्यदं मुक्तिदम्।
तारं रुद्रवधूं विरञ्चिमहिला विष्णुप्रिया कामयु-
ग्मान्ते श्रीबगलानने मम रिपुन्नाशाययुग्मं त्विति ॥
ऐश्वर्याणिपदञ्च देहि युगलं शीघ्रं मनोवाञ्छितम्।
कार्यं साधय युग्मयुक्छिववधू वह्निप्रियान्तो मनुः ॥
कंसारे स्तनयश्च बीजमपरा शक्तिश्च वाणीतथो।
कीलं श्रीमति भैरवर्षिसहितं छन्दोविराट् संयुतम् ॥
स्वेष्टार्थस्य परस्य वेत्ति नितरां कार्यस्य संप्राप्तये।
नानासाध्यमहा गदस्य नियतं नाशाय वीर्याप्तये ॥
ध्यात्वा श्रीबगलाननां मनुवरं जप्त्वा सहस्राख्यकम्।
दीर्घैः षट्कयुतैश्च रुद्रमहिला बीजैर्विनशशाङ्गके ॥"

अस्या ध्यानम्—

" सौवर्णासनसंस्थितां त्रिनयनां पीतांशुकोल्लासिनीम्।
हेमाभाङ्गरुचिं शशाङ्कमुकुटां स्रक्चंपकस्रग्युताम्॥
हस्तैर्मुद्गरपाशवद्धरसनां संबिभ्रतीं भूषण—
व्याप्ताङ्गीं बगलामुखीं त्रिजगतां संस्तम्भिनीं चिन्तयेत्॥"

(यह ब्रह्मास्त्र स्वरूपिणी ऊर्ध्वाम्नायात्मिका बगलामुखी हैं। इनका मन्त्रान्तर विपरीतगायत्री भी हैं। अब साधकका अधिकारानुसार दक्षिणाम्नायसे अथवा ऊर्ध्वाम्नायसे उपासना बगलामुखीका वर्णन करता हूँ।) यह विद्या उभयाम्नायात्मका होनेका कारण यह है कि, इनके इस मन्त्रमें स्थिरामाया विद्यमानहै फिर ध्यानमें चतुर्भुजा हैं। इनके मन्त्र ध्यानादि [illegible]न्त्रमें लिखे हैं।

" अथातः संप्रवक्ष्यामि स्तम्भनीं वगला मुखीम् ।
तारं मायां समुच्चार्य वदेच्च वगलामुखि ॥
तदग्रे सर्वदुष्टानां ततो वाचं मुखं पदम् ।
स्तंभयेति पदं जिह्वां कीलयेति ततः परम् ॥
बुद्धिं विनाशय ह्रीँ ॐ स्वाहा षट्त्रिंशवर्णकः ।
नारायणो मुनि स्त्रिष्टुप्छन्दश्च वगलामुखी ॥
देवी बीजं तु हल्लेखा स्वाहा शक्तिः समीरिता ।
विनियोगोऽस्य विख्यातः पुरुषार्थ चतुष्टये ॥
हल्लेखा हृदयं प्रोक्तं शिरश्च वगलामुखी ।
शिखा तु सर्वदुष्टानां ततो वाचं मुखं पदम् ॥
स्तंभयेति च वर्मोक्तं जिह्वां कीलय नेत्रकम् ।
बुद्धिं विनाशयास्त्रं स्यात् षडङ्गन्यास ईरितः ॥ "

अब यहां मेरी एक कहने की बातहै । किसी किसी के गु
परंपरामें वगलामुखी के मन्त्रोद्धारमें मायाबीज और उस
पर्यायवाचक शब्दोंको स्थिरामाया मानलेते हैं । उनके लि
यह षट्त्रिंशाक्षरी वगलामन्त्र दक्षिणाम्नायात्मक है । नहीं
यह ऊर्ध्वाम्नायात्मक हैं । श्यामाकाली और दक्षिणम्नायात्मि
सिद्धिकाली के मन्त्रों में भी गुरुपरंपरा भेद से कामबीज स
उससे पर्यायवाचक शब्दोंको कालीबीज मानते हैं । अब
षट्त्रिंशाक्षरविग्रहा वगलामुखीका ध्यान मेरुतन्त्रमें लिखा

" गम्भीरांच मदोन्मत्तां तप्तकाञ्चनसन्निभाम् ॥
चतुर्भुजां त्रिनयनां कमलासन संस्थिताम् ।
मुद्गरं दक्षिणे पाशं वामे जिह्वाम् च वज्रकम् ॥
पीताम्बरधरां सान्द्रवृत्तपीनपयोधराम् ।

हेमकुण्डलभूषां च पीत चन्द्रार्द्धशेखराम् ॥
पीतभूषण भूषां च स्वर्णसिंहासन स्थिताम् ॥"

अस्या यन्त्रम्—

" मध्ये योनिं समालिख्य तद्बाह्ये तु षडस्रकम् ।
तद्बाह्येऽष्टदलं पद्मं तद्बाह्ये षोडशच्छदम् ॥
चतुरस्रत्रयं बाह्ये चतुर्द्वारोपशोभितम् ॥"

अस्यावरणपूजा—

" यत्रनोक्तन्देवतायाः पीठं वा पीठशक्तयः ।
तत्र मायोदितं पीठं ज्ञेयास्ता एव शक्तयः ॥
तद्बीजेन यजेत् पीठं यद्वा मायागुणाथ वा ।
तत्रा वाह्य यजेद्देवीं सुपीतै रुपचारकैः ॥
यजे दङ्गानि षट्कोणे पूर्वद्वारादिषु क्रमात् ।
गणेशं वटुकं चापि योगिनीः क्षेत्रपालकम् ॥
ईशानादिनिर्ऋत्यन्तं गुरूपंक्तिं समर्चयेत् ।
वगलां पूर्वपत्रे तु स्तम्भिनीं च ततः परम् ॥
जृम्भिणीं मोहिनीं चैव प्रगल्भामचलां जयाम् ।
दुर्धर्षाकल्मषाधीराकल्याण्याकालकर्षिणीः ॥
भ्रामिकां मन्दगमनां भोग्याख्यां चैव योगिकाम् ।
एताः षोडशपत्रेषु गन्धपुष्पाक्षतैर्यजेत् ॥
षोडशस्वरसंयुक्ताः सम्प्रदायात्कुलागमं ।
यजेत्तु पत्रमध्येषु कल्पिते चाष्टपत्रके ॥
पूर्वाद्ब्राह्मयादिका अष्टौ वाहनायुधसंयुताः ।

लोकेशांश्च तदस्त्राणि पूजयेद्वाणतस्तथा ॥
योनिमध्ये मूलदेवीं त्रिरञ्जलिभिरर्चयेत् ॥"

दोनों ही आम्नायमें बगलामुखी के यन्त्र और आवरणपूजा पूर्वोक्तही हैं। परन्तु अन्यपूजा विधियां आम्नाय भेदसे पृथक होते हैं। दक्षिणाम्नायात्मिका बगला का भैरव मृत्युञ्जय हैं उनका भी दक्षिणाम्नायसे उपासना होता है । उनके मन्त्र ध्यानादि के विषयमें वामदेव संहितामें ऐसा लिखा है।

" तारं स्थिरा सकर्णेन्दु भृगुः सर्गविभूषितः ॥
अक्षरात्मा निगदितो मनुर्मृत्युञ्जयात्मकः ॥
ऋषिर्कहोलो देव्यादिर्गायत्री छन्द ईरितम् ।
मृत्युञ्जयो महादेवो देवतास्य समीरितः ॥
भृगुणा दीर्घयुक्तेन षडङ्गानि समाचरेत् ॥ "

अस्य ध्यानम्—

" चन्द्रार्काग्नित्रिलोचनं स्मितमुखं पद्मद्वयान्तस्थितम् ।
मुद्रापाशमृगाक्षसूत्रविलसत्पाणिं हिमांशुप्रभम् ॥
कोटीरेन्दुगलत्सुधाप्लुततनुं हारादिभूषोज्वलम् ।
कान्त्या विश्वमनोहरं पशुपतिं मृत्युञ्जयं भावयेत् ॥"

ब्रह्मास्त्ररूपिणी ऊर्ध्वाम्नायात्मिका बगलाके भैरव त्र्यम्बकमृत्युञ्जय हैं, वह भी उर्ध्वाम्नायात्मक हैं, उनके मन्त्रध्यानादि मेरुतन्त्रमें ऐसे हैं।

" तदर्थं संप्रवदयामि मन्त्रं मृत्युञ्जयाभिधम् ।
त्र्यंबकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि वर्धनम् ॥

उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् ।
वशिष्ठोस्य मुनिश्छन्दोऽनुष्टुप् देवस्त्रियम्बकः॥
त्रिचतुर्वसुगोपञ्चत्रिभिर्वर्णैः षडङ्गकम् ॥ "

अस्य ध्यानम्:—

" हस्ताभ्यां कलशद्वयामृतरसैराप्लावयन्तं शिरो ।
द्वाभ्यां तौ दधतं मृगाक्षवलये द्वाभ्यां वहन्तं परम् ॥
अङ्कन्यस्तकरद्वयामृतघटं कैलाशसंस्थं शिवम् ।
स्वच्छाम्भोजगतं नवेन्दुमुकुटं देवं त्रिनेत्रं भजे ॥ "

फिर उभयाम्नायात्मिका बगलाके भैरव महामृत्युञ्जय हैं, वह भी उभयाम्नायात्मक हैं। उनके मन्त्रन्यासादि मन्त्रमहोदधिमें ऐसे लिखे हैं।

" महामृत्युञ्जयं वक्ष्ये दुरितापच्चिवारणम् ।
यं प्राप्य भार्गवः शम्भोर्मृतान् दैत्यानजीवयत् ॥
तारः खंव्यापिनीचन्द्रयुक्तारश्चतुराननः ॥
अर्घीशबिन्दुसंयुक्तो हंसः सर्गी च भूर्भुवः ।
सकारो वालसर्गाढ्य स्त्र्यंबकं वैदिको मनुः॥
भूर्भुवः स्वर्भुजङ्गेशस्तारी जूँ सर्गवान्भृगुः ॥
आकाशोमनुर्विन्द्वाढ्यः प्रणवान्तो मनूत्तमः ।
महामृत्युञ्जयाख्योयं पञ्चाशद्वर्ण. निर्मितः ॥
वामदेवकहोलाख्यवसिष्ठामुनयोऽस्यतु ।
छन्दांस्युक्तानिरुद्रेणपंक्तिगायत्र्यनुष्टुभः ॥
सदाशिव महामृत्युंजयरुद्रोऽस्यदेवता ।
माया शक्ती रमा वीजं विनियोगोऽर्थसिद्धये ॥

मूर्ध्नि वक्त्रे हृदि शिवे पदोर्गुन्यादिकान्न्यसेत् ।
त्रिचतुर्वसुनंदेपुगुणवर्णाननुष्टुभः ॥
तारो नमो भगवते रुद्रायेति पदान्वितान् ।
मूलादिनववर्णायानुक्त्वा कुर्यात् षडङ्गकम् ॥
शूलान्तंपाणयेस्वाहा हृन्मन्त्रान्ते नियोजयेत् ।
अमृतान्ते मूर्तये मां जीवयेति शिरोन्तिमम् ॥
शिखान्ते चन्द्रशिरसे जटिने वह्निवल्लभा ।
त्रिपुरान्तकाय हाँ हीँ कवचान्ते मनुरमृतः ॥
प्रवदेत्रिपदस्यान्ते लोचनाय पदंपुन ।
ऋग्यजुः साममन्त्रायवर्णान्नेत्रमनोः पठेत् ॥
अग्नित्रयायज्वलज्वलमां रक्ष रक्ष च ।
अघोराखायमन्त्रोयमस्त्रमन्त्रस्ततः स्मृत ः ॥
द्वात्रिंशत्यम्बकायर्णा क्रमोन्तान् विन्दुसंयुतान् ।
तारादिनववर्णाद्यानंगेष्वेपुप्रविन्यसेत् ॥ "

अस्य ध्यानम्—

" हस्ताम्भोजयुगस्थ कुंभयुगलादुद्धृत्यतोयं शिरः
संचिन्तं करयोर्युगेन दधतं स्वाङ्के सकुंभं करौ ॥
अक्षस्रङ्मृगहस्तमम्बुजगतं मूर्धस्त चन्द्रस्रवत् ।
पीयूषोन्नतनुं भजे सगिरिजं मृत्युञ्जयं त्र्यम्बकम् ॥"

/ फिर विष्णुका अवतार कूर्म भगवान् का वगला से ऐ
होनेके कारण वह कूर्म भगवान् का भी दक्षिणाम्नायसे उ
2) सना होता है/ इनके मन्त्र ध्यानादिका वर्णन मेरुतन्त्रमें इ
प्रकार है ।

" अथा तः संप्रवक्ष्यामि कूर्ममन्त्रं महाद्भुतम्
एकः कूर्म्मावतारोऽभून्मथ्यमाने महोदधौ ॥
तारो नमो भगवते कुँ कूर्म्माय धराधर ।
धुरन्धराय गस्यान्ते सिद्धवर्णो मतो मनुः ॥
प्रकृतिश्छन्द उदितं कश्यपोऽस्य मुनिर्मतः ।
देवता भगवान् विष्णुर्मतः कच्छपरुपधृक् ॥
धराधरेत्यादिशक्तिः कुँ बीजं स्वेष्टसिद्धये ।
नियोगो देवता ध्यानं शङ्खचक्रगदा धरम् ॥
पीताम्बरं कूर्म्मपृष्ठं न्यस्त लाङ्गूलशोभितम् ।
दीर्घग्रीवं महाग्राहं गिलन्तं रक्तलोचनम् ॥
मन्त्रवर्णैः षडङ्गानि जपो लक्षचतुष्टयम् ।
आज्यहोमस्तर्पणंतु चन्दनोत्पलवारिभिः ॥ "

अस्य यन्त्रम्—

" भूपुरावृतमष्टदलपद्ममेव कूर्मयन्त्रम् ॥ "

/वगलामुखीका ऊर्ध्वाम्नायात्मक मन्त्र भी होनेके, कारण कूर्म भगवानका भी ऊर्ध्वाम्नायात्मक मन्त्र हो सकता है, परन्तु मुझे वह मालुम नहीं है ।

अब पूर्वोक्त वडवानलतन्त्र की नामावली के अनुसार छिन्नमस्ता का वर्णन करता हूँ । यह विद्या को प्रचण्ड चण्डिका भी कहते हैं । विश्वसारतन्त्रमें यह छिन्नमस्ताका मन्त्रोद्धार इस प्रकार लिखा है ।

" लक्ष्मीं लज्जां ततो मायां मात्राद्वादशिकामथ ।
वज्रवैरोचनीयेच माये फट् स्वाहया युते ।

लक्ष्मी बीजं यदाऽऽद्यं स्यात् तदा श्रीः सर्वतोमुखी।
लज्जाबीजेन चाद्येन वश्यतां यान्ति योषितः॥
मायाबीजेन चाद्येन महापातकनाशनम्।
मात्राद्वादशिका बीजमाद्यं स्यान्मुक्तिदायकम्॥"

यहाँ लज्जाके अर्थ कामबीज मानागया है। इस विषयमें उसी तन्त्रमें लिखा है।

"अत्रलज्जा पदं देवि कामबीज परं भवेत्।
महाकालमतं प्रोक्तं मन्त्रोद्धारं शुभावहम्॥"

फिर उसी विश्वसारतन्त्रमें छिन्ना की सप्तदशी विद्याके विषयमें लिखा है।

"ताराद्या षोडशी चान्या भवेत् सप्तदशाक्षरी।
एषाविद्या महाविद्या भुक्तिमुक्तिकरी सदा॥"

परन्तु मेरुतन्त्रके मतमेंतो इन षोडशाक्षरी तथा सप्तदशाक्षरी विद्याओंमें कामबीज नहीं है, दोनोंही माया हैं। मेरुतन्त्रमें सप्तदशीका उद्धार इसप्रकारका है।

"प्रणवं च रमां लज्जांबीजद्वन्द्वं च वाग्भवम्।
वज्रवैरोचनीये ह्रीँ ह्रीँ फट् स्वाहा घनाक्षरः॥"

इन छिन्नमस्ताके यह षोडशी, सप्तदशी तथा अन्यमन्त्र जो मुझे ज्ञात हैं उन सकल के ऋष्यादिकरषडङ्गन्यास निम्नलिखित आकारके हैं।

"भैरवाऽस्य मुनिः प्रोक्तः सम्राट्छन्द उदाहृतम्।
छिन्नमस्ता भवेद्देवी वाममार्गेण सिद्धिदा॥
आँ खड्गाय हृदाख्यात ओँ सुखड्गाय मस्तकम्।
ऊँ वज्राय शिखा प्रोक्ता एँ पाशाय तनुच्छदम्॥
औमङ्कुशाय नेत्रंस्यादश्वासुरक्षयाय च॥

हूँ हूँ नयार्णोऽस्त्र मन्त्रः सर्वे स्युःप्रणवादिकाः॥
स्वाहान्ताः सर्व एवैते ततो ध्यानं समाचरेत्॥"

यामलतन्त्र में इन के विनियोग के विषय में ऐसालिखा है:-

"आसामृषि र्भैरवोऽहं नाम्ना तु क्रोधभूपतिः।
सम्राट्छन्दो देवता च छिन्नमस्ता प्रकीर्तिता॥
मायाबीजं स्वाहा शक्तिः कथिता ब्रह्मयोनिना।
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः॥"

अस्या ध्यानम्—

"भास्वन्मण्डपमध्यस्थां विपरीतरतस्थितौ।
रतिकामौ समारूढां विकीर्णं सकलालकाम्॥
वामेकरे निजशिरश्छिन्नं संदधतीं पुनः।
गलान्निर्गतमस्त्रं च पिबन्तीं तन्मुखेन च॥
डाकिनीवर्णिनीभ्यां च सखिभ्यां परिवारिताम्।

(एवं छिन्नमस्ता के दक्षिणाम्नायोपासित मन्त्रों के भेद बहुत हैं। उनमें से ये दो प्रधान मन्त्रोंका वर्णन कियाहै। न्यास सकल मन्त्रोंका एकही है ध्यान भी एक ही है। परन्तु छन्द भेदसे पृथक जैसा प्रतीत हो सकता है मूर्ति तो वैसा ही होती है। अब छिन्नमस्ता उपासना उत्तराम्नायसे भी हो सकता है। वे उत्तराम्नायात्मक मन्त्र भी बहुत हैं उनमें से एक प्रधान मन्त्र यहाँ देताहूं। इनके भी ऋष्यादिकरषडङ्गन्यास एक ही हैं) (२६)

यह मंत्रोद्धार यामलतंत्र में इसप्रकार लिखा है।

"हृल्लेखा वाग्भवं कूर्चं वाग्भवं कूर्चमेवच।
अस्त्रान्ता छिन्नमस्ता या महाविद्या प्रकीर्तिता॥

यस्याश्च सदृशी विद्या जगत्त्रयपि न विद्यते।
पड्वर्णोऽयं मनुः साक्षान्मोक्षदो नात्र संशयः॥"

अस्या न्यासादिपूर्ववत ध्याने विशेषो यथाः—

"प्रत्यालीढपदां सदैव दधतीं छिन्नं शिरः कर्त्रिकम।
दिग्वस्त्रां स्वकबन्धशोणितसुधाधारां पिवन्तीं मुदा॥
नागावद्धशिरोमणित्रिनयनां हृद्युत्पलालङ्कताम्।
रत्यासक्तमनो भवोपरिदृढां ध्यायेज्जपासन्निभाम्॥
दक्षेचातिसिता विमुक्तचिकुरा कर्त्रीं तथा खर्परम्।
हस्ताभ्यां दधती रजोगुणभवा नाम्नापि सा वर्णिनी॥
देव्याश्छिन्नकवन्धतः पतदसृग्धारां पिवन्ती मुदा।
नागावद्धशिरोमणिर्मनुविदा ध्येयातथा सा सुरैः॥
वामेकृष्णतनु स्तथैव दधती खड्गं तथा खर्परम्।
प्रत्यालीढपदा कवन्धविगलद्रक्तं पिवन्ती मुदा॥
सैषा या प्रलये समस्त भुवनं भोक्तुंक्षमा तामसी।
शक्तिः साऽपि परात्परा भगवती नाम्ना पराडाकिनी

(वज्रवैरोचनीया याने छिन्नमस्ता को विश्वसारतन्त्रने अधरा म्नायात्मिका भी वतायाहै) परन्तु उसविषयके मन्त्रध्याना मुझे मालूमनहीं। दक्षिणाम्नायात्मिका छिन्नमस्ताका, पीठपूजा यन्त्र तथा आवरणपूजादि के विषयमें मेरुतन्त्रमें इसप्रका लिखा है।

"आधारशक्तिमारभ्य परतत्वान्त पूजितें।
पीठे जयाख्या विजया अजिता चापराजिता॥
नित्या विलासिनी षष्टी दोग्ध्री घोरा च मङ्गला।

विन्दुमध्ये च संपूज्या नवपीठस्य शक्तयः॥
सर्वबुद्धिप्रदे वर्णनीये सर्वपदं ततः।
सिद्धिप्रदे डाकिनीये प्रणवं वज्रं वै वदेत्॥
रोचनीये तथैह्येहि ममोन्तः प्रणवादिकः।
पीठमन्त्रो वेदवह्निवर्णः पीठार्चने मतः।
त्रिकोणं रसकोणं चाष्टदलं भूपुरन्ततः॥
वाह्यावरणमारभ्य पूजयेत्प्रतिलोमतः॥
भूपुराद्वाह्यभागेषु वज्रादीनि प्रपूजयेत्।
तदन्तः सुरराजादिन् द्वारेषु द्वारपान्यजेत्।
करालं विकरालञ्चातिकालं महाकालकम्॥
एकलिङ्गां योगिनीञ्च डाकिनीं भैरवीं तथा॥
महाभैरवि फेन्द्राद्या वसिताङ्गीञ्च हारिणीम्।
षट्कोणेषु षडाङ्गानि त्रिकोणे छिन्नमस्तकाम्॥
डाकिनी वर्णिनी तार वाग्भ्यां तत्पार्श्वयोर्यजेत्॥"

यह दक्षिणाम्नायात्मिका छिन्नाका यन्त्र मतान्तरसे अन्य-प्रकारका भी है।

अब उत्तराम्नायोपासिता छिन्नाका यन्त्रोद्धार यामल में इस प्रकार है।

"त्रिकोणं विन्यसेदादौ तन्मध्ये मण्डलत्रयम्।
तन्मध्ये विलिखेद्योनिं द्वारत्रयसमन्वितम्॥
वहिरष्टदलं पद्मं भूविम्बत्रितयं पुनः।
कूर्मबीजं लिखेन्मध्ये त्रिकोणं हसमन्वितम्॥"

इस छिन्नमस्ता विद्याके भैरव विकरालभैरव हैं। दक्षिण और उत्तर दोने ही आम्नायोंमें एक ही मन्त्रसे पूजाकरने की विधि मेरे गुरुदेवने बताई है। ध्यानमें एक आयुध पृथक् है। उनके मन्त्र ध्यानादिको इसप्रकार भूतभैरवतन्त्र में लिखा है।

" अथक्रोधमनुं वक्ष्ये असाध्यं येन सिध्यति।
बीजं हलाहलं गृह्य क्रोधबीज मतः परम्॥
भयंकराणं माभाष्यासिताङ्गं क्षतजत्विषम्।
प्रलयाग्नि महाज्वाला माभाष्य मनुमुद्धरेत्॥
एवमुच्चारितः क्रोधः स्वयमेव प्रसिध्यति।
ततस्तु क्रोधमन्त्रेण षडङ्गन्यासमाचरेत्॥
विषं वज्रयुतं वोधि महाकालं न्यसेद्धृदि।
विषं हरयुगं वज्रकूर्चाद्यं विन्यसेच्छिरः॥
हलाहलं देहयुतं वज्रकालं न्यसेच्छिखाम्।
विषमस्त्रयुतं वज्रमायुधंकवचं न्यसेत्।
तारावीजयुतं वज्रं महाकालाय नेत्रयोः।
विषं हनयुतं गृह्य दहगृह्य परान्वितम्॥
क्रोधं वज्रयुतं तद्वत् सर्वदुष्टानथापरम्।
ततो मारय वज्रास्त्रं दिग्वन्धान्तं षडङ्गकम्॥"

अस्य ध्यानम्—

" तत्र मध्ये न्यसेद्धीमं तप्तज्वालासमाकुलम्।
साट्टहासं महारौद्रं भिन्नाञ्जनचयोपमनम्॥

प्रत्यालीढं चतुर्बाहुं दक्षिणे चक्रधारिणम्।
(उत्तराम्नाय मे " वज्रधारिणम्)
तर्जनीं यामहस्तेन तीक्ष्णदंष्ट्राकरालिनम्॥
कपालरत्नमुकुटं त्रैलोक्यस्य विनायकम्॥
आदित्य कोटिसंकाश मष्टनागावभूषितम्।
अपराजितपदाक्रान्त मुद्रावान् वलचिह्निभिः।
अनामिकाद्वयंबद्ध्वा आकुञ्च्य तर्जनीद्वयम्।
कनिष्ठां मध्यमां चैव ज्येष्ठाङ्गुष्टेन चक्रमात्॥
एव मुद्राधरो भीमस्त्रैलोक्यासाध्यसाधकः।

छिन्नमस्ता और परशुरामर्में ऐक्य होनके कारण परशुराम की जब सात्विक मूर्ति होगी तब दक्षिणाम्नायसे, जब राजसी मूर्ति होगी तब दक्षिणाम्नाय अथवा उत्तराम्नायसे, फिर तमोगुणी मूर्ति जब होगी तब उत्तराम्नायसे उपासना होगा। मन्त्र तथा यन्त्रएकही हैं। उनके मन्त्रध्यानादि मेरुतन्त्रमें लिखा हैं।

" अथातः संप्रवक्षामि राममन्त्रं महाद्भुतम्।
आकल्पमेक एवायं जामदग्न्यो महाबलः॥
ब्रह्मक्षेत्राय विद्महे क्षत्रियान्ताय धीमहि।
तन्नो रामः प्रचोदयात्॥
श्रीमत्परशुरामस्य गायत्र्येषा महाद्भुता॥
राज्यकृत् कलिभूपानां सर्वतन्त्रेषु गोपिता॥
भारद्वाजो मुनिः प्रोक्तो गायत्री छन्द ईरितम्।
श्रीमान् परशुरामोऽस्य देवता भक्तवत्सलः॥
अष्टेपुत्रिद्विवाहब्धिवर्णैः प्रोक्तं षड़ङ्गकम्॥"

अस्य ध्यानत्रयम्—

" सात्विकं श्वेतवर्णं च भस्मोद्धूलितविग्रहम् ।
अग्निहोत्रस्थलासीनं नानामुनिगणावृतम् ॥
कम्बलासनमारूढं स्वर्णतारकुशाङ्गुलिम् ।
श्वेतवस्त्रद्वयोपेतं जुह्वन्तं शान्तमानसम् ॥

इति सात्विकध्यानम् ।

" ध्यायेच्च राजसं रामं कुंकुमारुणविग्रहम् ।
किरीटिनं कुण्डलिनं परश्वब्जवराभयान् ॥
करैर्दधन्तं तरुणं बिभ्रत्तत्रौघसंवृतम् ।
पीताम्बरधरं कामरुपं बालनिरीक्षितम् ॥ "

इति राजसध्यानम् ।

" ध्यायेच्च तामसं छत्ररुधिराक्तापरश्वधम् ,
आरक्तनेत्रं कर्णस्थब्रह्मसूत्रं यमप्रभम् ॥
" धनुष्टङ्कारसंघोष संत्रस्तभुवनत्रयम् ।
चतुर्बाहुं मुशलिनं संक्रुद्ध भ्रातृसंयुतम् ॥ "

इति तामस ध्यानम् ।

अब पूर्वोक्त नामावली के अनुसार अब भद्राका वर्णनकरना था, परन्तु यह विद्या मेरे क्रममें नहोनेके कारण मैं उससे अनभिज्ञ हूं । अब तारा के विषयमें मैं जो जानता हूँ, वह सब दक्षिणाम्नायात्मक हैं । तारा विद्या अधराम्नायनायिका हैं, तथापि

अधराम्नाय बौद्धमतावलम्बी लोगोंके लिए होनेके कारण हमलोग ताराविद्याको दक्षिणाम्नायसे ही उपासना करते हैं। अब तारा के विविध तन्त्रोक्त विविध मन्त्रोद्धार लिखता हूँ

फेत्कारिणीतन्त्रे—

" सपरं प्रथमं दत्वा चतुर्थस्वरभूषितम् ।
रेफारूढं स्फुरद्दीप्तमिन्दुबिन्दुसमन्वितम् ॥
मकारं च ततो दद्याच्चतुर्थेनैव भूषितम् ।
दीर्घौकारसमायुक्तं हकारं योजयेत् ततः ॥
फट्कारं च ततो दद्यात् संपूर्णः सिद्धमन्त्रतः ॥"

मत्स्यसूक्ते—

" अथवक्ष्ये महादेव्या मन्त्रोद्धार मनुत्तमम् ।
यच्चज्ञात्वा नरो भाति वाचस्पतिरिवापरः ॥
मायाबीजं समुद्धृत्य तवर्गप्रथमं तथा ।
रतिबिन्दुवह्नियुतं द्वितीयं बीजमुत्तमम् ॥
कूर्चबीजं तृतीयं तु फट्कारस्तदनन्तरम् ।
संपूर्णसिद्धमन्त्रस्तु रश्मिपंचकसंयुतः ॥ "

अस्या न्यासं मेरुतन्त्रे—

" मुनिरक्षोभ्यसंज्ञोस्या बृहती छन्द ईरितम् ।
तारादेवी ह्रीँ च बीजं हूँ शक्तिश्चास्य कीर्तिता ॥

यह उग्रतारा देवता सार्द्धपंचाक्षरी विद्या हैं ॥ इनका ध्यान फेत्कारिणीतन्त्र में ऐसा है ।

" प्रत्यालीढपदार्पितङ्घ्रि शवहृद्घोराट्टहसा परा।
खड्गेन्दीवरकर्तृखर्परभुजा हूँकारबीजोद्भवा ॥
खर्वानीलविशालपिंगलजटाजूटैकनागैर्वृता।
जाड्यं न्यस्य कपालके त्रिजगतां हन्त्युग्रतारा स्वयम् ॥

सकल ही दक्षीणाम्नायात्मिका ताराके भेदोंमें यही ध्यान करनेकी प्रथा है। परन्तु यह सार्द्धपंचाक्षरी महोग्रतारा की महाविद्या हैं इनका रहस्य ध्यान यह है।

" प्रकटविकटदंष्ट्रा घोररूपाट्टहासा ।
नरशिरकृतमाला नीलवर्णातिखर्वा ॥
त्रिभुवन जयदात्री हस्तविन्यस्तकर्त्री ।
करकलितकपाला पातु मामुग्रतारा ॥"

अथ यही सार्द्धपञ्चाक्षरी जब प्रणवरहीता होगी तब वह विद्या एकजटा होगी लिखा भी हैं।

" प्रणवेन विना ह्येषा विद्या चैकजटा स्मृता ॥"

इनके न्यासादि पूर्ववत् हैं। फिर एकजटा के मन्त्रान्तर के विषयमें मन्त्रमहोदधिमें लिखा है।

" तारो माया वर्ममाया वर्मास्त्रं च रसाक्षरी।
" हरिरग्निस्त्रिमूर्तीन्दुयुग्वर्मपुटिताद्रिजा ॥
अस्त्रान्त पञ्चवर्णोऽयं प्रोक्त मेकजटा द्वयम्।

ध्यानम् (एकजटायाः)–

" श्वेताम्बरां शारदचन्द्रकान्तीं षड्भूषणांचन्द्रकलावतंसाम्।
कर्त्री कपालान्वितपाणिपद्मां तारां त्रिनेत्रां प्रभजेखिलर्द्ध्यै ॥

फिर यही सार्द्धपञ्चाक्षरी जब प्रणव और फट्कारसे रहीत

होगी तब वह विद्या नीलसरस्वती होगी। लिखा भी है।

" तारास्त्ररहिता त्र्यर्णा भवेन्नीलसरस्वती ।
अक्षोभ्य ऋषिरेतस्याबृहती छन्द ईरितम् ॥
नीलसरस्वती देवी त्रिषुलोकेषु गोपिता।
हूँ बीजंमस्त्रं शक्तिः स्याच्चतुर्वर्गफलप्रदा ॥"

नीलसरस्वती के इस मन्त्र का ध्यान ऐसा हैं।

" शवासनां सर्पविभूषणाढ्यां कर्त्रीकपालं चवर्कत्रिशूलम्।
करैर्दधानां नरमुण्डमालां त्र्यक्षां भजेन्नीलसरस्वतींताम्॥

(पूर्वोक्त तीनों विद्याओं के करषडङ्गन्यासादि एकही हैं। तारा-कल्प में लिखा भी है।

" षड्दीर्घमायाबीजेन षडङ्गविधिरीरितः ॥"

फिर नीलसरस्वती के मन्त्रान्तर और ध्यानान्तर के विषय में मन्त्रमहोदधि में लिखा हैं।

" तारं माया हसौव्यापिन्यारूढौसर्गसंयुतो।
वर्मास्त्रंनीलभृगुरस्वत्यैठद्वयमीरितम् ॥
प्रणवाद्योमनुः सर्वसिद्धिदोमनुवर्णकः ।
अध्यायाब्रह्मगायत्री तथा नीलसरस्वतीं ॥
नेत्र चन्द्रेन्दुनेत्राङ्गनेत्राणैरंगकल्पना ।
मन्त्रोत्थितैरथोध्यायेद्देवीं सर्वेष्टसिद्धिदाम् ॥"

अस्या ध्यानम्–

" घण्टाशिरः शूलमसिंकराग्रैः संबिभ्रतीं चन्द्रकलावतंसाम्।
प्रमथ्नतींपादतले पशुंतां भजे मुदा नीलसरस्वतीशाम् ॥ "

अब मेरुतन्त्रोक्त तारा के मन्त्रों का वर्णन इस प्रकारका है।

" अथातः संप्रवक्ष्यामि दैत्यानां वरसिद्धये।
ब्रह्मणो पासितां तारां वल्यादिभिरुपासितम् ॥
ॐ त्रीँ ह्रीँ हूँ समुच्चार्य ह्रीँ हूँ फट् नववर्णकः।
मुनिर्ब्रह्मा च गायत्री छन्दस्तारा च देवता॥
न्यासांस्तु पूर्ववत्कुर्याद्ध्यानमस्या निरूप्यते ॥ "

अस्या ध्यानम्—

" श्वेताम्वरां चन्द्रकान्ति चन्द्रार्धकृतशेखराम्।
कर्तरीं च कपालं च कराभ्यां दधतीं भजेत्॥
मधुयुक्परमान्नेन होमाद्विद्यानिधिर्भवेत्।
रक्तां वश्ये स्वर्णवर्णां स्तम्भने मारणेऽसिताम्।
उच्चाटने धूम्रवर्णां शान्तौ श्वेतां स्मरेदिमाम्॥

मन्त्रान्तरं तत्रैव—

" अथातः संप्रवक्ष्यामि तारकस्य वराय तु।
ब्रह्मणोपासितां तारां द्वादशार्णां सुदुर्लभाम्॥
वाचां लज्जां रमां कामं हसरा आसमन्विताः।
विसर्गाढ्याः पञ्चमं तु कूटमेतदुदीरितम्॥
हुँ उग्रतारे हूं फट् मंत्रः प्रोक्तो जपादिकम्।
सर्वं पूर्ववदेवास्य कलौ प्रत्ययकारिणी ॥

अन्यच्च तत्रैव—

" अथातः संप्रवक्ष्यामि सप्तार्णां रामसेविताम्।
लक्ष्मीप्रभृति नाशार्थं तेन मत्तः सदा हली।
ब्रह्मोपासित सप्तार्णमध्ये कूटं तु पंचमम्॥

तत् स्यरका सौँ स्तत्र चोरका बलरामेण सेविता॥
शत्रुक्षयकरी चेयं तथा वाक्सिद्धिकारिणी।
ध्यान पूजादिकं प्राग्वत् प्रयोगादिकमेवच॥ "

अन्यच्च तन्त्रान्तरे—

" वधूबीजं त्रं कवचं मायां कूर्चं तथास्त्रकम्।
सार्धपंचाक्षरो मन्त्रो द्वितीयः परिकीर्तितः॥ "

(तारा के भैरव अक्षोभ्य है वह तारा के सदृश अधराम्नाय से भी दक्षिणाम्नाय से भी पूजित हैं।) उन के मन्त्र ध्यानादि ब्रह्मसंहिता में लिखे है।

" अनुत्तरं समुद्धृत्य पपञ्चमविभूषितम्।
अक्षोभ्येति च स्वाहेति रमाद्यन्तं महामनुः॥
स्वयम्-ऋषिश्च संप्रोक्तो विराट्छन्द उदीरितम्।
अक्षोभ्यो देवता प्रोक्तस्त्रिमूर्तिनागरूपधृक्॥
विनियोगस्तु नियतं पुरुषार्थचतुष्टये ॥ "

अस्य ध्यानम्—

" अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि सर्वसौभाग्यदायकम्।
सहस्रादित्यसंकाशं नागरूपधरं शुभम्॥
विद्युत्कोटिसमं वक्त्रं वह्निभास्वरलोचनम्।
सार्द्धत्रिवलयोपेतं जटाकोट्यग्रसंस्थितम्॥
महालावण्यसंयुक्तं सुरासुरनमस्कृतम्।
सूर्यविद्युत्समाभासं महामणिशिखोपरि॥
एतद्रूपं महाकाय देवैरपि सुपूजितम्॥"

विष्णुका रामावतार और तारा का ऐक्य है यह बात फिर काली. तारा तथा महात्रिपुरसुन्दरी में ऐक्य है,यहबात भी पूर्व ही बताचुके हैं। इसलिए राम के मन्त्र दक्षिणाम्नायात्मक, उत्तराम्नायात्मक अधराम्नात्मक तथा उर्ध्वाम्नायात्मक होते हैं। श्रीरामका राज्यावस्था के मन्त्र ध्यानादि जितने हैं वह सब दक्षिणाम्नायात्मक हैं। क्योंकि उसअवस्था में राज्यकी स्थिति चलरही थी,कहा भी है की "स्थितिरूपश्च दक्षिणः।" उदाहरण के लिए एक मेरुतन्त्र का उद्धार देकर ध्यानादि देदूँगा। फिर जिस अवस्था में श्रीराम वनवासी थे फिर सीतावियोगी थे उस अवस्था के मन्त्रध्यानादि अधराम्नायात्मक हैं परन्तु वे गृहस्थाश्रमी के लिए निषेध होने के कारण मैं अनभिज्ञ हूँ। शायद कीशोरावस्था में उत्तराम्नायात्मक होगा। यह मेरा अनुमान मात्र है। क्यों कि पूर्वोक्त दो अवस्थाओं में दो आम्नाय हैं। यह बात मैं गुरुकृपा से जानता हूँ। परन्तु तीसरी अवस्था के आम्नाय के सम्बन्ध में मेरे गुरुदेवने मुझे कुछ बताया नहीं है। अतः किशोरावस्था के ध्यान और मन्त्र को मैंने उत्तराम्नायात्मक होने का अनुमान किया है। क्योंकि किशोरावस्था में ही श्रीराम ने योगवासिष्ठ श्रवण किया था। यह विचार मेरा भ्रम भी हो सकता है। अब मन्त्रों की चर्चा करें। आगम में लिखा है।

" राकारे विद्यते माया मकारे विद्यते शिवः।
शिवशक्त्यात्मको मन्त्रो रामरामेति गीयते॥ "

तन्त्रान्तरेऽपि—

" राम शक्तिरितिख्यात तु शिवः परिकीर्तितः।
शिवशक्त्यात्मकं ब्रह्म राम नामाक्षरात्मकम्॥"

इस से स्पष्ट विदित होता है कि 'राम' नाम शिवशक्त्यात्मक है। इसलिए शक्तिप्राधान्यकर के शिव को सूक्ष्म यानी नाद बिंदुआत्मकरूप बनाकर "राँ" बीज को भुक्तिमुक्ति देनेवाला तारकमन्त्र मानागया है। परन्तु यह तारकमन्त्र शूद्रादि यानी जिन्हें प्रणवोच्चारण करने का अधिकार नहीं हैं, उन के लिए है। जिन लोगों को प्रणव का अधिकार है, उनके लिए तो प्रणव ही तारक मन्त्र हैं। यह "राँ" बीज प्रणवके अनधिकारियोंके लिए प्रणवका अनुकरण है। अध्यात्मरामायण में लिखा भी है।

" ॐकारवाच्यस्त्वं राम वाचाय विषयः पुमान्।
वाच्यवाचक भेदेन भवानेव जगन्मयः॥

इसीलिए वाल्मीकि जो पहले व्याधा थे, उन्हें प्रणव तो क्या शक्तिमन्त्रका भी अधिकार नहीं था, सप्तर्षिलोग शास्त्रके मर्मज्ञ थे वर्णाभिमान से अन्यलोगों को तिरस्कार नहीं करते थे ईश्वर की आराधनामें मनुष्य मात्रका समान हक है, फिर मनुष्य होकर दूसरे मनुष्य को घृणा करना घोर पाप है परन्तु उस मनुष्य ने कुछ दुष्कर्म अथवा भूल किया हो तो वह भूलसुधारकर स्वयं सहायकबन के परोपकार करना मुख्य मानवीय कर्तव्य और परमपुण्य है। यह सकल बातका पूर्ण विचार करते थे। जब देखा कि बेचारा वाल्मीकि मोहान्धकार के वश होकर अपने व्याधावृत्ति कुकर्म से यमयातना में जारहे हैं तब उनको सप्तर्षि से आदिमें 'मरा' यह विपरीत राम नामकी दीक्षा हो गई। तत् पश्चात् क्रमपूर्वक उपासना करते करते ब्रह्मगायत्रीका मर्मज्ञ महाकविवर महर्षि बन गए। अतः उपासकों को जहाँ तक अधिकार है वहीं से प्रारम्भकर ऊपर पहुंचना होगा। एकदम उपर पहुँ-

चनें की चेष्टा करें तो गिरनें की बहुत संभावना है। साधारण विचार से देखिए की हरेक देवता में शक्ति हीं का प्राधान्य है। जैसे "सीताराम" सब कहते है, "रामसीता" कोई नहीं कहता; "गौरीशङ्कर" सब कहते है, परन्तु "शङ्करगौरी" कोई नहीं कहता। सर्वत्र ऐसा ही है। अतएव सब को शक्ति मन्त्र से ही उपर पहूँचने की सामर्थ्य मिलेगा। लिखा है की "जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद्द्विज उच्यते।" इस लिए जब शक्तिमन्त्र गायत्री का श्रवण होगा तब द्विजत्व की प्राप्ति होगी। लिखा भी है।

"सर्वे शाक्ता द्विजाःप्रोक्ता न शैवा न च वैष्णवाः
आदिशक्तिमुपासन्ते गायत्रीं वेदमातरम्॥"

इसी गायत्री के त्रिकाल में ब्राह्मी (ब्रह्माणी), रौद्री (माहेश्वरी) और वैष्णवी ये तीन रुप हैं। इनका वर्णन ऊर्ध्वाम्नाय का विवरण में दियाजाएगा। इन्हीं तीन रुपों की समष्टि मूर्ति महात्रिपुरसुन्दरी हैं। सुन्दरीस्तव में लिखा है।

"ब्राह्मी रौद्री वैष्णवीति शक्तयस्तिस्र एव हि।
पुरंशरीरं यस्याःसा त्रिपुरेति प्रकीर्तिता॥"

फिर तन्त्रान्तर में लिखा हैः-

"प्रकाशश्च विमर्शश्च स्पन्दः सत्ता चितिः क्रिया।
स्फुरन्तीति समाख्याता सा वै त्रिपुरसुन्दरी॥"

इसलिए क्रमदीक्षा की विधि जो तन्त्र में लिखी है उस से स्पष्ट विदित होता है कि सकल विद्याओं की क्रमपूर्वक साम्राज्यरू-

पिणी निर्वाण महात्रिपुरसुन्दरी में समष्टि होती हैं और महापूर्णाभिषेक भी होता है। विना पूर्णाभिषेक क्रमकी पूर्ति नहीं हो सकती। फिर पूर्व में ही कहचुका हूं कि ईश्वराराधनाके लिए सकल नरनारीयों के समानाधिकार होने के कारण सकल वर्णों के नरनारी क्रमदीक्षा लेकर महापूर्णाभिषेक ले सकते हैं। परन्तु आदि में तो वर्ण भेदका विचार अवश्य ही रखकर अपने अपने अधिकारानुसार उपासनाका आरम्भ करना होगा। क्रमदीक्षा ग्रहण कर पूर्णाभिषेक करनेवाले के लिए मेरुतन्त्र में लिखा है।

"गतं शूद्रस्य शूद्रत्वं गता विप्रस्य विप्रता।
दीक्षासंस्कार संपन्ने जातिभेदो न विद्यते॥
पूर्णाभिषेकं कृत्वा तु यत्रकुत्र मृतोऽपि च।
स एव देवीरूपःस्यात् स देवो धन्यतामियात्॥"

फिर बृहद्वडवानलतन्त्र में भी लिखा है।

"अयोग्यानां च विप्राणां नदेया कुलसुन्दरी।
श्रीपदाम्भोजसुरतान् चाण्डालानपि दीक्षयेत्॥"

पुनश्च तत्रैव—

"पूर्णाभिषेकसंयुक्तश्चाण्डालोऽपि भवेद्यदि।
स ब्रह्मर्षिर्महेशानि नात्र कार्या विचारणा॥
पूर्णाभिषेक हीनो य ऋषिवर्योऽपि पार्वति।
सब्राह्मणाधमः प्रोक्तस्त्वभिषेकी द्विजोत्तमः॥
नास्ति वर्णाश्रमे चिन्ता नाधिकारे तु चिन्तनम्।
पूर्णाभिषेकयुक्तानामधिकारो हि सर्वतः॥"

ऐसे प्रमाण बहुत हैं। यहाँ लेख विस्तार भय से नहीं देसक्ता हूँ। अतएव क्षमाप्रार्थी हूँ। अब फिर श्रीराम के विषय में लौट जाएं। मेरुतन्त्र में श्रीराम के मन्त्रों का उद्धार इसप्रकार लिखा है।

" रामाय नम इत्येव राँ क्लीँ ह्रीँ ऐँ तु पूर्वकः।
श्रीँ ताराद्यश्च षड्वर्णः षड्विधः परिकीर्तितः॥
ब्रह्मा संमोहनः शक्तिर्दक्षिणामूर्तिरेव च।
अगस्त्यः श्रीशिवः प्रोक्तो मुनयोऽनुक्रमादिमे॥
छन्दो गायत्र्यं च श्रीरामो देवता मतः॥"

इसका मतलब निम्नलिखित प्रकार लिखा है।

मन्त्रः	ऋषिः	छन्दः	देवता
१. राँ रामायनमः-	ब्रह्मा	गायत्री-	श्रीरामोदेवता
२ क्लीँ रामायनमः-	संमोहनः-	"	"
३. ह्रीँ रामायनमः-	शक्तिः -	"	"
४. ऐँ रामायनमः -	दक्षिणामूर्ति	"	"
५. श्रीँ रामायनमः -	अगस्त्यः	"	"
६. ॐ रामायनमः -	श्रीशिवः	"	"

मन्त्राणों से करषडङ्गन्यास करनेकी प्रथा है। ये छहों मन्त्रों का दक्षिणाम्नाय से उपासना होता है। ध्यान के विषय में ग्रन्थ भेद से ध्यान भेद होता है। अतः अपने अपने गुरुपरंपरा के अनुसार ध्यान करें। ध्यान ऐसा है।

वशिष्ट संहितायाम्-

" चतुर्भुजं शङ्खचक्रगदापंकजधारिणम्।
किरीटहारकेयूररत्नकुण्डलमण्डितम्॥"

ध्यानान्तरम्-

" ध्यायेत्कल्पतरोमूले सौवर्णमण्डपं मुने।
तन्मध्ये पुष्पकाख्यं च विमानं दिव्यमुत्तमम्॥
मध्ये सिंहासनं तस्य नानारत्नविभूषितम्।
तन्मध्येऽष्टदलंपद्ममुद्यदादित्य सन्निभम्॥
श्रीराममेनं तन्मध्ये समासीनं महामुने।
सम्यग्ज्ञानमयीं मुद्रां दधानं दक्षिणे करे॥
तेजः प्रकाशनं वामं जानुमूर्धनि चापरम्।
जानकीवल्लभं देवमिन्द्रनीलसमप्रभम्॥
उद्यानंनिरतं देवं द्विभुजं रघुनन्दनम्।
वशिष्ठवामदेवादिमुनीभिः परिवारितम्॥
वामभागेसमासीनां सीतां काञ्चनसन्निभाम्।
भजतां कामदां नित्यं रक्तोत्पलकराम्बुजाम्॥
लक्ष्मणं पश्चिमे भागे धृतछत्रसुचामरम्।
पार्श्वे भरतशत्रुघ्नौ तालवृन्तकरावुभौ॥

शारदायाम्-

" कालाम्भोधरकान्तिकान्तमनिशं वीरासनाध्यासिनम्।
मुद्रांज्ञानमयीं दधानमपरं हस्ताम्बुजं जानुनि॥
सीतां पार्श्वगतां सरोरुहकरां विद्युन्निभां राघवम्।
पश्यन्तं मुकुटाङ्गदादिविविधाकल्पोज्ज्वलाङ्गं भजे॥"

मेरुतन्त्रे-

" वीरासनसमारूढं व्याख्यामुद्रोपशोभितम् ।
वामोरून्यस्त तद्धस्तं सीतालक्ष्मणसंयुतम् ॥"

अब श्रीराम का ऊर्ध्वाम्नायात्मक मन्त्र मुझे केवल एक ही ज्ञान है । अन्यन्य प्रकार के भी हो सकते हैं। मैं जो जानता हूं उस मन्त्र में शिव और राम का ऐक्य और त्रिपुरसुन्दरी रूपिणी उमा और सीता का ऐक्य है । इस मन्त्र के उद्धार और ध्यान के विषय में गौरीकञ्चुकीतन्त्र में इसप्रकार लिखा हैं।

" नमोरामायेति पदंमायया संपुटीकृतम् ।
प्रणवाद्यं समुच्चार्य भवेन्नष्टाक्षरोमनुः ॥
अयं श्रीराममन्त्रेषु सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमः ।
ऋषिः सदाशिवः प्रोक्तो गायत्रं छन्दउच्यते ॥
शिवोमारामचन्द्रोऽस्य देवता परिकीर्तितः ।
दीर्घया मायायाङ्गानि तारपश्चार्णयुक्तया ॥"

अस्य ध्यानम्-

" रामं त्रिनेत्रं सोमार्द्धं धारिणं शूलिनं वरम् ।
भस्मोद्धुलितसर्वाङ्गं कपर्दिनमुपास्महे ॥
रामाभिरामां सौन्दर्यसीमां सोमावतंसिनीम् ।
पाशांकुशधनुर्बाणधरां ध्यायेत्त्रिलोचनाम् ॥"

सीताका मन्त्र वशिष्टसंहिता में इसप्रकार लिखा है ।

" श्रींबीजं पूर्वमुच्चार्य सीतायै पदमुद्धरेत् ।
वह्निजायान्वितो मन्त्रो भजतां कल्पभूरुहः ॥

जनकोऽस्य ऋषिः प्रोक्तो गायत्री छन्द उच्यते ।
सीताख्या या जगद्धात्री देवता सा जगन्मयी ॥"

मेरुतन्त्रे-

" सीता भगवती प्रोक्ता श्रीबीजं शक्तिरन्त्यको ।
दीर्घस्वरयुजाद्येन षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ॥
पूजयेद्वैष्णवे पीठे ध्यायेद्राघवसंयुताम् ।
स्वर्णाभामम्बुजकरां रामालोकन तत्पराम् ॥"

श्रीराम का यन्त्र विष्वक्सेनसंहिता में इसप्रकार का है:-

" अष्टपत्रं लिखेत् पद्मं षड्कोणोज्ज्वलकर्णिकम् ।
पुनरष्टदलं बाह्ये लिखेद्वृत्तत्रयाद्बहिः ॥
तद्बहिर्द्वादशदलं तद्बाह्ये षोडशच्छदम् ।
दन्तपत्रं च तद्बाह्ये भूपुरत्रितयावृतम् ॥"

अस्यावरणपूजा मेरुतन्त्रे-

" पूजयेद्वैष्णवे पीठे मूर्तिं मूलेन कल्पयेत् ।
श्रीँ सीतायै द्विठान्तेन वामपार्श्वगतां यजेत् ॥
ततस्त्रिकोणकोणाग्रे पृष्ठतो लक्ष्मणं यजेत् ।
वामपार्श्वेत्रिकोणस्थं शार्ङ्गं दक्षिणतः शरान् ॥
ततः षड्दलमध्ये तु षडंगानि प्रपूजयेत् ।
तद्बाह्येष्टदलं प्रोक्तं पूजयेदष्टदिक्षु च ॥
आत्मानं च निवृर्त्तिं च ह्यन्तरात्मानमेव च ।
प्रतिष्ठां परमात्मानं ततो विद्यां प्रपूजयेत् ॥
नानात्मानं तथा शान्तिं केशरेषु प्रपूजयेत् ।
दलमध्ये वासुदेवं श्रियं संकर्षणं तथा ॥

शान्तिं प्रद्युम्नमग्रेऽनिरुद्धं च रतिमर्चयेत् ।
हनुमन्तं च सुग्रीवं भरतं च विभीषणम् ॥
निषादाऽङ्गदशत्रुघ्नाजाम्बवन्तं पुलामतः ।
आञ्जनेयं तदग्रे च वाचयन्तं कृताञ्जलिम् ॥
धृतिं जयन्तं विजयं सुराष्ट्रं राष्ट्रवर्धनम् ॥
अकोपं धर्मपालाख्यं मन्त्रिणश्च क्रमाद्यजेत् ।
वशिष्ठं वामदेवं च जाबालिं गौतमं तथा ॥
भरद्वाजं काश्यपं च वाल्मीकिं कौशिकं तथा ।
नारदं सनकं चैव सनातनमतः परम् ॥
सनत्कुमारं च यजेत्तद्बाह्ये द्वादशारके ।
नीलं नलं सुषेणं च मैन्दं च शरभं ततः ॥
द्विविदं च गवाक्षं च सकिरीटं सकुण्डलम् ।
श्रीवत्सं कौस्तुभं शंखं गदाचक्रे च पद्मकम् ॥
अर्चयेत्षोडशदले पूर्वतस्तु कृताञ्जलीन् ।
ध्रुवो धरश्च सोमश्च आपश्चैवानिलोनलः ॥
प्रत्यूषश्च प्रभातश्च वसवोष्टौ प्रकीर्तिताः ।
वीरभद्रश्च शम्भुश्च गिरीशश्च महायशाः ॥
अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकी चापराजितः ।
भुवनाधीश्वरश्चैव कपाली च दिशांपतिः ॥
स्थाणुर्भगश्च भगवान्रुद्रा एकादश स्मृताः ।
विवस्वान् सूर्यवेदांगो भानुरिन्द्रो रविस्तथा ॥
गभस्तिस्तु यमः सर्वसाक्षी चापि दिवाकरः ॥
चित्रो विष्णुरिति प्रोक्ता आदित्या द्वादश क्रमात् ।
धातारमन्ते प्रयजेद्द्वात्रिंशत्पत्रकेष्विमान् ॥

इन्द्रादीन्भूगृहे प्रायो तदस्त्राणि च संयजेत् ।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगान् कर्तुमर्हति ॥ ”

अथ हनुमान् के विषय में जो मुझे विदित है, वह मैं यहां लिखता हूं (हनुमान् की दक्षिणाम्नाय से उपासना होता है। (6) परन्तु यादरहे कि ब्रह्मचर्यपूर्वक पाशवकल्प से ही उपासना करना चाहिए।) हनुमान के मन्त्र ध्यानादि के विषय में मन्त्र महोदधि में लिखा है।

“अथोच्यते हनुमतो मन्त्राः सर्वेष्टसिद्धये ।
इन्द्रस्वरेन्दुसंयुक्तोवराहोहसफाग्नयः ॥
क्रोंटीश बिन्दुसंयुक्ताद्द्वितीयं बीजमीरितम् ।
गदीपान्ताग्निरुद्रेन्दुसंयुतः स्यात्तृतीयकम् ॥
हसरामनुचन्द्राढ्याश्चतुर्थं हसखाः फराः ।
शिवेन्द्वाढ्याः पंचमः स्याद्धसौमन्विदुगौ परम् ॥
ङेयुतो हनुमान् हार्दं मन्त्रोऽयं द्वादशाक्षरः ।
रामचन्द्रो मुनिश्चास्य जगतीछन्दईरितम् ॥
हनुमान् देवताबीजं षष्ठं शक्तिर्द्वितीयकम् ।
षड्बीजैरंगषट्कंस्यान्मूर्ध्निभालेदृशोर्मुखे ॥
कंठे च वाहुद्वितये हृदि कुक्षौ च नाभितः ।
लिङ्गे जानुद्वयेपादद्वये वर्णान्क्रमान्न्यसेत् ॥
षड्बीजानि पदद्वंद्वेमूर्ध्निभालेमुखेहृदि ।
नाभावूर्वोर्जंघयोश्चपादयोर्विन्यसेत्क्रमात् ॥

अस्य ध्यानम्—

“बालार्कायुततेजसं त्रिभुवनप्रक्षोभकं सुन्दरम् ।—

सुग्रीवादिसमस्तवानरगणैः संसेव्यपादाम्बुजम् ॥
नादेनैवसमस्तराक्षसगणान् संत्रासयन्तंप्रभुम् +
श्रीमद्रामपदाम्बुजस्मृतिरतं ध्यायामिवातात्मजम् ॥"

फिर ग्रन्थान्तर में हनुमान् के सात्विक और राजसी ध्यानो कं मैंने देखा है। परन्तु तामसीध्यान मेरा दृष्टिगोचर नहीं हुआ है शायद यहभी हो सकता हैं। पूर्वोक्त दोप्रकार के ध्यानों में सात्विक ध्यान ऐसा हैं।

" स्फटिकाभं स्वर्णकान्ति द्विभुजं च कृताञ्जलिम् ।
कुण्डलद्वयसंशोभिमुखाम्बुजहरिं भजेत् ॥ "

फिर राजसी ध्यान ऐसा है:-

" ध्यायेद्बालदिवाकरद्युतिनिभं देवारिदर्पापहाम् ।
देवेन्द्रप्रमुखप्रशस्ययशसं देदीप्यमानं रुचा ॥
सुग्रीवादिसमस्तवानरयुतं सुव्यक्ततत्त्वप्रियम् ।
संरक्तारुणलोचनं पवनजं पीताम्बरालंकृतम् ॥

वज्राङ्गं पिंगकेशाढ्यं स्वर्णकुण्डलमण्डितम् ।
नियुद्धमुपसंक्रम्य परावारपराक्रमम् ॥
वामहस्ते गदायुक्तं पाशहस्तं कमण्डलुम्
ऊर्ध्वदक्षिणदोर्दण्ड हनुमन्तं विचिन्तयेत् ॥ "

तन्त्रान्तर में हनुमान् का साधारण ध्यान इसप्रकार का है:-

" तप्तकाञ्चनसंकाश हृदयेनिहिताञ्जलिम् ।
किरीटिनं कुण्डलिनं ध्यायेद्वानरनायकम् ॥ "

पाताल में श्रीराम और लक्ष्मण को अहिरावण के हाथ से छुड़ाने

के लिए वहाँ देवीके मन्दिर के अन्दर जाकर असुरों द्वारा की गई वीराचारयुक्त देवीपूजा ग्रहण करते समय हनुमान्जी ने जो रूप धारण किया था, वह रूप तन्त्र में हनुभैरव कहा गया है। हनुभैरव मतान्तर से अथवा कल्पभेद से एकवक्त्र पञ्चवक्त्र तथा एकादशवक्त्र, हैं। इनका उपासना उत्तराम्नाय से होता है। जो लोग पाशवकल्प से उपासते हैं, वे एक-मुखी, पंचमुखी तथा एकादशमुखी हनुमान मानते हैं। और जो लोग वीरकल्प से उपासते हैं, वे एकवक्त्र पञ्चवक्त्र तथा एकादशवक्त्र हनुभैरव मानते है। यह एकवक्त्र हनुमान् और हनुभैरव पंचवक्त्र हनुमान् और हनुभैरव तथा एकादशवक्त्र हनुमान् और हनुभैरव के मन्त्र ध्यानादि पृथक् नहीं हैं, केवल भाव में भेद हैं। यह उत्तराम्नायात्मक हनुमान तथा हनुभैरवका प्रतिवक्त्र त्रिलोचन है। यह एकवक्त्र और एकादशवक्त्र के मन्त्र ध्यानादि मुझे मालूम नहीं हैं, पंचवक्त्र के भी मन्त्रादि में नहीं जानता हूँ। ध्यान इस प्रकार है।

" पंचवक्त्रं महा भीमं त्रिपञ्चनयनैर्युतम् ।
बाहुभिर्दशभिर्युक्तं सर्वकामार्थसिद्धिदम् ॥
पूर्वं तु वानरवक्त्रं कोटिसूर्यसमप्रभम् ।
दंष्ट्राकरालवदनं भृकुटीकुटिलेक्षणम् ॥
अस्यैव दक्षिणंवक्त्रं नारसिंह महाद्भुतम् ।
अत्युग्रतेजोवपुषं भीषणं भयनाशनम् ॥
पश्चिमं गारुडंवक्त्रं वक्रतुण्डं महाबलम् ।
सर्वनाग प्रशमनं विषभूतादिकृन्तनम ॥

उत्तरं सौकरंवक्त्रं कृष्णंदीप्तं तमोपमम् ॥
पाताल सिंहवेताल ज्वररोगादि कृन्तनम् ॥
ऊर्ध्वं हयाननं घोरं दानवान्तकरं परम् ।
येन वक्त्रेण विप्रेन्द्र तारकाख्यं महासुरम् ॥
जघान शरणं तत्स्यात्सर्वशत्रुहरं परम् ।
ध्यायेत् पंचमुखं रुद्रं हनुमन्तं दयानिधिम् ॥
खड्गं त्रिशूलं खट्वाङ्गं पाशमङ्कुश पर्वतम् ।
मुष्टिं कौमोदकीं वृक्षं धारयन्तं कमण्डलुम् ॥
भिन्दिपालं ज्ञानमुद्रां दशभिर्मुनि पुंगव ।
एतान्यायुधजालानि धारयन्तं भजाम्यहम् ॥
प्रेतासन प वज्रं तं सर्वाभरण भूषितम् ।
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ॥
सर्वाश्चर्यमयं देव हनुमद्विश्वतोमुखम् ।
पञ्चास्यमच्युतमनेक विचित्रवर्णं वक्त्रम् ॥
शशाङ्क शिखरं कपिराजवर्यम् ।
पीताम्बरादिमुकुटैरूपशोभिताङ्गम् ॥
पिङ्गाक्षमाद्यमनिशं मनसा स्मरामि ।

हनुमान् के विषय में यह विद्या मेरे गुरुपरम्परा में प्रचलित न होने के कारण मैं अल्पज्ञ हूँ। जितना जानता था उतना दे दिया हैं। अब गरुड़ के विषय में लिखता हूँ। (गरुड भी दक्षिणाम्नाय पूजित देवता हैं।) उन के मन्त्र ध्यानादि मेरुतन्त्र में ऐसे हैं

" वक्ष्येऽथ गारुडं मन्त्रं क्षिपतारोग्निगेहिनी ।
पंचाक्षरो मनुः पंक्तिश्छन्दोऽनन्तो मतोमुनि ॥

देवता गरुडस्तारो बीजं शक्तिर्द्विठाङ्गना ।
स्वाहान्तो हृदयेऽग्न्यस्यो ज्वलज्वलमहामते ॥
गृध्रचूडानन स्वाहाऽङ्गस्यान्ते मस्तके न्यसेत् ।
गरुडान्ते शिखे स्वाहा शिखाया मनुरीरितः ॥
चर्ममन्त्रस्तु गरुड प्रभञ्जय युगं वदेत् ॥
छिंः प्रभेदय विन्रासय दुष्टपंक्तिं विमर्दय ।
स्वाहा सप्तत्रिंशदर्णो नेत्रमन्त्रोथकथ्यते ॥
उग्ररूप धरेत्युक्त्वा सर्वविषहरेति च ।
भीषय द्वितयं सर्वं दहयुग्मं ततो वदेत् ।
भस्मीकुरु कुरुस्वाहा दन्तवर्णो मतो मनुः ॥
अस्त्रमन्त्रोऽ प्रतिहतबलाप्रति हतेति च ।
शासनान्ते वदेद्धूं फट् स्वाहान्तोऽष्टादशाक्षरः ॥"

अस्य ध्यानम्–

" चञ्चवग्रप्रचलन्नोगी भोगं मुकुटमण्डितम् ।
पक्षोच्चारितसत्सामगानं विषहरं भजे ॥ "

(अब पूर्वोक्त वडवानलतन्त्रोक्त नामावली के अनुसार मातङ्गी के विषय में लिखता हूं। इनके भेद बहुत हैं। किसिका दक्षिणाम्नाय से और किसिका उत्तराम्नाय से उपासना होता है। आगे दक्षिणाम्नाय से उपासना होनेवाली मातङ्गी के भेदों का वर्णनकर तत्पश्चात उत्तराम्नायोपासिताओं का वर्णन करूंगा। दक्षिणाम्नायोपासिताओं में सब से पहले मातङ्गी के मन्त्र ध्यानादि के विषय में यालम में लिखा है।)

" अथवक्ष्ये महादेवीं मातङ्गीं सर्वसिद्धिदाम् ।
अस्याः सेवनमात्रेण वाक्सिद्धिर्लभते ध्रुवम् ॥
प्रणवं च ततो मायां कामबीजं च कूर्चकम् ।
मातंगी ङेयुता चास्त्रं वह्निजायावधिर्मनुः ॥
ऋषिः स्याद्दक्षिणामूर्तिर्विराट्छन्द उदीरितम् ।
मातंगी देवता देवी सर्वसिद्धिप्रदायिनी ॥
अङ्गन्यासकरन्यासौ कुर्यान्मन्त्री समाहितः ।
षड्दीर्घभाजा बीजेन प्रणवाद्येन कल्पयेत् ॥ "

अस्या ध्यानम्-

" श्यामाङ्गीं शशिशेखरां त्रिनयनां रत्नसिंहासने ।
संस्थां रत्नविचित्रभूषणयुतां संक्षीणमध्यस्थलाम् ॥
आपीनस्तनमण्डलां स्मितमुखीं ध्यायेद्दधन्तीं क्रमात्
वेदैर्बाहुभिरंकुशासिलतिके पाशं तथा खेटकम् ॥

अथ उच्छिष्ट मातंगी-

" अथोच्छिष्टां प्रवक्ष्यामि मातंगीं गोकुवर्णकाम् ।
नम उच्छिष्ट चाण्डालि मातंगीति पदंवदेत् ॥
सर्ववशंकरि स्वाहा मन्त्रोऽयं मोहयेज्जगत् ।
छन्दोनिचृत् सगायत्रं मुनी नारदतुम्बुरौ ॥
देवता चात्र मातंगी द्वित्रित्रित्रिरसाक्षिभिः ।
अङ्गानिस्युर्मंत्रवर्णैस्ततो ध्यायेद्धृदम्बुजे ॥

अस्या ध्यानम्-

" कृष्णाम्बरां यावकार्द्रचरणामुन्नतस्तनीम् ।
मुक्ताप्रवालमालयाढ्यां शंखकुंडल धारिणीम् ॥

अथ संमोहिनी मातंगी-

" अथान्यं संप्रवक्ष्यामि मातंगी मन्त्रमद्भुतम् ।
कामिनी रञ्जिनी स्वाहाऽष्टाक्षरोऽयमुदीरितः ॥
ऋषिः समोहनश्छन्दो निचृत् प्रोक्ताऽस्य देवता ।
सर्वसंमोहिनी चाङ्गं द्विराभृशिपदैर्भवेत् ॥ "

अस्या ध्यानम्-

" श्यामाङ्गीं वल्लकीं दोर्भ्यां वादयन्तीं सुभूषणाम् ।
चन्द्रावतंसां विविधैर्गायनैर्मोहतीं जगत ॥ "

लघुश्यामा (मातंगी)का मन्त्रमहोदधि में इसप्रकार लिखा है -

" लघुश्यामामथो वक्ष्ये स्मरणादिष्टदायिनीम् ।
वाग्बीजं हृदयंकर्णे एकनेत्रः सनेत्रकः ॥
वृषोमुकुन्दमारूढोक्रूर्मो दीर्घेन्दुसंयुतः ।
नन्दी दीर्घोलिमातंगी सर्वान्ते स्याद्वशंकरि ॥
वैश्वानरप्रियान्तोऽयं मन्त्रो विंशति वर्णवान् ।
मदनोस्यमुनिः प्रोक्तो गायत्री निचृदादिका ॥
छन्दो देवी लघुश्यामा बीजं वाग्वह्निवल्लभा ।
शक्तिरुक्ताखिलाभीष्टशाधने विनियोजनम् ॥
ताराद्यान्नमसा युक्तान्मूलवर्णान्सबिन्दुकान् ।
न्यसेत्सन्धिषुसाग्रेषु करयोः पादयोरपि ॥ "

अस्या ध्यानम्-

" माणिक्याभरणान्वितां स्मितमुखीं नीलोत्पलाभांवपुः ।
रम्यालक्तकलिप्तपादकमलां नेत्रत्रयोल्लासिनीम् ॥
वीणावादनतत्परां सुरनुतां कीरच्छदश्यामलाम् ।
मातंगीं शशीशेखरामनुभजेत्ताम्बूलपूर्णाननाम् ॥ "

अस्या यन्त्रोद्धारम्-

" त्रिकोण पंचकोणाष्टदलषोडशपत्रके।
वेदद्वारधरागेहावृत्तेयन्त्रे विधानतः ॥"

अस्यावरणपूजा-

" देव्याअग्रे पार्श्वयोश्चतिस्त्रोर्चेद्रतिपूर्विकाः ।
इच्छाज्ञानक्रियाशक्तीः कोणेष्वग्रादिषुत्रिषु ॥
बाणान्पंचसुकोणेषु केसरेष्वंगदेवताः ।
माह्माद्या अष्ट पत्रेषु पत्राग्रेष्वणिमादिकाः ॥
भूगृहस्य चतुर्दिक्षु योगिनीः परिपूजयेत् ।
गजानना सिंहमुखीगृध्रास्याकाकतुण्डिका ॥
उष्ट्रग्रीवा हयग्रीवावाराहीशरभानना ।
उलूकिका शिवारावामयूरी विकटानना ॥
अष्टवक्त्राकोटराक्षी कुब्जा विकटलोचना
समर्चयेद्दिशिप्राच्यामेताः षोडशयोगिनीः ॥
शुष्कोदरीललज्जिह्वाश्वदंष्ट्रावानरानना ।
ऋक्षाक्षीकेकराक्षी च बृहत्तुण्डा सुराप्रिया।
कपाल हस्तारक्ताक्षी शुकीश्येनीकपोतिका ।
पाशहस्ता दण्डहस्ता प्रचण्डेत्यपि षोडश ॥
पुज्याकीनाशदिग्भागे प्रतीच्यां चण्डविक्रमा।
शिशुघ्नी पापहन्त्री च काली रुधिरपायिनी ॥
वसाधयागर्भभक्षा शवहस्तांत्रमालिनी ।
स्थूलकेशी बृहत्कुक्षीः सर्पास्या प्रेतवाहना ॥
दंदशूककराक्रौंची मृगशीर्षेतिषोडश ।

संपूज्या उत्तरस्यांतु षोडशैववृषानना ॥
व्याघ्रास्याधूम्रनिः श्वासाव्योमैकचरणोर्ध्वदृक् ।
तापनी शोषणीदृष्टिः कोटरी स्थूलनासिका ॥
विद्युत्प्रभा बलाकास्या मार्जारी कटपूतना ।
अट्टाट्टहासा कामाक्षेत्यर्चनीया अभीष्टदाः ॥
नश्यन्ति भूतशाकिन्य आसांनामश्रुतेरपि ।
भूमन्दिरस्यकोणेषु वन्ह्यादिषु यजेत्क्रमात् ।
स्वस्वमन्त्रेण वटुकं गणेशं क्षेत्रपालकम् ।
दुर्गां तद्बहिरिन्द्रादीन्वज्रादीनपिपूजयेत् ॥
भूगृहस्य चतुर्दिक्षु चतुर्वाद्यानिपूजयेत् ।
ततास्संज्ञं च विततं धनं च सुषिराभिधम् ॥
द्वादशावरणै रेवं लघुश्यामां यजेत्तुयः ।
सर्वासां संपदां पात्रमचिराज्जायतेसना ॥"

(उपरोक्त सकल मातंगी के भेद दक्षिणाम्नात्मक हैं। अब पश्चिमाम्नायोपासिता मातङ्गी के भेदों का वर्णन करता हूँ) (४८)

अब राजमातंगी के विषय में मेरुतन्त्र में लिखा है :

" अथान्यं संप्रवक्ष्यामि चतुष्पंचाशदक्षरम् ॥
ॐ ह्रीँ नमश्च ब्रह्मश्रीराजिते राजपूजिते ॥
जये च विजये गौर्यंबे गान्धारिपदं वदेत् ।
त्रिभुवनवशंकरि सर्वस्त्रीपुरुषेति च ॥
वशंकरि सुसु दुदु घेघे वावाऽग्निगेहिनी ।
अजो मुनिस्तथा छन्दो निवृद्गायत्रमीरितम् ॥
देवता राजमातंगी षडङ्गादितु मायया ॥ "

अस्या ध्यानम्—

" अमृतोदधिमध्यस्थे रत्नद्वीपे मनोहरे ।
स्वर्णप्राकारसंवीते मणिरत्नविनिर्मिते ॥
कदम्बविल्वकह्लारे कल्पवृक्षोपशोभिते ।
वेदिमध्ये सुखास्तीर्णे रत्नसिंहासने शुभे ॥
तस्यमध्ये सुखासीनां श्यामवर्णां शुचिस्मिताम् ।
कदम्बमालाभरणां पूजितां च सुरासुरैः ॥
प्रलम्बालकसंयुक्तां चन्द्ररेखावतंसिकाम् ।
ललाटे तिलकोपेता मीषत्प्रहसिताननाम् ॥
किञ्चित्स्वेदाम्बुमधुरललाटफलकोज्वलाम् ।
वली तरङ्गमध्यभां रोमराजीविराजिताम् ॥
सर्वाभरणसंयुक्तां मुक्ताहारविभूषिताम् ।
नानामणिगणाबद्धकटिसूत्रैरलङ्कृताम् ॥
वलयैः रत्नखचितैः केयूरै र्मणिभूषितैः ।
भूषितांङ्घ्रिभुजां वालां मदघूर्णितलोचनाम् ॥
आपीनमण्डलाभोगसमुन्नतपयोधराम् ।
प्रलम्बवर्णा भरणां कर्णोत्तंसविराजिताम् ॥
तमालनीलां तरुणीं मधुमत्तां मतङ्गिनीम् ।
चतु. षष्टिकलारूपां पार्श्वस्थशुकसारिकाम् ॥
कोटिवालार्कसंकाशां जपाकुसुम सन्निभाम् ।
एवं वा पीतवर्णाचां ध्यायेन्मातङ्गिनीं पराम् ॥

अस्या यन्त्रम्—

" अष्टपत्रं महापद्मं केशराढ्यं सकर्णिकम् ।
तन्मध्येतु त्रिकोणं स्यादष्टपत्रं ततो वहिः ॥

पुनः षोडशपत्रं स्यात् तद्वाह्ये स्याच्चतुर्दलम् ।
वेदाश्रं सचतुर्द्वारं मण्डलं प्रोक्तमुत्तमम् ॥"

अथ वश्यमातंगी तत्रैव—

" अथातः सं प्रवक्ष्यामि वश्यमातंगिकामनुम् ।
ॐ राजमुखि राजाधिमुखि वश्यमुखीति च ॥
मायां श्रीं क्लीं देवदेवी महा[illegible]त्र ततो वदेत् ।
देवाधिदेवि सर्वान्ति जनस्य मुखमुखान् ॥
मम वशं कुरु द्वन्द्वं स्वाहान्तोऽगजतार्णकः ।
द्विक्सप्तकृतदेवेषुमन्त्रार्णैरङ्गकल्पनम् ॥
विज्ञेयं राजमातंगीतुल्यं पूजा जपादिकम् ।
प्रयोगांश्चापि जानीयाद्विशेषाद्वश्यकृत्यियम् ॥"

अथ चण्डमातंगी तत्रैव—

" माया नमो हिलिद्वन्द्वं चण्डमातंगिनीति च ।
स्वाहेति तिथिवर्णोऽस्या न्यासपूजादिकं भवेत् ॥
राजमातंगिकातुल्यं जपश्चायुतसंख्यकः ।
घृतपायसहोमश्च प्रयोगाद्यं च पूर्ववत् ॥"

अथ कर्णमातंगी तत्रैव—

" अथातः संप्रवक्ष्यामि कर्णमातंगिकामनुम् ।
वाग्भवं हृदयं चाथ श्रीमातंगिपदं वदेत् ॥
अमोघे सत्यवादिनि मम कर्णे पदं ततः ।
अवतरपदं द्वेधा सत्यं कथय युग्मकम् ॥
एह्येहि श्रीं च मातंग्यै नमस्त्र्यब्ध्यर्णकोमनुः ।

अङ्गानि वाग्भवेनात्र पूजाद्यं च कृताकृतम् ॥
लक्षं जपः पायसाद्यैः होमः सिद्धो भवेन्मनुः ।
कर्णेतु कथयेद्देवी पृच्छकस्य शुभाशुभम् ॥

इन सब भेदों का पश्चिमाम्नाय से उपासना होता है । अब छओं आम्नाय से उपासिता सुमुखी मातंगी के मन्त्र ध्यान। गुह्यातन्त्र में ऐसे हैं ।

" शृणु मन्त्रं महादेवी यथावत्कथयामिते ।
दद्यादुच्छिष्टशब्दं तु तथा चाण्डालिनीति च ॥
सुमुखीति ततो देवीं कीर्तयेत् तदनन्तरम् ।
महापिशाचिनी तस्मान्मायाबीजमनन्तरम् ॥
विन्दुनादसमायुक्तं ठकारत्रितयं ततः ।
सविसर्गं महादेवि सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥
अजो मुनीः समाख्यातश्छन्दोगायत्रमस्यतु ।
देवता सुमुखी प्रोक्ता मायया तु षडङ्गकम् ॥ "

अस्या ध्यानम्—

" शवोपरिसमासीनां रक्ताम्बरपरिच्छदाम् ।
रक्तालंकारसंयुक्तां गुञ्जाहारविभूषिताम् ॥
षोडशाब्दां च युवतीं पीनोन्नतपयोधराम् ।
कपालकर्त्रिकाहस्तां परज्योतिः स्वरूपिणीम् ॥
वामदक्षिणयोगेन ध्यायेन्मन्त्रविदुत्तमः ॥ "

अब तारा का यन्त्र और आवरणपूजा तारा के वर्णन में साथ साथही देना था परन्तु मैं भूलगया । अतः क्षमा याचना

कर यहां दक्षिणाम्नायोपसिता ताराविद्या के यन्त्रका वर्णन करता हूँ । फेत्कारीयतन्त्र में ऐसा है ।

" अष्टपत्र लिखेत् पद्मं त्रिकोणोज्वलकर्णिकाम् ।
मायां पूर्वदलेऽस्य याम्ये बीजं द्वितीयकम् ॥
तथोत्तरे पश्चिमे च फट्कारं विलिखेत्ततः ।
मध्ये बीजं लिखित्वा तु पूजये त्तारिणीं पराम् ॥

अस्यावरणपूजा—

" गणेशं पूर्वद्वारे तु वटुकं दक्षिणे ततः
क्षेत्रपालं पश्चिमे च योगिनीमुत्तरे यजेत् ॥
गुरुपंक्तिर्गान् त्रिकोणे च कोणाग्रेषु षडङ्गकाः ।
एकजटां च हृदये शिरसि तारिणीं यजेत् ॥
वज्रोदकां शिखायां तु कवचे चोग्रतारिणीम् ।
महापरिसरां चैव नेत्रेषु जटां पिंगोग्रपूर्विकाम् ॥
दिक्षु शिखायामक्षोभ्यं पुनरष्टदलेक्रमात् ।
पूर्वे वैरोचन याम्ये असिताभञ्च पश्चिमे ॥
पद्मनाभं चोत्तरेतु शंखपाण्डुरमीशके ।
नामकमग्निकोणे च मामकं च समर्चयेत् ॥
नैर्ऋत्यां पाण्डुरं चैव वायव्यां तारकं यजेत् ।
पुनर्भूगृहद्वारेषु क्रमात् पद्मान्तकं ततः ॥
जन्मान्तकं प्रपूज्याथ जन्मान्तक मतः परम् ।
मरकान्तकमभ्यर्च्य दिक्षु दिक्पालकान् क्रमात् ॥
तेषामस्त्राणि तद्बाह्ये पूजयेद्दत्तपुष्पकैः ॥

अब दक्षिणाम्नायात्मक रुद्रभैरवों के विषय में लिखता हूँ ।

कार्तवीर्य दक्षिणाम्नायात्मक हैं। उनका उपासना विशेषतः पाशवकल्पसे ही करना होगी। उन के मन्त्र ध्यानादि के विषय मे मन्त्रमहोदधि में लिखा है—

" अथेष्टदान् मनून् वक्ष्ये कार्तवीर्यस्य गोपितान्।
यः सुदर्शनचक्रस्यावतारः क्षितिमण्डले ॥
वह्नितारयुतारौद्रीलक्ष्मी रत्नीन्दुशान्तियुक् ॥
वेदाधरेन्दुशान्त्याढ्यो निद्रार्घीशान्तिविन्दुयुक्।
पाशोमायांकुशंपद्मावर्मास्त्रेकार्तवोपदम् ॥
रेफोवाय्वासनोनन्तो वह्निजौकर्णसंस्थितौ ॥
मेपः सदीर्घः पवनो मनुरुक्तो हृदन्तिकः।
ऊनविंशतिवर्णोयं तारादिर्नखवर्णकः ॥
दत्तात्रेयोमुनिश्चास्यच्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ।
कार्तवीर्यार्जुनोदेवोवीजंशक्तिध्रुवश्चहृत् ॥
शेषाद्यवीजयुग्मेनहृदयं विन्यसेद्बुधः ।
शान्तियुक्चतुर्थेनकामाढेयनशिरोगकम् ॥
इन्द्राढ्यवामकर्णाढ्यमाययार्वीशयुक्तया ॥
शिखामंकुशपद्माभ्यां सवाग्म्यांवर्मविन्यसेत् ।
वर्मास्त्राभ्यामस्त्रमुक्तंशेषार्णैर्व्यापकं चरेत् ॥
हृदये जठरे नाभौ जठरे गुह्यदेशके ॥
दक्षपादे वामपादे सक्थिजानुनि जंघयोः ।
विन्यसेद्वीजदशकं प्रणवद्वयमध्यगम् ॥
ताराद्यान्नवशेषार्णान्मस्तके च ललाटके ।
भ्रुवोः श्रुत्योस्तथैवाक्षणोर्नसिवक्त्रेगलेसके ॥

सर्वमंत्रेण सर्वांगे कृत्वा व्यापकमद्वयः ।
सर्वेष्टसिद्धये ध्यायेत्कार्तवीर्यं जनेश्वरम् ॥"

अस्य ध्यानम्,

" उद्यत्सूर्यसहस्रकान्तिरखिलक्षोणीधवैर्वंदितो ।
हस्तानां शतपंचकेनचदधच्चापानि पूंस्तावता ॥
कण्ठेहाटकमालयापरिवृतश्चक्रावतारो हरेः ।
पायात्स्यंदनगोरुणाभवसनः श्रीकार्तवीर्योनृपः ॥

(फिर शरभेश्वर भी दक्षिणाम्नायात्मक हैं। उनका, शिर का भावना किया जाएतो पाशवकल्प से और भैरव का भावना कियाजाए तो वीर तथा कुलकल्प से उपासना होता है। इन के मन्त्र ध्यानादि मेरुतन्त्र में इस प्रकार हैं।)

" ॐ खँ खाँ खँ फडुच्चार्य द्विः प्राणान् ग्रसतीति च।
हुँ फट् सवशस्त्रसंहरणाय शरभेति च॥
शाल्वाय पक्षिराजाय हुँ फट् स्वाहान्तकोमनुः।
एकचत्वारिंशदर्णो वासुदेवो मुनिस्मृतः ॥
कालाग्निरुद्रः शरभो देवता परिकीर्तितः ।
छन्दस्तु जगती स्वाहा शक्तिर्बीजं खमुच्यते ॥
वेदषट्सप्तनवषएणवर्णै रङ्गकल्पनम् ॥"

अस्य ध्यानम्—

" चन्द्रार्काग्निस्त्रिनयनं कालीदुर्गाद्विपक्षकम् ।
" विद्युज्जिह्वं वज्रनखं वडवाग्न्युदरं तथा ॥
व्याधिमृत्युरिपुघ्नं च चण्डवातातिवेगिनम् ।

इन्द्रै रवस्वरूपं च वरिवृन्दनिषूदनम् ॥
मृगस्त्वर्धशरीरेण पक्षाभ्यां चञ्चुना द्विजः ।
अधोवक्त्रश्चतुष्पादस्तूर्ध्ववक्त्रश्चतुर्भुजः ॥
कालान्तदहनप्रख्यो नीलजीमूतनिःस्वनः ।
अरिर्यद्दर्शनादेव विनष्टवलविक्रमः ॥
सटाच्छटोग्ररूपाय पक्षविक्षिप्तभूभृते ।
अष्टपादायरुद्राय नमः शरभमूर्तये ॥"

दक्षिणाम्नाय की नायिका निर्वाण दक्षिणकाली हैं । दक्षिणाम्नाय में शिव अघोर रुप में हैं । उन के मन्त्र ध्यानादि यह हैं:-

"ॐ अघोरेभ्यऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररूपेभ्यः सर्वतः सर्वसर्वेभ्यः ।"

अस्य ध्यानम्—

"कुठारखेटाङ्कुशपाशशूल-
कपालढक्कास्त्रगुणान्दधानः ॥

चतुर्मुखो नीलरुचि स्त्रिनेत्रः ।
पायादघोरो दिशि दक्षिणस्याम् ॥"

परातन्त्र में जिन दक्षिणाम्नायात्मिका विद्याओं का वर्णन किया है, उनमें से बहुत सी विद्याओं का वडवानलतन्त्र में भी वर्णन किया है, जो मैंने उपर दिया है । इन के अतिरिक्त जिन विद्याओं का प्रसङ्ग परातन्त्र में है, वे मुझे मालूम नहीं हैं। परातन्त्र में "सिंही" संज्ञा जो दीहै, वह नारसिंही है; और 'चण्डी' संज्ञा जो दी है, वह चण्डिका है इन दोनों विद्याओं

का विवरण यहाँ नहीं दियाजायेगा । पीछे अष्टमातृका के विवरण में दूँगा । उग्रचण्डा को परातन्त्रने दक्षिणाम्नायात्मिका बताया है, परन्तु मैं ने उसे पूर्वाम्नाय के विवरण में षडाम्नायात्मिका बताया है । उपाम्नाय याने ईशानाम्नाय, आग्नेयाम्नाय तथा वायव्याम्नाय की नायिकाओं-महाकाली, महालक्ष्मी तथा महारस्वती को उपाम्नायका अनधिकारी लोग उत्तराम्नाय, दक्षिणाम्नाय तथा पश्चिमाम्नाय से उपासते हैं। इसलिए उग्रचण्डा अष्टादशभुजी सप्तशती-वर्णित महालक्ष्मी के ही रुपान्तर होने के कारण परातन्त्र ने उनको दक्षिणाम्नायात्मिका बताया है । उग्रचण्डा का महामन्त्र द्वात्रिंशाक्षरात्मक हैं उस मन्त्र के दो भेद हैं एक में 'रणमर्दिनि' पद और दूसरे में 'रिपुमर्दिनि' पद विद्यामान हैं । इस मन्त्र का श्लोकरुप में उद्धार मेरे पास नहोने के कारण मैं यहाँ देनेको असमर्थ हुं । इनके मूलमन्त्र में जिस अवस्था में "रिपुमर्दिनि' संबोधन होगा, उस में यहविद्या महालक्ष्म्यात्मिका बनकर दक्षिणाम्नायोपासिता होगी । मतान्तर में इनको तुलजाभवानी मानकर पश्चिमाम्नाय से भी उपासना होता है । फिर जिस अवस्था में इनके मूलमन्त्र में 'रणमर्दिनी संबोधन होगा, उस में यहविद्या दुर्गारुप रणचण्ड्यात्मिका बनकर छओं आम्नायों से उपासिता होगी । नवरात्र महायाग-पद्धति में उग्रचण्डाका ध्यान इसप्रकार का है—

"उग्रचण्डां महादेवीं ध्यायेद्भगवतीं शिवाम् ।
तप्तचामीकरावर्णां नानापुष्पोपशोभिताम् ॥
दिव्यवस्त्रपरीधानां सिंहासनगामिनीम् ।

किरीटकुण्डलाकारैः केयूरैर्मणिनूपुरैः ॥
रत्नमालाविचित्रैश्च हारमालोपशोभिताम् ।
अष्टादशभुजाक्रान्तां पीनवक्षस्तनोरुहाम् ॥
सर्वालंकारसंयुक्तां तडित्कोटिसमप्रभाम् ।
खड्गं शरस्तथा चक्रं वज्रांकुशधरां शुभाम् ॥
वरदां डमरुहस्तां शूलपात्रसुशोभिताम् ।
पाशं तर्जनिहस्तां च खट्वाङ्गं केशपपाशकम् ॥
बिन्दुमुद्रा तथा सिद्धिसिंहासनोपरिस्थिताम् ।
अधस्थित्वा शिरश्छिन्न महिषं च महासुरम् ॥
तद्ग्रीवा निर्गतं दैत्यं महाबलपराक्रमम् ।
भेदयन्तीं त्रिशूलेन विधृतास्य शिरोरुहा ॥
एवं ध्यात्वा महादेवीं सर्वकाम फलप्रदाम् ।

यह विद्या अतीव गोपनीया है। फिर यह विद्याशीघ्रफलप्रदा। तथा इनके संबन्धी कर्मों में तनिक भी त्रुटीहोगी तो विघ्न पड जाने का बहुत संभावना है। अतः इनका उपासना बडी ही सावधानी से होगा तो राज्यलाभ, शत्रुविजय तथा आयुरारोग्यैश्वर्य प्राप्तकर राष्ट्र की रक्षा होगी। विशेषतः राजन्य के लिए यह विद्या अत्यावश्यक है जिस के प्रभाव से हमारे नेपाल एव छोटा राज होकरभी अद्यावधिः स्वतन्त्र है, फिर हम गोर्खाली लोग लोक प्रसिद्ध योद्धा बनरहे हैं। इस विद्या के मन्त्र, यन्त्र और आवरणपूजा में यहां देने की साहस नहीं करसकता हूँ। अतः स्वगुरुवक्त्र से जानने का कष्टकर मुझे क्षमा प्रदान करें

अन्य जम्भिनी आदि जो विद्यायें परातन्त्र ने बताई है, उस

विषय में मुझे ज्ञान नहीं है, क्योंकि मेरी गुरुपरम्परा विशेषतः भक्त्यानलतन्त्र केही आधार पर है।

दक्षिणाम्नाय के विषय में मुझे जो अल्पज्ञान है, वह मैं लिख चुका। तन्त्रशास्त्र अगाध है। दक्षिणाम्नाय के बहुत भेद और भी हो सकते है, परन्तु मुझे इतना ही ज्ञात है। इस में भी जहाँ तक प्रमाण देने योग्य है, वहाँतक मैंने प्रमाण दे दिया है इससे अधिक प्रमाण कोई पाठक जानना चाहें तो उन्हें अपने गुरु-मुख से वा स्वयं ही सब मन्त्रो का तथा ध्यानों का अर्थ विचार करके आम्नायों का भाग-विभाग करके देख लेने से स्पष्ट प्रमाण मिलजायेगा। मैं तो मन्त्रों का अर्थ देकर बीजों का आम्नायों का भाग विभाजन करके देनेकी साहस नहीं कर सकता। मुझे गुरुबनने का अधिकार नहीं हैं। इसी से उसका लालच भी नहीं है। यह लेख केवल जिज्ञासु लोगों के सहायक रूप से लिखा हैं। इससे अधिक प्रमाण तो गुरुमुख से ही जानलेना चाहिये हाँ, भाग्यवश किसी जिज्ञासु के साथ मेरीभेट यदि हुई तो उसकी योग्यता के अनुसार याने उसने अपने गुरुसे जितना तक मन्त्र ग्रहण किया है, उसके विषय में कुछकुछ यथाज्ञान सलाह दे सकूँगा परन्तु पत्रद्वारा नहीं। जिसकी जो विद्या है, उसका अङ्गतक यथामति पूर्णकरादेसकता हूं, यदि वह विद्या मुझे विदित हुईतो। तन्त्रशास्त्र केवल शाक्तों के लिये नहीं हैं अपितु गाणपत्य, सौर, शैव तथा वैष्णवों के लिए भी है। गाणपत्य और सौर के विषय में मुझे विशेष ज्ञान नहीं हैं। शाक्त, शैव तथा वैष्णव भाइयों से मेरा कभी सत्सङ्ग होगा तो परस्पर कुछ रहस्यों के सीखने का अवसर मिलेगा परन्तु ...

वारम्वार यह प्राथना हैकि मैं गुरुवननेका अनधिकारी हूँ। मै तो केवल उपासक भाइयों के प्रेमका लालची हूँ। मेरी दृष्टिमें धनाढ्य और भिखारी समहैं। यदि भक्तिमान् उपासक होगा तो वह मेरा परम मित्र होगा। शाक्त, शैव तथा वैष्णव जो भी हो परन्तु अन्यमत का द्रोही नहो। उदाहरण के लिए लोक प्रसिद्ध श्यामाकाली के ध्यानका संक्षेपतः अर्थकर उनके मन्त्रार्थ के साथ किसप्रकार ऐक्य है वह देखानेकी चेष्टा करूँगा। अब आप समझिए कि आप श्यामाकालीका चित्र देखरहे है। सबसे प्रथम आप देखते है कि शिव शवरुप बनरहें हैं और उनके उपर श्रीजगदम्वा खड़ी हैं। अब इस सें यह बोधहुआ कि शिव का चैतन्यरुप निकलगया और शिव इ कार रहित शव बनगये तो वह श्यामाकाली ब्रह्मचैतन्यरूपिणी हैं फिर श्यामा श्यामवर्ण वाली हैं और अनेकों वर्ण श्यामवर्णमें विलीन हो जाते हैं इसलिए श्यामवर्ण चिदाकाश तथा शून्यका सूचक हैं। इससे विदित होता है कि श्यामाकाली अरूपा केवल सत्तामात्र हैं उनके मुक्तकेशका सूचना यह हैं कि वह केशविन्यासादिविला सविकाररहिता अतः निर्विकारा हैं।

घोरदंष्ट्रों से ललजिह्वाको दवारखी है। सफेद दंष्ट्रों रुप सत्व गुणसे रक्त तथा चञ्चल जिह्वारूप रजोगुणको दवाके गुप्त रुधिरधारा वह फेंकरही हैं। इस से वह रजोगुणरहित शुद्ध सत्वात्मिका अतः विरजा हैं। यह अर्थ का पष्टीकरण होता है वस्त्र मायावरण है उससे रहित नग्नावस्था खं श्यामाकाली मायातीता रुप दर्शाते हैं। पञ्चाशत मुण्डरुप पञ्चाशत् वर्ण का माला धारण कररही हैं इससे वह नादरवरूपिणी नादब्रह्म

त्मिका हैं। शव की भुजाओं का हार कटिदेश में बाँधरखी हैं। सफल मनुष्य भुजासे कर्म करते है. इसलिए भुजायें कर्म के सूचक हैं। सव जीव कल्पावसान में स्थूलदेहको त्यागकर स्व-स्वकर्म के साथ लिंगदेह ग्रहणकर विराड्रूपिणी महादेवी के गर्भ में रहते हैं। अतएव कालका भी कालस्वरुपिणी कालमालिनी की सूचना हुई। फिर वामहस्तस्थित ज्ञानरुप खड्गसे निष्कामसाधकों के मोहपाश का छेदनकर तदधोहस्तस्थ विगतरज तत्वज्ञाना धार मस्तक है। वैसा ही दक्षोर्ध्व हस्त से अभयदान तथा अधो हस्त से वरदान कासुचक है। एवं प्रत्येक अङ्गप्रत्यङ्गसे निर्गुण सूचना मिलती है। वैसाही मन्त्रार्णे का भी प्रत्येक अक्षर तथा मात्रा से निर्गुण सुचना प्राप्त होती है। जैसाकि कूर्चबीज ज्ञानबोधक तथा श्यामा की वाम दो भुजायें भी ज्ञानबोधक हैं। फिर मायावीज प्रकृतिबोधक तथा श्यामाकी दक्ष दो भुजायें भी प्रकृति बोधक हैं। और कालीबीज ब्रह्मसत्ताके वोधक तथा श्यामा की मूर्ति भी ब्रह्मसत्ता सुचक है। इनही ३ बीजों से श्यामाका त्र्यक्षर मन्त्र बनता है। अतः मन्त्रार्थ और ध्यानार्थ में अभेद है। देखिए. हिन्दू, ईसाई, मुसलमान इत्यादि अनेक धर्म जैसे प्रतीत होते हैं। परन्तु केवल रास्ते के भेद हैं, लक्षतो एक ही हैं। दया, स्वार्थत्याग, समभाव तथा परोपकार द्वारा अपने आत्माको शोधन कर निराकार, निर्लेप और एक-रस रुप ब्रह्म, गड् अथवा खुदा जो कहिए उसमें विलीन हो जाना सवका परम धर्म है। हमलोग कालीबीज जपते हैं, मुसलमान लोग वही बीजका रुपान्तर "करीम्" जपते हैं। हमलोग मायाबीज जपते हैं वे लोग 'रहीम्' जपते है। फिर इतिहास की बातका स्मरण करें कि कबीरजी कौन थे। अतः शाक्त, सौर

गाणपत्य, शैव, वैष्णव तथा बौद्धों की बाततो दूरही रहे ईसाई तथा मुसलमान जैसे विभिन्न धर्मों का द्वेष करना महापातक है। सब अपनी अपनी मुक्तिका साधन कर रहे हैं। अब इतने में ही यह पटल समाप्त करता हूँ। दूसरे पटल में पश्चिमाम्नायका विवरण देने की चेष्टा करूँगा।)

(गोरक्षनाथ भी दक्षिणाम्नायात्मक है उनके मन्त्रों ४ हैं। प्रणव, माया, श्री, कूर्च, अस्त्रतथा ठद्वय यह प्रथम मन्त्र। प्रणव, माया तथा श्रीउच्चारणकर "गों गोरक्ष" कहकर पूर्ववत् कहे यह द्वितीय मन्त्र। द्वितीयवत "गोरक्ष" तक उच्चारणकर फिर कूर्चद्वय उच्चारणकर "निरञ्जनात्मने" कहकर पूर्ववत कहे। प्रणव, गोँ, माया, हूँ ह्राँ, गोरक्षनाथाय निरञ्जनात्मने हूँ सँ फट् हंसः॥

इनका श्लोकरूप मन्त्रोद्धार मेरे पास न होने के कारण मन्त्र पूर्वप्रकार से दियाहूं। इन चारों का ही न्यास इस प्रकार का हैः-

गोरक्षनाथ मन्त्रस्य बृहद्वारण्यको मुनिः।
छन्दोऽनुष्टुप्देवता च नाथो गोरक्षसंज्ञकः॥

ध्यानम्:—

शुद्धस्फटिकसंकाशो जटाजूटी त्रिलोचनः।
निरञ्जनो निराकारो निर्विकल्पो निरामयः॥

इति श्री धनशम्शेर वर्मणा संग्रहित श्रीतान्त्रिकोपासनादर्पणे दक्षिणाम्नायविवरणन्नाम चतुर्थः पटलः॥

—*०*—



श्री कुब्जिका

॥ अथ पञ्चम पटल: ॥

॥ ॐ नमः श्रीपरदेवतायै ॥

अथ इस पटल में पश्चिमाम्नायका विवरण लिखता हूँ। पश्चिमाम्नाय के गणेश का भेद बहुत है। उन में से मेरी गुरु परम्परा में "विघ्न गणेश" है। उन के मन्त्र ध्यानादि ऐसा है, मेरुतन्त्र में:-

"अथातः संप्रवक्ष्यामि पश्चिमाम्नायसिद्धिदान् ।
नानाश्चर्यकरान् काशीसंस्थितान् गण नायकान् ॥
महागणपते रंशाश्चतुः षष्टि विनायकाः ।
एकै कान्ते गृहीत्वातु योगिनीं चेटिकामपि ॥
स्वर्णभूमिं समासाद्य यावदन्तगृहं मम ।
अष्टावरणकैरष्टौ संस्थिताः सिद्धिदायका ॥
तत्राष्टौ काशिकाबाह्ये स्वर्गभूमौ समास्थिताः ।
योजनैकं वहिः काश्यां कीर्तितः परिधिस्तु सः ॥
गँ विघ्नाय नमः प्रोक्तो मन्त्र एव षडक्षरः ।"

न्यासम्–

"ऋषिर्गणक आख्यातश्छन्दः प्रोक्तं विराडिति ।
देवताकथितो विघ्नगणेशो भगवान् प्रिये ॥
षड्दीर्घभाजा बीजेन कुर्यादङ्गक्रियां मनो ॥

ध्यानम्—

" पाशाङ्कुशौ कल्पलतां विषाणम् ।
दधत् सतुण्डाहितबीजपूरः ॥
रक्तस्त्रिनेत्रस्तरूणेन्दु मौलि—
हारोज्ज्वलो हस्तिमुखोऽवताद्वः ॥

(अब पश्चिमाम्नाय का शक्तियों का वर्णन करता हूं ।)

वडवानलतन्त्र से लिखा है:-

" बहुप्रभेदसंयुक्ता कुब्जिका च कुलालिका ।
मातंग्यमृतलक्ष्म्याद्याः पश्चिमाम्नायदेवताः ॥ "

फिर परातन्त्र में लिखा है:—

" तत्रैव बहुभेदास्ति कुब्जिका कुलमार्गगा ।
विभिन्ना सिद्धिनाथेन श्रीनाथेनावतारीता ॥
कुजेशनाथवीरेण कुजाम्नायः प्रकाशिता !
नवात्मा श्रीशिखानाथः स्वच्छन्दललितेश्वरः ॥
क्रमेशी च त्रिखण्डा च महत्तारि त्रिखण्डिका ॥ "

(कुब्जिका का मूलमन्त्र द्वात्रिंशाक्षरी है और द्वात्रिंशद् ही भेद हैं । उन में से कुब्जिका समया जिनको कुलालिका भी कहते हैं उनका वर्णन करता हूं । यह विद्या केवल कुब्जिका नाम से ही प्रसिद्ध है।) इनके मन्त्रध्यानादि के विषय में कुलालिकाम्नायतन्त्र में लिखा है:-

श्री कुब्जिकोवाच ।

" कथं तु लब्धिकानाथ वदमन्त्रपदान्वितान् ।
सर्वज्ञां सर्वदा देव लक्षणेन समन्वितान् ॥

उवाच भैरवो ह्येवं लब्धिकां शृणुलब्धिके ।
किन्तु त्वया नवक्तव्या यावन्नार्द्दर्शितः शिशुः ॥
च्चैवीति प्रथमं पदं णिकिणिकिद्वितीयकम् ।
च्रीँ छाँ पदं तृतीयं च खिमुरायोश्च चतुर्थकम् ॥
मेनणजङेति पञ्चमं स्हौँ स्हाँ स्हीँ षष्ठकं पदम् ।
यैंफाव्जिकुश्री सप्तमं त्यैंवगभमोनाष्ट मम् ॥
एषा सा समया देवी द्वात्रिंशाक्षरमालिनी ।
पञ्चप्रणवमाद्यन्तनियुक्ता लक्षणान्विता ॥
आदिकूटावसाने च द्विचत्वारिंशमालिनी ।
विलोमेनोच्चरेद्देवि गुरुवक्त्रोपदेशतः ॥
रेफसहमिदं कूटं विद्यायाः सप्तमं स्मृतम् ।
श्रीलोपे सन्नियोक्तव्यं जीवितं कुब्जिके मम ॥
स्वमनीपिकातोऽन्यथा सविद्विष्टो मरीचिभिः ।
गुप्तं गुप्ततरं कार्यं योगिनीहृदयनन्दनम् ।
यस्माद्रस्मारमित्येवं सर्वस्वं योगिनीकुले ।
अथ चेत् सर्वपीठेषु मातेयं समयात्मिका ॥
अस्याः स्मरणमात्रेण विह्वलं तु जगत्त्रयम् ।
जायते नात्र संदेह इति माता सुरक्षिता ॥
हृदयाद्यस्त्रपर्यन्तमेकोच्चारेण सुव्रते ।
सिद्धिमार्गे यथा ब्रूमि विलोमेन विलोमतः ॥ "

(इस कुलालिकाम्नाय तन्त्र में विशेषतः कुब्जिका विद्या का ही वर्णन है । और उनके मन्त्रन्यासादि अति गुप्त प्रकार से दण्डक में तथा छन्दभंगादि श्लोकों में प्रायशः दृष्टि गोचर होते हैं। कुब्जिका विद्या में ऋष्यादिन्यास तथा विनियोग बहुमत

में नहीं है। केवल संकल्प से विनियोग का काम होत इन के ३२ भेदों में न्यास तथा ध्यान एक ही है। परन्तु मन्त्रों में जितने भेद हैं उनके भैरव कुब्जिकेश्वर के मन्त्र उतने ही भेद हैं। कुब्जिका के मन्त्र में जिन लोगों की गु परामें ऋष्यादिन्यास तथा विनियोग करते हैं उन ह लिए ऐसा है:—

" ब्रह्मा विष्णु महेश्वरादि ऋषयः ।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्बृहतिपंक्तिस्त्रिष्टुप् छन्दांसि
परमेश्वरी कुब्जिका भगवती देवता ।
कूटंबीजं षट्कस्यान्तं शक्ति तृतीयाद्यं कीलकम् ॥"

अब करषडङ्गन्यास कुब्जालिकाम्नायतन्त्र में इस प्रका लिखा है:—

" यत्राय्यैर्वाणाककोन्चचेवि णिकिणिकि ययात्रने केरि ताह भजलकु श्रौं ह्रीं यचावकयै राकुहुवखीमुरघोत्र मेनणण। यैखाशि खेशिर्खव स्हीं स्हौं स्हौं सेरशि यैपादीलकु यैश्राब्जि- कुश्री ययादह यैलामस्कह्रलवैवगभ मोन "

" पञ्चदशाक्षरं हृदयं शिरश्चैव त्रयोदश ।
शिखारुद्राक्षरा ज्ञेया कवचैकोनविंशतिः ॥
तिथि संख्या भवेन्नेत्रमस्त्रं चैव चतुर्दश ।
पञ्चप्रणव श्राद्यन्तो यथा विद्या तथाऽन्तिमा ॥
एतत्कौलिक भाषायां कथितं ते सप्रत्ययम् ।
सस्फुटं गुरुवक्त्रस्थं विलोमस्थं न सिध्यति ॥
कौलिकेऽदः समाख्यातं सिद्धमार्गे सुदुर्लभम् ॥ "

अस्या ध्यानम् परातन्त्रे:—

" वृषभे संस्थितं देवं स्वर्णरूपशोभितम् ।
एकवक्त्रं त्रिनेत्रं च भुजाष्टादशधारिणम् ॥
परशुं डमरूं बाणं खड्गमंकुशवज्रकम् ।
शङ्खं च वेणुवाद्यं च वरदं दक्षिणे करे ॥
" वामे खट्वाङ्गशूलं च धनुः फलकपाशकम् ।
घण्टां कपालं वेणुं च अभयं भयनाशनम् ॥
पट्टेन वन्धितं जानुवामोरूस्था च कुब्जिका ।
एकवक्त्रा त्रिनेत्रा च करुणाधरवर्णिता ॥
द्विभुजा वरदा देवी सिंहस्थाऽभयसव्यसु ।
नानाभरणभूषाङ्गी खण्डेन्दुकृतशेखरा ।
चर्चरा केशपाशेन चारुपीनघनस्तनी ।
एवं ध्येया कुब्जामाता पश्चिमाम्नायनायिका ॥ "

इन ३२ भेदों में कुब्जिका (समया), घोरकुब्जिका तथा वीर कुब्जिका ये ३ विद्यायें ही प्रायसः प्रचलित हैं। इनके अतिरिक्त केवल दो चार मन्त्र मैं और जानता हूँ परन्तु सारे भेद मैं नहीं जानता हूँ। सकल भेदों के मन्त्र पूर्वोक्त कुब्जिकामन्त्र के सदृश होते हैं। केवल भेद यह हैं कि ' मेनणवङ ' यह ५ वर्णों के बदले अन्य ५ वर्ण रहते हैं। लघुक्रम में सिद्धिकुब्जिका का नवाक्षर मन्त्र ग्रहण करने की प्रथा है। उनके मन्त्रोद्धार के श्लोक मेरे पास नहोने के कारण मैं यहाँ नहीं देसकता हूँ। मन्त्र इसप्रकारका हैं, माया, कूर्च श्री वीज के पश्चात् संवोधन कर कूर्च वीज लगावे। उस का ध्यान यह है:—

" तरुणरविनिभास्यां सिंहपृष्ठोपविष्टाम् ।
कुब्जभरनमिताङ्गीं सर्वभूषाभिरामाम् ॥
अभयवरदहस्तामेकवक्त्रां त्रिनेत्राम् ।
मदमुदितमुखाब्जां कुब्जिकां चिन्तयामि ॥ "

पूर्वोक्त द्वात्रिंशद् भेदों में अपनी-अपनी गुरुपरम्परानुगा। कोई ३ विद्या को कुब्जिकात्रिरत्नविद्या भी कहते हैं। त्रिरत्न-विद्या में आगे के दो विद्याओं में पूर्वोक्त ही ध्यान करते हैं। तीसरी विद्या वीरकुब्जिका के मन्त्र में पूर्वोक्त कुब्जाकामन्त्र के एक कूट की जगह दो कूट फिर ' मेनणवङ ' के बदले ' रेंगां ऐँ गे ख ' तथा ' छीँ छाँ ' के बदले ' छ्रीँ छ्राँ ' हो के ' यैका-ब्जिकु ' की जगह ' केब्जिकु ' रहकर द्वात्रिंशदक्षर ही बन जाएगा। और इस विद्या में त्रिरत्न विद्या की समष्टि हो जाएगी। अतः इन का ध्यान निम्नलिखित प्रकार है:—

" नीलातिश्वेतरक्ताभ वक्त्रत्रयविराजिताम् ।
खड्गंशूलं तत्वमुद्रां कपाल वरदन्तथा ॥
अभयं दधतीं दोर्भीरत्नालङ्कार भूषिताम् ।
द्वात्रिंशद्भेदसं युक्तां षड्भुजां कुब्जिकां भजे ॥"

जब वीरकुब्जिका का उपदेश होगा, तब ३२ भेदोंका अधि-कार हो जाएगा। उसके बाद वज्रकुब्जिका का उपदेश होगा। इनके मन्त्र भी द्वात्रिंशदक्षरात्मक हैं तथापि पूर्वोक्त मन्त्र से दूसरे ही ढङ्ग के हैं। इन वज्रकुब्जिका का ध्यान ऐसा है:—

" परापरकलारूपमूर्ध्वं कुब्जेश्वरी मुखम् ।
पूर्ववक्त्र' तडिद्वर्ण्यं सिद्धियोगेश्वरीमतम् ॥

दक्षिणे कालिकावक्त्रमुमाख्यं पश्चिमे मतम् ।
उत्तरे तु महालक्ष्मीमुखं स्फटिकसुप्रभम् ॥
पाशांकुश धनुर्बाणचन्द्रहासत्रिशूलक ।
शुभ्रखर्परमुद्राख्यवरदाभयशोभिताम् ॥
दिग्भुजामिन्दुमुकुटां कुब्जिकेश्वरसाधिताम् ।
ईडे सकलसंपत्यैः पश्चिमाम्नायदेवताम् ॥ "

उसके बाद अघोरकुब्जिका का उपदेश होगा। इन का मन्त्र भी फिर तीसरे ढङ्ग का द्वात्रिंशदक्षरविग्रह ही है। इनका ध्यान ऐसा है।

" षड्वक्त्रा षट्प्रकारा बहुगुणनिलया वर्वरा केशभारा ।
नेत्रैरष्टादशैश्च क्रमशपरिभृतां तीव्रवेगातिरौद्रीम् ॥
ओष्ठैलंम्बैर्विशुभ्रैः पशुजनक्षयकृदन्तुराशुद्धदृष्टिः ।
देवी लम्बोदराख्या त्रिभुवननमिता पातुमां षट्प्रकारा ॥
अवतीर्य क्रमान्तस्थां मण्डलोर्ध्वे तु पंकजे ।
व्यस्तासनसमारूढां सिद्धकूटेन संस्थिताम् ॥
वक्त्रान्ते दूतिसंयुक्तां आयुधैः समलंकृताम् ।
आराधयेत् ततो देवीं सर्वेषां सर्वसंस्थिताम् ॥
या सा परापराशक्तिः खगस्था खंस्वरूपिणी ।
सोमसूर्यपदान्तस्था आयान्तु त्विहमण्डले ॥ "

द्वात्रिंशदक्षरी में " कूट " नाम से जो उल्लेख किया है उस को इस प्रकार उद्धार कुब्जिकातन्त्रने कियाहै ।

" रफखसह ऐँ अंकूटं विलोमेन नियुक्तम् ॥ "
(विना गुरुवक्त्र पश्चिमाम्नाय का मर्म केवल पुस्तकावलोकन

से कोई भी नहीं समझ सकता है। अब मैं यहाँ कुब्जिव विद्या के विविधप्रकार के मन्त्रों का कुलालिकाम्नायतः उद्धार देता हूँ। पश्चिमाम्नाय मर्मज्ञ लोग इसे उद्धार करें।/ व ऐसा है:—

" अस्योद्धारं प्रवक्ष्यामि यथा वदन पूर्वश ।
अः खमध्यगतं गृह्य झपूर्वेण समन्वितम् ॥
प्रथमं तु स्मृतं बीजं द्वितीयं सह मध्यगम् ।
भेदितं तु जपूर्वेण एतद्वर्णद्वयं पुनः ॥
आसरन्ध्रगतं गृह्य यसमध्यगतं पुनः ।
द्वितीयेन तु संभिन्नं पृष्टं वै बीजमुत्तमम् ॥
प्रथमं सतमं तद्वद्द्वितीयस्य द्वितीयकम् ।
अष्टमन्तु स्मृतं बीजं नवमं भजमध्यगम् ॥
झपूर्वेण तु संभिन्नं शून्यमष्टक भूषितम् ।
मपमध्यगतं गृह्य दशमं केवलं प्रिये
थवसन्धिगतं पूर्वं औपूर्वेण तु भेदितम् ।
एकादशाक्षरं प्रोक्तं ऐं थमध्यगतं पुनः ॥
जपूर्वेणतु संभिन्नं दशद्वितयमुत्तमम् ।
एवं रन्ध्रगतं गृह्य केवलं त्रिदशः पुनः ॥
जसमध्यगतं गृह्य ऐ औमध्यसमन्वितः ।
चतुर्दशोद्धृतं बीजं अक्षसन्धिगतं पुनः ॥
केवलं कथितं बीजं दशपंचाक्षरं प्रिये ।
पधमध्यगतं गृह्य जपूर्वेणतु भेदितम् ॥
षोडशं उद्धृतं बीजं यसमध्यगतं वदेत् ।
थलमध्यासनाशीनं जपूर्वेण तु भेदितम् ॥
नादबिन्दुकलाक्रान्तं दशसप्तकमुद्धृतम् ।

षममध्यगतो द्धृत्य टणमध्यासने स्थितम् ।
टपूर्वेण तु संभिन्नं शून्ययुक्तं दशाष्टकम् ॥
वह्नियुक्तं महाप्राणं डपूर्वेण तु भेदितम् ॥
विंशमं शून्यमेकेन उद्धृतं बीजमुत्तमम् ।
पढमध्ये गतं गृह्य केवलं विंशमं भवेत् ॥
खपूर्वे वर्णमुद्धृत्य थपूर्वासन संस्थितम् ।
विंशमेकादिमं भद्रे अः खमध्यगतं पुनः ॥
झपूर्वासनमारूढ द्वाविंशकमुदा हृतम् ।
देधमध्यगतोद्धृत्य तपूर्वासनसंस्थितम् ॥
विंशतितयमाख्यातं यजमध्यगतं पुनः ।
पंचमस्वरसंयुक्तं चतुर्विंशाक्षरं भवेत् ॥
गपूर्वेणसमुद्धृत्य चतुर्थस्वरसंयुतम् ।
पञ्चविंशसमाख्यातं औशमध्यगतं पुनः ॥
ऐपूर्वेण तु संभिन्नं षड्विंशकमुदाहृतम् ।
सतमध्यगतं चान्यं जपूर्वेणसमाहितम् ॥
सप्तविंशति सं भद्रे अंशमध्यगतं पुनः ।
झपूर्वेणसमायुक्तमष्टाविंशति पार्वति ॥
पुनरेवं ददेदेचि त्रिंशपूर्वे सचिन्दुकम् ।
घनमध्यगतं गृह्य केवलं त्रिंशमं भवेत् ॥
घहरन्ध्रगतं गृह्य वाय्वासन सुसंस्थितम् ।
त्रिंशमेकाधिकं भद्रे कपमध्यागतं पुनः ॥
वह्निना दीपिनं कृत्वा त्रिंशमं चतुराधिकम् ।
सतरन्ध्रगतं बीजं केवलं सृष्टिसंयुतम् ॥
पञ्चत्रिंशत् स्मृताबर्णाः पञ्चप्रणव संपुटा ।
योजितव्या महादेवि कुब्जिका सिद्धिकांक्षिणा ॥"

पश्चिमाम्नाय में तथा उग्रचण्डाकल्प में पञ्चतार की यः
७० ही महिमा है। इन के अतिरिक्त किसी मन्त्रों के जप तः
आवरणार्चनादि नहीं हो सकते। कुलालिकाम्नायतन्त्र
पञ्चतार का उद्धार ऐसा है।

" पञ्चप्रणव उद्धारं यथात्वं गह्वरे शृणु।
एओमध्यं समुद्धृत्य विन्दुनादैरलंकृतम्॥
भगाख्यं प्रथमं बीजमुद्धृतं परमाक्षरम्।
वममध्यगतं गृह्य यढमध्यासने स्थितम्॥
इउमध्येनसंभिन्नं अः औ मध्यैरलंकृतम्।
द्वितीयं कथितं देवि तृतीयं वथमध्यगम्॥
ठलमध्यासनासीनं चतुर्थं परभेदितम्।
विन्दुना मस्तकाक्रान्तं नचमध्ये चतुर्थकम्॥
ईतमध्ये समारूढं ऐ पूर्वेनतु भेदितम्।
विन्दुनामस्तकाक्रान्तं चतुर्थं प्रणवं भवेत्॥
पञ्चमं धममध्यस्थं वढमध्यासने स्थितम्।
अपूर्वेण समाक्रान्तं औपश्चिमे विभूषितम्॥
अर्द्धचन्द्रान्वितं कृत्वा विन्दुनादयुतंकुरु।
पञ्चप्रणव उद्धारं रहस्यंकथितं तव॥
मन्त्राणां दीपकं देवि यथा कर्मणि योजयेत्॥"

जैसे ताराविद्या में भैरव अक्षोभ्य की दक्षपार्श्व में नह
यल्कि शिरमें पूजा होती है वैसे ही कुब्जिकाविद्या में कुब्जि
केश्वर भैरव की पूजा दक्षपार्श्व में नहोकर वामपार्श्व में होत
है। ताराके ध्यान में तो अक्षोभ्य शिर में ही हैं, परन्तु कुब्जि
का के ध्यान में कुब्जिकेश्वर दक्षपार्श्व में हैं। तथापि पूज

ग्रहण करते समय भैरव वाम ओर जाएँगे। यह रहस्य गुरु-
वक्त्र से जानना चाहिए। कुब्जिका विद्या में तथा उग्रचण्डा
विद्या में करन्यास का ढङ्ग अन्य विद्याओं के विपरित प्रकार
का है। जैसा कि प्रथम करतलपृष्ठ तथा कनिष्ठिका एवं क्रम से
पश्चात् अंगुष्ठ तक न्यास होगा। फिर करन्यास के आगे कर
शुद्धिमन्त्र से करशोधन करना चाहिए। कुब्जिकाविद्या का
यन्त्र जिसको पश्चिमाम्नाय का श्रीयन्त्र कहते हैं वह इसप्रकार
का है।

" विन्दुत्रिकोणषट्कोणमष्टपत्रं सकेशरम्।
अष्टशृङ्गसमायुक्तं सद्वारं भूपुरत्रयम्॥
श्रीमत्कुब्जेश्वरी यन्त्रं सर्वाभिष्ट फलप्रदम्॥"

वृहद्वडवानलतन्त्रेऽपि—

" विन्दुत्रिकोणरसकोणमथाष्टपत्रम्।
सत्केशरान्वितमथो वसुशृङ्गकाढ्यम्॥
भूगेहचक्रत्रितयान्वितमम्बिकायाः।
श्रीचक्रराजमुदितं किल कुब्जिकायाः॥"

अस्यावरणपूजा—

" विन्दौ प्रपूजयेदादौ पञ्चरत्नेन विद्यया।
आनन्दशक्तिभैरवानन्दवीराधिपस्य च॥
मूलस्थानभट्टारकस्यपादुकां यजेत्ततः।
तथैव श्रीमहाविद्याराजेश्वरीं प्रपूजयेत्॥
ततः श्रीपश्चिममूलस्थान कुब्जेश्वरीं यजेत्।

ततस्त्रिकोणाद्वाह्ये तु षडङ्गानि प्रपूज्य च ॥
रेखायां देवदेवेशि गुरुपंक्तिं प्रपूजयेत् ।
परमेष्ठिगुरुं पश्चात् परापरगुरुं ततः ॥
गुरुं परमपूर्वं तु श्रीगुरुं च ततो यजेत् ।
दिव्यौघं चैव सिद्धौघं मानवौघं ततः परम् ॥
कोणेषु पूजयेन्मन्त्री सुवामदक्षिणाग्रतः ।
महामायाकुब्जिकात्रिविद्याचक्रेश्वरीं ततः ॥
निर्वाणसुन्दरीं चैव निर्वाणकालिकां ततः ।
तद्वहि तु जयाद्याष्टशक्तिपूजां समाचरेत् ॥
तत्रैव दक्षिणां काली मुग्रतारां च षोडशीम् ॥
भुवनां भैरवीञ्चैव प्रचण्डामुग्रचण्डिकाम् ।
धूमावतीं च मातङ्गीं तथा च वगलामुखीम् ॥
सिद्धिलक्ष्मीं महादेवि स्वस्वमन्त्रेण पूजयेत् ।
षट्कोणे ङेयुतमहाभैरवानन्दनाथयुक् ॥
मंगलं सुचर्चिकं भट्टं किलिकिलिपदं तथा ।
कालरात्रीपदं चैव भीषणं चोच्चरेत् क्रमात् ॥
ब्रह्माणी वैष्णवी चैव वाराही चेन्द्रशक्तिका ।
चामुण्डा कमला चैषा पूर्वोक्तैः षट्कसंज्ञकैः ॥
साद्धं प्रपूज्याःपुरतः हूँ ह्रीँ लूँ वूँ यूँ रूँ क्रमात् ।
चतुश्चरणविद्यानां त्रिकोणे यजनं चरेत् ॥
तत्रैव पूजयेत् पश्चान्नवात्मगुरुमण्डलम् ।
बिन्दौ श्रीकुब्जिका मिष्ट्वा तद्वामे कुब्जिकेश्वरम् ॥
ततोऽष्टदलमध्येषु पूर्वादिक्रमतो यजेत् ॥
असिताङ्गं रुरुं चण्डं क्रोधमुन्मत्तकं तथा ।

कपालीशं भीषणाख्यं ततः संहारभैरवम् ।
तद्वहिः सत्य रजसं तमसं च प्रपूजयेत् ॥
भूद्वारे क्षेत्रपालं च गणेशं वटुकं तथा ।
योगिनीश्च समभ्यर्च्य लोकेशान् वहिरर्चयेत् ॥
ततश्च वाह्यरेखायां ज्वालाक्षं मम्बुकं तथा ।
कबन्धं नन्दनवनं संपूज्य यन्त्ररूपिणीम् ॥
कुब्जिकेश्वर संयुक्तां पूजयेत् कुब्जिकेश्वरीम् ॥ "

कुब्जिका त्रिरत्नविद्या के विषय में पूर्वही लिखचुका हूँ। (भाषा में हम नेपाली लोग इस त्रिरत्नविद्या को 'वत्तिशीत्रय' भी कहते हैं। अतः अघोरकुब्जिका तथा वक्रकुब्जिका समेत त्रिरत्नविद्या को पञ्चरत्नविद्या फिर भाषा में, अघोरवक्रवत्तिशीत्रय ' कहते हैं। आगे जिस क्रम से मन्त्र संग्रह कियाहै उस के विपरीत क्रम से इस आम्नाय में पूजा होती है।)

(जैसे वैदिकमत में महायागों के आरम्भ में नन्दीमुख श्राद्ध सवसे आगे करना पडेगा, वैसे ही तान्त्रिक महायागों—भैरवामृत महायाग, भैरवीचक्र महायाग (केवल भैरवीचक्रयाग और भैरवीचक्रमहायाग में वहुत भेद है। जो पीछे चक्रपूजा के विवरण में वताया जायगा) महापूर्णाभिषेक महायाग तथा मांसाहुति महायाग-इत्यादि— के आरम्भ में कर्म्मकुब्जिका की पूजाकरना अत्यावश्यक है।) उनका ध्यान निम्नलिखित प्रकार है:—

" प्रेतोर्ध्वे वह्निपद्मस्थितवृषहरिणे नीलपञ्चास्यत्र्यक्षे ।
चान्येरक्ते तुवामे कनकइभनिभे मर्कटाभे सुतोर्ध्वे ॥

दक्षे त्रिशूलचक्र ध्वजवरदकरे वामके पारिजातम्।
सूत्रं विद्याऽभयदगजकरः पातुमां कर्म्मदेवः
स्यक्षे नीलाञ्जनाभा ऋतुवदनफला दक्षहस्ते विपक्षा।
वामे पीतांशुकाभा उपदशितजवादक्षहस्ते त्रिशूला ॥
चक्रं वज्रांकुशाढ्या सजफलदधती कर्त्रियामे च मुण्डम् ॥
खट्वाङ्गाघण्टविद्याधनुचवककरी पातुमां कर्म्मकुब्जि ॥"

यह बात तो अनुभव सिद्ध ही है कि कर्मकुब्जिका की पूजा और यथोक्त मन्त्र से उनको कृच्छान्न बलिदेकर कोई भी कार्य करें तो उसकाफल तत्काल और शीघ्र ही होता हैं। उस में भी यदी पश्चिमाम्नाय से ही करें तो ब्रह्मास्त्रवत् तत्काल फल होगा। क्यों कि पूर्व ही लिख चुका हूँ कि "पश्चिमंस्त्वैहिकं फलम्"। ऐहिक फल के लिए पश्चिमाम्नाय के वरावर अन्य कई आम्नाय नहीं है, उसकेवाद दक्षिणाम्नाय है। इसलिए दुर्गा छओं आम्नायों से पूजितविद्या होने के कारण चार ही नवरात्र में (आश्विन शुक्ल, माघ शुक्ल, चैत्र शुक्ल और आषाढ शुक्ल) पाशवकल्पोपाशकों ने दक्षिणाम्नाय से, और वीर तथा कुलकल्पोपाशकों ने पश्चिमाम्नाय से दुर्गापूजा करते हैं अब मैं एक उदाहरण देता हूँ कि। मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत सप्तसति स्तोत्र पश्चिमाम्नायात्मक है, इस के ७०० मन्थक वहिरर्थ से तो सुन्दर चरित्रों के वर्णन किये गए है। परन्तु अन्तरर्थ से तो श्रीचण्डिका की सहस्राक्षरी विद्या का उद्धार कियागया है। अतः मेरुतन्त्र में शङ्करजी कहते हैं:—

" सप्तशत्यास्तु सकलं तत्त्वं वेदस्यहमेवहि ।
पार्वतीं श्रीहरिर्वेत्ति व्यस्यार्थं तु प्रजापतिः ॥
व्यासस्तुर्यांशकं वेत्ति कोट्यंशमितरे जना ।"

इसलिए (स्वार्थाप्रफलप्राप्ति के लिए शाक्त, शैव, वैष्णव, गाणपत्य तथा सौर लोग अर्थात् स्मार्त लोग भी सप्तशती स्तोत्र का प्रयोग करते हैं) यह लोक प्रसिद्ध बात है। मेरुतन्त्र में लिखा है।

" कलौ न चण्डीसदृशी सिद्धिदा भुवनत्रये।
वामदक्षिणमार्गाभ्यामधिकारिफलप्रदा ॥ "

पूर्वलिखित वड़वानलतन्त्रोक्त नामावली में कुजालिका नाम जोदिया है, वह समया कुब्जिका ही है, उनका वर्णन पूर्व ही देचुका हूँ। कुब्जिकाविद्या के दो मत हैं, एक शिखा स्वच्छन्दमत और दूसरा नयात्ममत। इनमें से मेरी गुरुपरम्परा में शिखास्वच्छन्दमत होनेके कारण मैं केवल वही जानता हूं। शिखास्वच्छन्द भैरव (कुब्जिकेश्वर) के मन्त्र ध्यानादि इस प्रकार के हैं।

" व्योमशोमपान्तवह्निमुखार्द्धं चन्द्रविन्दुयुक्।
कुजेशाय पदं पश्चात् कूर्चवीजान्वितो मनुः ॥
षडक्षरो महामन्त्रः कुब्जिकेश्वररूपकः ।
षड्दीर्घेनादिकूटेन षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ॥ "

अस्य ध्यानम्—
" पंचवक्त्रं दशभुजं त्रिपञ्चनयनोज्वलम् ।
गोक्षीरधवलं पूर्वे दक्षिणे कृष्णसन्निभम् ॥

उत्तरे रक्तवर्णञ्च पश्चिमे कनकप्रभम्।
ऊर्ध्वे च स्फटिकाभासं प्रत्यालीढं सुसंस्थितम् ॥
कपर्दे बालचन्द्रस्थं श्वेताङ्गं सर्पभूषणम्।
नागकुण्डलकुण्डेन्दुगलेहारं च वासुकी ॥
हस्तपादेस्थितं सर्पव्यालयज्ञोपवीतिनम् ।
स्थूलाङ्गे मण्डलाली च व्याघ्रचर्मावृतां कटि ॥
रत्नाभरण भूषाङ्गं डमरुं तर्जनीं मणीम्।
अंकुशं खड्गवरदं सव्यहस्तं धृतायुधम् ॥
वामे खट्वाङ्गपद्मं च नागपाशं तथैव च।
मुंडपात्रधरं देवं द्वात्रिंशन्मन्त्रविग्रहम् ॥
वह्निनाभिस्थिताम्भोजेवृषभासनसंस्थितम् ।
महातेजोमहेशानं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥
स्वच्छन्द भैरवं देवं भैरवीसहसंयुतम् ।"

इनको शिखास्वच्छन्दललितेश्वर तथा ललितभैरव भी कहते हैं। पूर्वोक्तनामावली के अनुसार अब मातङ्गी का वर्णन करना था परन्तु वह दक्षिणाम्नाय के विवरण में लिख चुका हूं। उसके बाद अमृतलक्ष्मी का वर्णन करना था परन्तु मेरी गुरुपरम्परा में यह विद्या नहीं है, इनके बदले राजलक्ष्मीविद्या तथा सिद्धलक्ष्मीविद्या जानता हूं। इन दोनों ही का पश्चिमाम्नाय से उपासना होता है। यह पश्चिमाम्नायविद्यायें ऐहिक फल दायक होनेके कारण शंकरजीने कूटप्रकार से मन्त्रोद्धारादि करदिया है। फिर इसके विवरण में जगह जगह पर केवल संकेत दिया है कि जो गुरुमुख से ही जाननेकी परम्परा अद्यापि चलरही है। वडवानलतन्त्रोक्त "अमृतलक्ष्म्याद्याः" ऐसा

जो लिखा है, इसमें "आदि" शब्द से पश्चिमाम्नाय की अन्य विद्याओं की सूचना दी गई है। उनमें जो जो विद्या मुझे मालूम है, वह लिखता हूँ। राजलक्ष्मी के विषय में स्वतन्त्र तन्त्र में ऐसा लिखा है:-

" रसाचरस्वैरम्बु स्याद्धाताग्नी तदनन्तरम्।
राज्यदे राज्यलक्ष्मीति हृन्माया व्युत्क्रमात् त्रयम् ॥
विद्यासौ राज्यलक्ष्म्यास्तु षोडशार्णा समीरिता ॥ "

यह सिद्धमन्त्र होने के कारण इस के न्यासादि नहीं हैं। राजलक्ष्मी का ध्यान ऐसा है:-

" इन्द्रनीलनिभां रक्तवसनाभरणोज्ज्वलाम् ।
प्रलम्बवेणी सन्नद्धसौगन्धिकसमुज्ज्वलाम् ॥
तत्क्लृप्तमुंडमालां च मुक्तास्तवकशोभिताम् ।
ऊर्मिकावीरकटकनूपुरैर्मण्डितांघ्रिकाम् ॥
वादयन्तीं सदावीणां स्वसमानाङ्गनाजनैः।
स्तूयमानां च परितो ध्यायेद्देवीं शुचिस्मिताम् ॥
ध्यात्वा तां विजयाविद्यां जपेन्नित्यं च पूजयेत्।
राज्यं प्रयच्छति प्रीता साधकायाविलम्बितम् ॥ "

सिद्धलक्ष्मी का मन्त्र इसप्रकार का है:-

" ज्यासकदाहवह्निस्वाग्नभो हंसो मरुद्यतः।
चण्डतेजश्च संकर्षवर्णाः स्युस्तदनन्तरम् ॥
व्योमाग्न्या कालिमन्थाने वर्णा हंसश्चमायया।
सिद्धलक्ष्म्याश्च विद्येयं प्रोक्ता सप्तदशाक्षरी ॥

आदौ न कृत्वा चाङ्गानि जपेद्विद्यां तु नित्यशः ।
प्रातः सहस्रवारं तु तर्पयेत्तद्दशांशकम् ॥ "

अस्या ध्यानम्-

" शतशीर्षां त्रिनयनां प्रतिवक्त्रभयानकाम् ।
हस्तद्विशतसंयुक्तां स्वसमाकारशक्तिभिः ॥
वृतामनन्तहस्तेषु साधकाभीष्ट हेतिकाम् ॥ "

(महाकाली महालक्ष्मी महासरस्वती समष्टिरूपिणी त्रिशक्त्या-त्मिका चामुण्डा जो नवार्णमन्त्रात्मिका हैं, ऊर्ध्वाम्नाय की ना-यिका हैं और पश्चिमाम्नाय से वीरों और कौलिकों के लिए तथा दक्षिणाम्नाय से पशुओं के लिए पूजित हैं।) उनके मन्त्र ध्यानादि ऐसे हैं:-

मेरुतन्त्रे—

" वाग्लज्जाकामबीजानि चामुण्डायै पदं वदेत् ।
विच्चे नवार्णमन्त्रोऽयं शक्तिमन्त्रोत्तमोत्तमः ॥ ॥ "
ब्रह्माविष्णुमहेशास्तु मुनयोऽस्य प्रकीर्त्तिताः ।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च छन्दस्त्रयमुदीरितम् ॥
देवताऽस्य महाकाली महालक्ष्मीः सरस्वती ।
नन्दाशाकंभरी भीमा शक्तित्रयमुदाहृतम् ॥
तिस्रोऽस्य शक्तयो दुर्गा भ्रामरी रक्तदन्तिका ।
अग्निवायु भगास्तत्वं प्राग्वद्ध्यादिकं न्यसेत् ॥
ततः षडङ्गं कुर्वीत विभक्तैर्मूलवर्णकैः ।
एकेनैकेन चैकेन चतुर्भिर्युग्मकेन च ॥
समस्तेनैव मन्त्रेण कुर्यादङ्गानि षट् क्रमात् ॥

(इ[illegible] बहुत ही गंभीर है [illegible] अवस्था में "[illegible]डायै [illegible] [illegible] जब [illegible] इस अवस्था में [illegible] सिद्ध होगा, [illegible] [illegible] समाप्त होगा, [illegible] त्रिपु[illegible] चामुण्डा [illegible] पूजित होगी। त्रिपुरात्मिका चामुण्डा के विषय में [illegible] में ऐसा लिखा है:-

" नवार्णवामन्त्ररूपां चामुण्डां त्रिपुरात्मिकाम् ।
ह्रीँ क्लीँ ऐँ ॐ बीजरूपां वन्दे देवीं श्रियं पराम् ॥

(इन सब भेदों के ध्यान पृथक् नहीं हैं। अपने अपने गुरुप-रम्परा भेद से कोई महाकाली महालक्ष्मी तथा महासरस्वती का ([illegible]) ही ध्यान करते हैं, फिर कोई निम्नलिखित ध्यान करते हैं, वह ध्यान ऐसा है:—

" यांगाढ्यामरकार्यनिर्गतमहातेजः समुत्पत्तिनी ।
भास्वत्पूर्णशशाङ्कचारुवदना नीलोल्लसद्भ्रूलता ॥
गौरोत्तुङ्गकुचद्वया तदुपरि स्फुर्जत्प्रभामण्डला ।
बन्धूकारुणकाँचकान्तिरचिताच्छ्रीचण्डिका सर्वतः ॥"

(यदि भाग्यवश कोई साधक किसी एक अज्ञात शक्तिपीठ में पहुचजाएगा तो, उस पीठ में चामुण्डा का उपरोक्त नवार्ण मन्त्र से जपपजादि कर सकता है! इस विद्या के रहस्य संकेत मैं इतनाही) देखिका अन्य सब गुरुवक्त्र से ही जानलेना चाहिए। सप्तशतीस्तोत्र इस विद्या का ही अङ्ग होनेके कारण इस विद्या का और सप्तशतीस्तोत्र का रहस्य साथ साथ ही

← Page Blurred In the Book

जानलेना चाहिए । इस विद्या के यन्त्र और आवरणपूजा ऐसे हैं:-
यन्त्रम् (पद्धतौ ;—

" तत्वपत्रावृतं त्र्यस्रषट्कोणाष्टदलान्वितम् ।
चतुरस्रचतुर्द्वारशोभितं यन्त्रमुत्तमम् ॥ "

मेरुतन्त्रे यन्त्रावरणपूजा–

" जयादिशक्तिभिर्युक्ते पीठे देवीं समर्चयेत् ।
एतद्यन्त्रं वृत्तत्र्यस्रषट्कोणाष्टदलान्वितम् ॥
श्रियाच नैरृते विष्णुं वायव्ये तूमया शिवम् ।
विदारयन्तं महिषं प्राक्कोणे मृगपं यजेत् ॥
षट्कोणेषु च पूर्वादौ नन्दजा रक्तदन्तिकाम् ।
शाकम्भरीं तथा दुर्गां भीमां च भ्रामरीं यजेत् ॥
तारस्वबीज पूर्वाश्च ङेन्ता हृदयसंयुताः ।
सर्वासामेव शक्तीनां नाममन्त्रा यतः स्मृताः ॥
ततश्चाष्टदले ब्राह्मीं माहेशीं च कुमारीकाम् ।
वैष्णवीं चापि वाराहीं तथेन्द्राणीं प्रपूजयेत् ॥
चामुण्डामथ तद्बाह्ये चतुर्विंश दलेर्चयेत् ।
विष्णुमायां चेतनां च बुद्धिं निद्रां क्षुधान्तथा ॥
छायां शक्तिपरां तृष्णां क्षान्तिं जातिं तदुत्तरम् ।
लज्जां शान्तिं तथा श्रद्धां कान्तिलक्ष्मीं धृतिं तथा ॥
वृत्तिं स्तुतिं स्मृतिं चापि दयां तुष्टिं ततः परम् ।
पुष्टिं च मातरं भ्रान्तिमर्चयेद् भूपुरंपु च ॥
चतुष्कोणेषु गणपं क्षेत्रेशं वटुकं तथा ।
योगिनीश्च सुरेशाद्यांस्तद्बाह्ये चायुधानि च ॥

(चामुण्डा नाम शक्ति में ३ भेद हैं । अभि उपर जिस चामुण्डाका वर्णन किया है, वह त्रिशक्त्यात्मिका चामुण्डा हैं । दूसरी चामुण्डा मातृकाचामुण्डा हैं ।) उनका विवरण नीचे अष्ट मातृका के विवरण में दिया जाएगा उन का मन्त्र सप्ताक्षरी है, प्रचलित नवार्ण नहीं है । यह मातृका चामुण्डा ६ ही आम्नायों में पूजित हैं । तीसरी चामुण्डा रक्तचामुण्डा हैं । इनको रक्तचामुण्डा भैरवी भी कहते हैं । मतान्तर में इनको केवल रक्तकाली, महात्रिपुरसुन्दरी को प्रपञ्चेश्वरी रक्तकाली तथा सिद्धिलक्ष्मी को श्वेतकाली भी कहते हैं । यह रक्तचामुण्डा का सिद्धमन्त्र होने के कारण इस मे न्यासादि नहीं हैं, मन्त्र ऐसा है । (२०)

" ह्रीँ रक्तचामुण्डां संबोध्य कुरु युग्मं समुच्चरेत् ।
तुरु युग्मं समुच्चार्य स्वाहान्तः षोडशाक्षरः ॥

अस्या ध्यानम्—

" शूलं कृपाणं नृशिरः कपलं दधती करैः ।
मुण्डस्रङ्मण्डिता ध्येया चामुण्डा रक्तविग्रहाः ॥"

(वैसा ही भद्रकाली नाम शक्ति में भी दो भेद हैं । एक विपरीतप्रत्यंगिराभद्रकाली पश्चिमाम्नायात्मिका हैं दुसरी दुर्गाभद्रकाली ६ ओं आम्नायों में पूजित हैं ।) वीपरीतप्रत्यंगिरा भद्रकाली के मन्त्र ध्यानादि इस प्रकार के मेरुतन्त्र में लिखे हैं:–

" अथातः संप्रवक्ष्यामि भद्रकाल्याः परं मनुम् ।
ह्रीँ कालीति महाकाली द्विः किणिः फड्वसुप्रिया ॥

चतुर्दशाक्षरो मन्त्रो भद्रकाल्या उदाहृतः ।
पादैः षड्भिः ज्ञानिनुक्तानि प्रकाशयन् ॥

अस्या ध्यानम्—

" क्षुत्क्षामा कोटराक्षी मसिमलिनमुखी मुक्तकेशी रुदन्ती ।
नाहं तृप्ता वदन्ती जगदखिलमिदं ग्रासमेकं करोमि ॥
हस्ताभ्यां धारयन्ती ज्वलदनलशिखासन्निभं पाशमुग्रं
दन्तैर्जम्बुफलाभैः परिहरतु भयं पातुमां भद्रकाली ॥"

मन्त्रातरं तत्रैव—

" अथ मन्त्रान्तरं वक्ष्ये भद्रकाल्या सुगोपितम् ।
गृध्रकर्णि विरूपाक्षि लम्बस्तनि महोदरि ॥
उत्पादयोत्पादयेति द्विधोपरि पदं भवेत् ।
द्विधावेति पदं हुंफट् स्वाहा सप्ताग्निवर्णकः ॥
पिप्पलादो मुनिः प्रोक्तो निवृच्छन्द उदाहृतम् ।
भद्रकाली देवता स्यादुद्विरुत्पादय हृत् स्मृतम् ॥
उपरिभ्यां शिरः प्रोक्तं वेत्तिभ्यां तु शिखा स्मृता ।
हुंफड्भ्यां कवचं प्रोक्तं स्वाहयास्त्रमुदीरितम् ॥"

मतान्तर में इस मन्त्र का उत्तराम्नाय में भी उपासना होता है ।
इस मन्त्रात्मिका भद्रकाली का ध्यान इस प्रकारका है ।—

अतिरौद्रा महादंष्ट्रा भृशंदीर्घा कृशोदरी ।
सुवृत्तनयना शुभ्रा दीर्घघोणा महानरा ॥
स्निग्ध गम्भीर निर्घोषा नीलजीमूतसन्निभा ।
भृगुच्चघटसंदीप्ता महारदनभीषणा ॥

दंष्ट्रोग्रकोपन प्राप्ती रक्तदीर्घशिरोरुहा ।
त्रिशूलव्यग्रदोर्दण्डा नरकीटपलाशिनी ॥
अतिरक्ताम्बरा देवी रक्तमांसासवप्रिया ।
शिरोमाला विभूषाङ्गी पिबन्ती शोणितासवम् ॥
नृत्यन्ती च हसन्ती च पिशाचगणसेविता ।
पिशाच स्कन्धमारुह्य भ्रमन्ती वसुधातलम् ॥
शङ्करस्य मुखात्पन्ना योगिनी योगवल्लभा ।
इत्थंभूता भद्रकाली मातृभिः परिवारिता ॥"

(अब दुर्गा भद्रकाली की छओं आम्नायों में अपने अपने गुरुपरम्परा के मतानुसार दुर्गाष्टाक्षरमन्त्र वा जयदुर्गामन्त्र अथवा त्रिशत्यात्मिका चामुण्डानवार्ण मन्त्र से पूजा होती है । इस दुर्गा भद्रकाली का ध्यान कालिकापुराण में ऐसा है ।

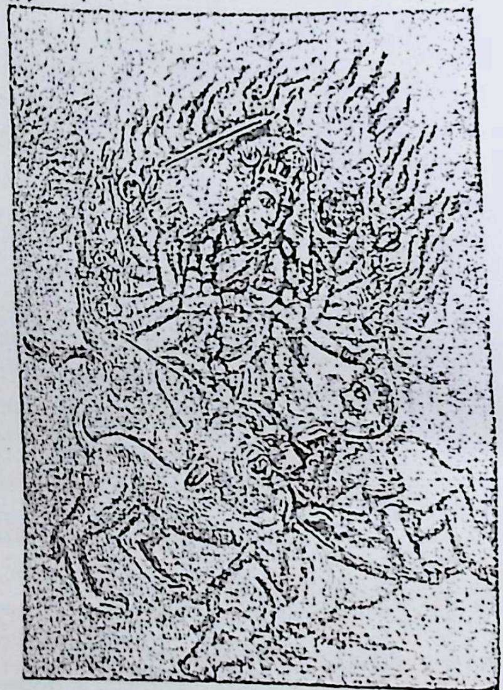
" योगनिद्रा महामाया जगद्धात्री जगन्मयी ।
भुजैः षोडशभिर्युक्ता भद्रकालीति विश्रुता ॥
क्षीरोदस्योत्तरे तीरे बिभ्रती विपुलां तनुम् ।
अतसीपुष्पवर्णाभा ज्वलत्काञ्चनकुण्डला ॥
जटाजूटमखण्डेन्दुमुकुटत्रयभूषिता ।
नागहारेण सहिता स्वर्णहारविभूषिता ॥
शूलं खड्गं च शंखं च चक्रंबाणं तथैव च ।
शक्तिं वज्रं च दण्डं च नित्यं दक्षिणबाहुभिः ॥
बिभ्रती सततं देवी विकाशिनयनोज्ज्वला ।
खेटकं चर्म चापं च पाशं चांकुशमेव च ॥
घण्टां परशुं मुशलं बिभ्रती वामपाणिभिः ।

सिंहस्था नयनै रक्तवर्णैस्त्रिभिरभिज्ज्वला ॥
शूलेन महिषं भित्वा तिष्ठन्ती परमेश्वरी ॥
वामपादेन चाक्रम्य तत्र देवी जगन्मयी ॥

पश्चिमाम्नाय में शायद अन्य विधाएँ भी हों । परन्तु मुझे इतना ही ज्ञान है। अब इतने में ही यह पटल समाप्त करता हूं। दूसरे पटल में छओं आम्नायों से पूजित देवताओंका यथामति वर्णन करनेका चेष्टा करूँगा।

इति श्री धनशम्शेर वर्म्मणा संग्रहित श्रीतान्त्रिकोपासनादर्पणे पश्चिमाम्नायविवरणन्नाम पञ्चमः पटलः ॥

—॥०॥—



श्री उग्र चण्डा

॥ अथ षष्ठः पटलः ॥

॥ ॐ नमः श्रीपरदेवतायै ॥

(अब इस पटल में कौन कौन देवता छओं आम्नायों में पूजित होते हैं, इस विषय में यथामति लिखता हूँ। परातन्त्र में लिखा है :—

"त्रिशुद्धि उग्रचाण्डा च चण्डा चण्डकपालिका।
अन्नपूर्णा कराली च ज्वालामालिनी कामिनी॥
ब्राह्माद्यामातरगणा असिताङ्गादिभैरवाः।
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारि वैष्णवि तथा॥
वाराही चैव माहेन्द्री चामुण्डा सप्तमी स्मृता।
अष्टमीच महालक्ष्मी एताः सर्वत्रपूजिताः॥
असितांगो रुरुश्चण्डः क्रोधीशोन्मत्तकस्तथा।
कपाली भीषणाख्यश्च संहारश्चाष्टम स्तथा॥
षडाम्नायप्रपूज्या वै मातृकाः सह भैरवै:॥

फिर महाकालसंहिता में लिखा है:—

" कुलवाला च दुर्गा च सर्वाम्नाय प्रपूजिता।
तयोः पूजातु सर्वत्र नित्यत्वेनाऽभिधीयते॥"

(कुलवाला कुमारी (कन्या) हैं। वह कन्या-पूजा साधक मात्र को विदित ही है। वह छ हों आम्नायों से पूजित होती

हैं। अब दुर्गा के भेदों का वर्णन करता हूँ। सामान्य दुर्गा का महामन्त्र अष्टाक्षरी है। यह मन्त्र शारदातिलक में ऐसा लिखा है:—

" ततो दुर्गामनुं वक्ष्ये दुर्गादुष्कलप्रदम् ।
मायाद्रिः कर्णबीजाढ्यो भूयोऽसौ सर्गवान् भवेत्।
पञ्चान्तकः प्रतिष्ठावान् मारुतो शांतिकासनः ॥
तारादि हृदयान्तोऽयं मन्त्रो वस्वक्षरात्मकः ।
ऋषिश्च नारदश्छन्दो गायत्रं देवता मनोः ॥
दुर्गा समीरिता सद्भिदुरितापन्निवारिणी ।
नमस्कारवियुक्तेन मूलमन्त्रेण साधकः ॥
द्रामाद्यैः सह कुर्वीत षडङ्गानि यथाविधिः । "

अस्या ध्यानम्—

" सिंहस्था शशिशेखरामरकतप्रख्यैश्चतुर्भिर्भुजैः ।
शंखं चक्रधनुःशरांश्च दधतीं नेत्रैस्त्रिभिःशोभिता ॥
आमुक्ताङ्गदहारकङ्कणरणत्काञ्चीरणन्नूपुरा ।
दुर्गा दुर्गतिहारिणी भवतु वो रत्नोल्लसत्कुण्डला ॥ "

बीजरूपा दुर्गा के मन्त्र ध्यानादि मेरुतन्त्र में ऐसे हैं।

" अथातः संप्रवक्ष्यामि बीजरूपं महामनुम् ।
दुरित्येकाक्षरो मन्त्रस्सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमः ॥
ऋषिः काश्यप उद्दिष्टो गायत्री छन्दईरितम् ।
देवता तु भवेदुर्गा षडङ्गानां विधिस्तथा ॥
षड्दीर्घयुक्तबीजेन विसर्गेणान्वितेन च ॥ "

तस्या ध्यानम्—

" दूर्वाश्यामां त्रिनेत्रां च कमलेऽष्टदले स्थिताम् ।
शूलं बाणं खड्गचक्रे शंखं खेटं शरासनम् ॥
कपालानि च दक्षाधः क्रमेण दधतीं स्मरेत् ॥ "

जयदुर्गा मन्त्रः—

" तारो दुर्गेयुगं रक्षमन्त्यद्वान्तौ सलोचनौ ।
द्विठान्ता जयदुर्गेयं विद्या वेद्या दशाक्षरी ॥
तारादिदुर्गे हृदयं दुर्गे शिर ईतीरितम् ।
दुर्गायै स्याच्छिखा वर्म भूतरक्षिणि कीर्तितम् ॥
तारादिदुर्गेयुगलं रक्षिण्यस्त्रमुदीरितम् ॥ "

(नारदऋषिः गायत्रीछन्द)

तस्या ध्यानम्—

" कालाभ्राभां कटाक्षैररिकुलभयदां मौलिबद्धेन्दुखण्डाम् ।
शंखं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम् ॥
सिंहस्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीम् ।
ध्यायेद्दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां सेवितांसिद्धिकामैः ॥

अतिदुर्गा मन्त्र—

" सर्वार्थसाधकं वक्ष्ये संग्रामविजयप्रदम् ।
जलन्धरवधायाहं यत्स्मरामि शृणुष्वतत् ॥
जातवेदसे सूनवामसोमम रातीयतो निदहाति वेदःस ।
परिषदति दुर्गाणि विश्वानावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥
त्रिष्टुप् छन्दो मुनिश्चास्य मरीचिः काश्यपो मतः ।

देवता जातवेदोऽग्निः षडंगानि समाचरेत् ॥
नवागषट् सप्तनाग सप्तभिर्मन्त्रवर्णकैः ॥"

इनको अग्निदुर्गा भी कहते हैं। इनका ध्यान इस प्रकार का हैं—

"विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणाम्।
कन्याभिः करवालखेटकलसद्धस्ताभिरासेविताम् ॥
हस्तैश्चक्रदरासिखेटविशिखान् पाशांकुशौ तर्जनीम्
बिभ्राणामलनात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां स्मरेत् ॥"

शाक्तप्रमोद में दुर्गाका यन्त्र इस प्रकार का है:-

"दुर्गायन्त्रं प्रवक्ष्यामि शृणुष्व हरवल्लभे।
त्रिकोणं विन्यसेत् पूर्वं नवकोण समन्वितम् ॥
त्रैविम्बसहितं सर्वं मष्टपत्रसमन्वितम्।
त्रिरेखासहितं वज्रं भुपुरद्वयसंयुतम् ॥"

मेरुयन्त्रेतुः—

"अष्टपत्राम्बुजद्वन्द्वं चतुरस्रत्रयावृतम्।
चतुर्द्वारसमायुक्तं कुंकुमादिभिरुद्धरेत् ॥

अस्या वरणपूजा तत्रैव—

"कृत्वातु सर्वतोभद्रं पूर्वोक्तं मण्डलं शुभम्।
तत्कर्णिकायां षट्कोणे मण्डूकाद्यान् समर्चयेत् ॥
पूर्वोक्तान् परतत्त्वांस्तान्केशरेषु तदग्रतः।
जयाञ्च विजयां भद्रां रुद्रां कालीं च पूर्वतः ॥
सुमुखीं दुर्मुखीं चन्द्रमुखीं सिंहमुखीं तथा।

मध्ये दुर्गां यजेत्पश्चादासनं सिंहमन्त्रतः ॥
तारमुक्त्वा वज्रनखदंष्ट्राय च महा ततः।
सिंहाय हुँ फट् इत्येति मन्त्रः सप्तदशाक्षरः ॥
मूर्तिं मूलेन संकल्प्य तस्यामावाह्य पूजयेत्।
केशरेषु षडङ्गानि पूर्वतोष्टदले पुनः ॥
जातवेदाः सप्तजिह्वो द्वितीयो हव्यवाहनः।
ततश्चोदरजं वैश्वानरकौमारतेजसम् ॥
विश्वमुखं देवमुखं पीठे कोष्टचतुष्टये।
धरात्मानं जलात्मानं वह्न्यात्मानं निरात्मकम् ॥
निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शान्तिश्च गौणिका।
पूषावाण्यो ततो वीथी शची तोयात्मिका तथा ॥
नित्या दयावती चैव क्षष्टमीकारिणी मता।
तथैव नवमी नाम्ना प्रोक्ताचैव तिरस्क्रिया ॥
देवमाता च दमना प्रिया पश्चान्निरूप्यते।
समाराध्या नन्दिनी च शरीरेषुविमर्दिनी ॥
पद्माख्या दण्डिनी तिग्मा दुर्गा गायत्र्यतः परम्।
निरवद्या विशालाक्षी सौम्या सायं निरूप्यते ॥
स्वरोद्वाहा नादिनी च वेदना वह्निगर्भिणी।
सिंहवासा च धूम्रा च दुर्विषंहारिसंयुक्ता ॥
तापहरा त्यक्तदोषा निःसपत्नेति तद्बहिः।
लोकपालांस्तदस्त्राणि पूजां प्राग्वत्समाचरेत् ॥"

अब वनदुर्गा जो विन्ध्यावासिनी नामसे प्रसिद्ध हैं, उनके ध्यान मन्त्रादि ऐसे हैं।

" उच्छिष्टपदमाभाष्य पुरुषि स्यात् पदं ततः।
पितामहः सनेत्रे नः स्वपिषि स्याद्वयं च मे॥
समुपस्थितमुच्चार्य यदिशक्यमनन्तरम्।
अशक्यं वा पुनस्तन्मे वदेद्भगवति ततः॥
समयाग्निवधूः सप्तत्रिंशद्वर्णात्मको मनुः।
ऋषिरारण्यकः छन्दोऽप्यत्यनुष्टुबुदाहृतम्॥
देवता वनदुर्गा स्यात् सर्वदुर्गविमोचनी।
षड्भिश्चतुर्भिरष्टाभिरष्टाभिः षड्भिरिन्द्रियैः॥
मन्त्रार्णैरङ्गक्लृप्तिःस्याज्जातियुक्तैर्यथाक्रमम्॥"

अस्या ध्यानम्—

" सौवर्णाम्बुजमध्यगां त्रिनयनां सौदामिनीसन्निभाम्।
शंखं चक्रवराभयानि धदतीमिन्दोः कलां बिभ्रतीम्॥
ग्रैवेयांगदहारकुण्डल धरामाखण्डलाद्यैः स्तुताम्।
ध्यायेद्विन्ध्यनिवासिनीं शशिमुखीं पार्श्वस्थपञ्चाननम्॥"

इन का यन्त्र तो अन्य दुर्गा का सदृश ही है, परन्तु आवरण पूजा पृथक् है, वह ऐसा है:—

" आर्यां दुर्गां च भद्रां च भद्रकालीं तथैव च।
अम्बिकां च तथा क्षेम्यां वेदगर्भां च शाङ्करीम्॥
देव्यायुधानि संपूज्य सायुधान् दिक्पतीन् यजेत्॥"

परातन्त्र में " विशुद्धिउग्रचण्डा " क्यों कहा, इसविषय में एक महाकालसंहिता वर्णित कथा का वर्णन करता हूँ। सकल देवता ओं का तेजोराशी समुद्भवा शक्ति तो एक ही है. परन्तु कल्पभेद से मूर्ति तथा नाम में भेदत्रय हैं। उग्रचण्डा.

भद्रकाली और कात्यायनी हैं। सत्ययुग में जब त्रिपुरासुर दानव ने संपूर्ण ब्रह्मादि देवों को व्यथित किया और दुःखित देवगण उस दानव का वध जब अनेक उपाय करने पर भी नहीं कर सके तो अन्त में निराश होकर उन सबोंने देवी का स्मरण किया। स्मरण करते ही संपूर्ण देवताओं को प्रत्यक्ष दर्शन देकर भगवती बोलीं " त्रिपुरासुर के वध के लिए शारदीय अर्चा के अतिरिक्त अन्य साधन नहीं है। मेरी शारदीय पूजा विधिवत करने से उस दैत्य को तुम लोग मार सकोगे। मेरी शारदीय पूजा को जो लोग नहीं करते हैं, वे नरकगामी होते हैं। जो लोग इसे भक्तियुक्त होकर करते हैं, उन को दारसुतादिवित्त, आरोग्य उन्नति, विविध भोग से परिपूर्ण करदेती हूं। " शारदीय और वासन्ती अर्चा में अल्पमात्र भी भेद नहीं है, ऐसा सर्व निगमादि में लिखा है। कब से यह शारदीय अर्चा की प्रथा निकली है, इस विषय में लिखा है कि त्रेतायुग में जब राम और रावण का भारी युद्ध हुआ था, उस वक्त रावण कालिका का परम भक्त होने के कारण श्रीरामचन्द्रजी से मारा न गया। तब वह त चिन्तित होकर संपूर्ण देवगण को साथ में लेकर स्वयं ब्रह्माजी हिमालय पर जाकर कालिका (गुह्यकाली) की स्तुती करने लगे। " कालिके ! आप के उपासक राम और रावण का लङ्का में घोर युद्ध होरहा है। उन दोनों की अस्त्रशिक्षा युद्ध-कुशलता आप जाकर देखिये। " इस प्रकार अकाल बोधित की भी कालिका ब्रह्माजी के साथ शुक्ल प्रतिपदा में उस रणक्षेत्र में पहुंच गई। निराहार होकर ७ दिन तक दोनों दिव्यास्त्र प्रयोग करते रहे। इतने उपाय करने पर भी काल्युपासक रावण को

रामचन्द्रजी मार नहींसके। रावण भी विष्णुरूप रामचन्द्र का कुछ कर नहींसका। अपने भक्त रावण के बाहुबल को देखकर काली अति हर्षित हुई। रावण के ऊपर कालिका का पक्षपात विशेष अनुग्रह देखकर संपूर्ण देवगण संयुक्त ब्रह्माजी अति नम्रभाव से दिव्यस्तुती करने लगे। ब्रह्माजी की स्तुति से सन्तुष्ट होकर श्रीकालिका बोलीं। " वत्स तुम्हारी स्तुति से मैं प्रसन्न हूँ। अपने अनुकुल वर मागो। " संपूर्ण देवगण अति हर्षित होकर नम्र भाव से प्रार्थना करने लगे।" हे कालि के! आपका परम भक्त होनेपर भी दुष्ट रावण के उपर कृपा न कर हमारे उपर दया करके विष्णुस्वरुप रामचन्द्र को शक्ति प्रदान कीजिये हम लोगों की धर्म्मरक्षा, यज्ञार्थी मुनियों का निर्विघ्न तपश्चर्या और चातुर्वर्ण्य के धर्मरक्षण के लिए यह दुष्ट रावण शस्त्रपूत होकर मर जाए। हे देवि! प्रतिपदा से लेकर नवमी पर्यन्त आपकी तीनों लोकों में भारी पूजा होगी। जब नवमी में विश्व-कण्टक रावण का नाश होगा, प्रभूत बलिद्वारा हम आपको प्रसन्न रखेंगे। दशमी के दिन नाच गाना, विविध वाद्य विशेष जल, कर्दम, केली, अश्लील, वेश, वचन, शास्त्ररचना, रथ, द्विरद, वाहनादि की सज्जना-विधि, नीरांजन, महोत्सवादि से संपूर्ण देवगण और पृथ्वी पर मनुष्यगण भी आप की भारी पूजा करेंगे। जैसे समय आपका पादभक्त रावण है, वैसे ही सदैव आप के पाद-भक्त श्रीराम बनेंगे। आपका (गुह्यकाली का) रामोपासित मन्त्र भी पृथ्वी में प्रसिद्ध होगा जिस से आप प्रसन्न रहेंगी। " इस प्रकार की ब्रह्माजी की प्रार्थना से अतिप्र-सन्न होकर श्रीकाली रावण से विमुख होगईं। इसके बाद

दिव्यास्त्र-द्वार श्रीराम ने रावण को मारा। तभी से शारदिय अर्चा की प्रथा चलीआई है। इसी कारण शारदीय और वासन्ती अर्चा सबके लिए परमावश्यक मानी गई हैं। इन दोनों पूजावि-धि में वासन्ती पूजा एक ही प्रकार से होती है। परन्तु शारदीय पूजा में ३ प्रकारके मतभेद हैं। आश्विन कृष्ण शिवर्क्ष नवमी में प्रबोधन करके आश्विन शुक्ल नवमी पर्यन्त पूजा करने का एक पक्ष है। (यह उत्तम पक्ष है, इस में केवल कुलकल्प सेही पूजा होती है।) आश्विनशुक्ल प्रतिपदा में ही प्रबोधन करके तन्त्र और पौराणिक क्रम से नवदिन पर्यन्त पूजा करना दूसरापक्ष है। (यह मध्यम पक्ष है मतान्तर में कृष्णचतुर्दशी में ही प्रबोधन होते हैं।) फिर आश्विन शुक्ल षष्ठी तिथि में सायंकाल में बेल की शाखा में देवी का प्रबोधन करके सप्तम्यादि तीन दिन तक पूजा करने का तृतीय पक्ष है। (यह अधम पक्ष है।) इस विषय में महाकालसंहिता का वचन ऐसा है.—

" आश्विनाशितपक्षस्य नवमी या शिवर्क्षयुक्।
बोधयित्वेश्वरीं तस्यां शरदर्चनमाचरेत् ॥
यावत् स्यान्नवमी शुक्ला तावत् पूजा प्रवर्तते।
इत्येकः पक्ष उदितो द्वितीयमवधारय ॥
प्रतिपद्येव शुक्लायां बोधयित्वा सुरेश्वरीम्।
अभ्यर्चयेन्नवाहानि तन्त्रपौराणिकक्रमैः ॥
उदीरितो द्वितीयोऽयं तृतीयं कथयाम्यथ।
सायाह्ने बिल्वशाखायां षष्ठ्यां देवीं प्रबोधयेत् ॥
प्रातः प्रवर्तते पूजा सप्तम्यादिदिनत्रये।
त्रैविध्य ईदृश्यर्चाया विवदन्ते मिथो बुधाः ॥
ब्रवीमि तत्र सिद्धान्तं छिन्नं येन तमो भवेत् ॥ "

अब इन तीनों में सिद्धान्त पक्ष क्या है? इस विषय में उपरोक्त ग्रंथों के पश्चात् महाकालसंहिता में जो लिखा है, उसका अनुवाद देता हूं। कहा है कि रम्भकल्प में रम्भासुर का पुत्र महिषासुर का अष्टादशभुजी उग्रचण्डा द्वारा वध हुआ। नीललोहित कल्प में देवताओं को व्यथित करनेवाला यज्ञादि का विनाशक फिर भी महिषासुर पैदा होगया। उसको देखकर श्रीमहामाया ने भी षोडशभुजी भद्रकाली स्वरुप लेकर श्वेतकरवाल से ही उसको मारडाला। श्वेतवाराहकल्प में जैगिषव्य ऋषिद्वार पूर्वजातिस्मरण हो के फिर भी पैदा होगया। दोनों वक्त स्त्रीद्वार अपनेको वधस्मरण करताहुवा कात्यायन मुनि का शाप से औः अपने ही स्वप्न के अनुभव से भी अपने को स्त्री द्वारा ही वध समझ के त्रिविध भक्ति से श्रीकाली (गुह्यकाली) का आराधन करना आरम्भ किया। दिव्य द्वादशवर्ष आराधना करने पः स्वयं श्रीकाली प्रत्यक्ष दर्शन देकर बोलने लगीं की "तुमारं आराधना से मैं प्रसन्न हूँ। तुम मनोगत वर मागो।' तदनन्त दानव बोल उठा कि "हे कालिके! वर पीछे मागूंगा, अभं रहने दीजिए। पहले यह तो बताइये कि दोनों वार मुझको आप मारा। घोर और भीषण कैसी कैसी आकृति को धारण करं मुझे मारडालीं? कालिके! फिर इस जन्म में दुर्वृत्त निखिला मरकण्टक मुझको कौनसी आकृति धारण करके मारोगी? ऐसा दानव का वचन सुनकर किञ्चिद्विहस्य मस्तक को हिल कर मधुर वचन बोलने लगीं कि "हे दैत्यराज! मेरः भीषः आकृति को देखर तुम्हारे लिए विशेष लाभ क्या है? लाभ बदले तुम भयभीत हो जाओगे। तदपि तुम उस भीषण आ

कृतिको देखना चाहते हो तो देखो।" इतना कहकर अपनी सुन्दर आकृति को छिपाकर अग्निज्वाला से कराल वदन अष्टा- दशभुजा से युक्त दिव्य शस्त्रास्त्र से युक्त मुण्डमाला से विदीर्ण सूर्य युगल भयंकर दंष्ट्रा से अतिभीषण चञ्चल विद्युत्समान रसना भयंकर नाद करनेवाली उग्रचण्डारूपिणी बनगई। उनको देखकर दैत्यराज देख नहीं सका। अञ्जलीपुट करके बोलने लगा कि "कालिके! तीनों लोक को त्रास करनेवाली ऐसी भयानक आपकी आकृति मैं देख नहीं सकता हूँ। इस आकृतिको छिपा- इये।" इतना कहने पर भयानक आकृति को छोडकर सुन्दर आकृति को कालिका ने धारण किया फिर कालिका ने द्वितीय षोडशभुजी भद्रकालिस्वरुप का दर्शन देनेपर फिर भी पूर्ववत् वहः भयभीत होगया। दानव को भयभीत देखकर श्रीकाली ने पुन प्राकृत सुन्दर मूर्त्ति को धारण किया। दानव भी सुन्दर स्वरुप को देखकर सविनय प्रार्थना करके बोलने लगा। "कालिके! ऐसी ऐसी भीषण आकृति धारण करनेवाली आपके साथ समर में मैं किस तरह युद्ध कर सकूंगा। (गरुड के साथ सर्पका, दावाग्नि के साथ पतंगों का, सिंह के साथ मृग विशेष का, वायु के साथ वृक्षों का, सर्प के साथ भेकों का जैसा समर होगा।) आपके साथ मेरा युद्ध होना सर्वथा असंभव है, यानि हो ही नहीं सकता। अस्तु आज तक जो हुआ हुआ अब मेरे मनोरथ के अनुकूल आ- पसे प्राप्त जो वरत्रय है, उनको कृपया दीजिए। उन में से एक तो यह दीजिये, इस जन्म में ही सौम्य आकृति धारण कर के संपूर्ण देवताओं के रक्षा के लिए मेरेको वध कीजिए। द्वितीय यह दीजिएकी मैं सजीव होकर ही आप की मुखछवीको

देखता हुआ मेरे शिर पर आपका वाम पादाम्बुज सदैव रखती रहें। तृतीय यह दीजिए कि देवि! यज्ञ का कुछ भाग मुझे भी मिलजाए।" इस तरह का दैत्यराज का वचन सुनकर सस्मित भाव से देवी बोलने लगी। "हे दैत्येन्द्र! यथार्थ मेरे वचन को सुनो। रम्भकल्प में हिमालय में तुम्हारे पिता रम्भासुर ने कठिन तपस्या कर के श्रीशंकरजीको सन्तोष कर ऐसा वरमागा कि, 'यदि मुझ से आप सन्तुष्ट हैं तो मैं वह वर मागताहूँ कि आप मेरे पुत्र बनजाएँ।' श्रीशंकरजी ने भक्त के अधीन होकर अनुकूलवरदान देदिया। इसी कारण तुमने महिषी के गर्भ से पैदा होकर शिवजी के समान स्वरुप धारण किया है। और तुम साक्षात् शिव स्वरुप है। तुमने मन्वन्तर त्रय पर्यन्त तीनों लोकको वडे मजेसे भोग करलिया, अब से तुम को इस दैत्यदेह धारण कर बैठना नहीं पडेगा। मेरे लोक के अधः स्थित स्वपुर में जाओगे इत्यादि कह वरदान देकर जब काली अन्तर्ध्यान हो गईं, तब महिषासुर सकल पूर्ववृत्तान्त भूल गया और आसुरी प्रकृति का दुष्ट बनगया। इसलिए दुर्गोत्सव नवरात्र में दुर्गापूजा की ३ प्रकार की विधियाँ होती हैं। एक उग्रचण्डा-कल्प, एक भद्रकाली-कल्प, और एक कात्यायनी-कल्प। उग्रचण्डा का तथा भद्रकाली का ध्यान पूर्वपटलों में ही देचुका हूँ अब दशभुजा कात्यायनी का ध्यान मत्स्यपुराण में ऐसा है:—

"कात्यायन्याः प्रवक्ष्यामि मूर्तिं दशभुजां तथा।
त्रयाणामपि देवानां धर्म्मकामार्थकारिणीम्॥
जटाजूटसमायुक्तामर्धेन्दुकृतलक्षणाम्।
नेत्रत्रयसमायुक्तां पद्मेन्दुसदृशाननाम्॥
अतसीपुष्पवर्णाभां सुप्रतिष्ठां सुलोचनाम्।
नवयौवनसंपन्नां सर्वाभरण भूषिताम्॥
सुचारुदशनां तद्वत्पीनोन्नतपयोधराम्।
त्रिभङ्गस्थानसंस्थानां महिषासुरमर्दिनीम्॥
त्रिशूलं दक्षिणे दद्यात् खड्गं चक्रं क्रमादधः।
तीक्ष्णं बाणं तथा शक्तिं वामतोऽपि निबोधत॥
खेटकं पूर्णचापंच पाशमंकुशमूर्ध्वतः।
घण्टां वा परशुं चापि वामतः सन्निवेशयेत्॥
अधस्तान्महिषं तद्वद्विशिरस्कं प्रदर्शयेत्।
शिरश्छेदोद्भवं तद्वद्दानवं खड्गपाणिनम्॥
सपाशंवामहस्तेन धृतकेशं च दुर्गया।
वमद्रुधिरवक्त्रं च देव्याः सिंहं प्रदर्शयेत्॥
देव्यास्तु दक्षिणं पादं समं सिंहोपरिस्थितम्।
किञ्चिदूर्ध्वं तथा वाममङ्गुष्ठं महिषोपरि॥
स्तूयमानं च तद्रूपममरैः सन्निवेशयेत्॥"

अपने अपने गुरुपरम्परा के मतसे दुर्गोत्सवका नवरात्रविधि पूर्वोक्त ३ प्रकार के होते हैं। और इन की शाखाएँ बहुत हैं। अब सब से प्रथम कात्यायनी-कल्पका वर्णन सक्षेपतः करता हूं। इस कल्प में आश्विन शुक्ल षष्ठी में देवी का प्रबोधन होता है। कालिकापुराण में लिखा है:—

"बोधयेद्बिल्वशाखासु षष्ठ्यां देवीं फलेषु च।
सप्तम्यां बिल्वशाखांतामाहृत्य प्रतिपूजयेत्॥
पुनः पूजां तथाष्टम्यां विशेषेण समाचरेत्।
जागरं च स्वयं कुर्याद्बलिदानं महा निशि॥

प्रभूत बलिदानं च नवम्यां विधिवच्चरेत्।
जपहोमसमायुक्तो भोजयेद्वै कुमारिकाः ॥
ध्यायेद्दशभुजां दुर्गां दुर्गामन्त्रेण पूजयेत् ।
विसर्जनं दशम्यां तु कुर्याद्वै शारदोत्सवैः ॥ "

अर्थात् षष्ठी (सायं) काल में देवी को फलादि तथा विल्व-शाखा में देवी को प्रबोधन कर सप्तमी में वह विल्वशाखा (फलादिनवपत्रिकायुक्त) स्वगृह मे लाकर पूजा करें। फिर अष्टमी में पूजा विशेषरूप से कर महानिशि में बलिदान कर जागरण करें । फिर नवमी में प्रभूत बलिदान कर हवन तथा कुमारीपूजा कर दशमी में विसर्जन करें। ऐसा है, परन्तु ३ दिन की पूजा से ९ दिन की पूजा अधिक फलदायक होने के कारण यामल का " प्रतिपद्येव कर्तव्यं कलशस्थापनं तथा ॥ " इस वचन के आधार से बहुत से गुरुपरंपरा के मत से प्रतिपदा में घटस्थापना कर उस में देवी का आवाहन कर घटस्थजल में सप्तमी के प्रातःकाल तक दुर्गाष्टाक्षरमन्त्र से पूजाकर षष्ठि सायंकाल में पूर्वोक्त विधि से संबोधित नवपत्रिका सप्तमी अपरान्ह काल में गृहप्रवेश कराके एक स्थाली पर रख प्रतिपत्स्थापितघटोपरि स्थापना कर कात्यायनीदुर्गा का आवाहन कर दुर्गाष्टार्ण, जयदुर्गादशार्ण अथवा (त्रिशस्त्र्यात्मिका) चामुण्डानवार्ण मन्त्र से पूजन होता है । इसी प्रकार की मुद्रित पद्धतियाँ भी बहुत प्रकार की दिखलाइ पडती हैं । प्रायशः इस कल्प की दुर्गापूजा प्रचलित होनेका कारण यह है कि यह सौम्यरूप दुर्गा की पूजा है अतः इनका आर्द्रपश्वाचार और शुष्कपश्वाचार से भी पूनज हो सकता है।

अब भद्रकाली–कल्प का वर्णन करता हूँ । इस कल्प का प्रबोधन करने की दो मत हैं । एक मत में शुक्लप्रतिपदा में इन का बोधन होता है ।) इस विषय में महाथर्वण संहिता में लिखा है:- (९)

" इषेशुक्लप्रतिपदि भुजैः षोडशभिर्युताम् ।
बोधयित्वा भद्रकालीं नवम्यन्तं प्रपूजयेत् ॥ "

महाकालसंहितायामपिः—

" प्रतिपद्येव शुक्लायां बोधयित्वा सुरेश्वरीम्।
अभ्यर्चयेन्नवाहानि तन्त्रपौराणिकक्रमैः ॥ "

(फिर अन्य मत में आश्विनकृष्ण चतुर्दशी में इन को यन्त्रादि प्रबोधन कर शुक्ल प्रतिपदा में घटस्थापना कर तदुपरि स्थाली में बोधित यन्त्र रख कर षोडशभुजादुर्गा भद्रकाली का आवाहन कर पूजन होती है ।) इस विषयमें लिङ्गपुराण में लिखा है : (१०)

" यदा तु षोडशभुजां महामायां प्रपूजयेत् ।
दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण विशेषं तत्र वै शृणु ॥
कन्यायां कृष्णपक्षे तु एकादश्यामुपोषितः ।
द्वादश्यामेकभक्तं च नक्तं कुर्यात् परेऽहनि ॥
चतुर्दश्यां महामायां बोधयित्वा विधानतः ।
गीतवादित्रनिर्घोषैर्नानानैवेद्यवेदनैः ॥
अयाचितं बुधः कुर्याद्यावद्वै नवमी भवेत्॥ "

इन की पूजा शुष्कपश्वाचार के सिवाय अन्य आचारों से हो सकती है । इन की पूजा में प्रतिपदा से नवमी तक प्रतिदिन प्रथमतः मूलदेवी भद्रकाली का अपने अपने गुरुपरम्परानुसार

दुर्गाष्टार्ण, जयदुर्गादशार्ण अथवा चामुण्डानवार्ण से अर्च कर तत्पश्चात् पृथक् पृथक् नवदुर्गारुप से पूजा करके दशमी मूलदेवी भद्रकाली में समष्टि करते हैं। उन नवदुर्गाओं मन्त्र त्रितार आदि में उच्चारण कर क्रमशः अँ से अः तक दो स्वर उचारण कर अमुकायै नमः उच्चारण करने से व जाएगा। एवं षोड़शस्वर से ८ दुर्गाओं के मन्त्र हो गए फिर सकल स्वरवर्णों से नवम मन्त्र भी बनजाएगा। पृथक् पृथक् पूजा के विषय में आगम में लिखा है:—

" नवशक्ति समायुक्तं नवरात्रं तदुच्यते।
एकैव देवदेवेशी नवधा परिनिष्ठिता॥ "

कात्यायनी-कल्प में तो ३ दिन का ही विशेष पूजा होने के कारण नवदुर्गा की पृथक् पूजा नहीं होती है। अन्य दो कल्प में नवदुर्गा की पृथक् पूजा होती है। परन्तु भद्रकाली-कल्प के और उग्रचण्डा-कल्प के नाम तथा ध्यान अलग अलग हैं अब मैं यहा भद्रकाली-कल्प की नवदुर्गा का नाम देता हूँ:—

" प्रथमं शैलपुत्रीच द्वितीयं ब्रह्मचारिणी।
तृतीयं चन्द्रघण्टेति कुष्माण्डेति चतुर्थकम्॥
पञ्चमंस्कन्दमातेति षष्ठंकात्यायनी तिच।
सप्तमं कालरात्रीच महागौरीति चाष्टमम्॥
नवमं सिद्धिदात्रीच नवदुर्गा प्रकीर्तिताः॥ "

अब इन नवदुर्गाओं के ध्यान का वर्णन करता हूँ:—

१. शैलपुत्री—

" वन्दे वाञ्छितलाभाय चन्द्रार्धकृतशेखराम्।
वृषारूढां शूलधरां शैलपुत्रीं यशस्विनीम्॥ "

२. ब्रह्मचारिणी—

" दधाना करपद्माभ्यामक्षमालां कमण्डलुम्।
देवी प्रसीदतु मयि ब्रह्मचारिण्यनुत्तमा॥ "

३. चन्द्रघण्टा—

" पिण्डजप्रवरारूढा चण्डकोपास्त्रकैर्युता।
प्रसादं तनुते मह्यं चन्द्रघण्टेति विश्रुता॥ "

४. कुष्माण्डा—

" सुधासम्पूर्णकलशं रुधिराप्लुतमेव च।
दधाना हस्तपद्माभ्यां कूष्माण्डा शुभदास्तु मे॥ "

५. स्कन्दमाता—

" सिंहासनगता नित्यं पद्मान्वितकरद्वया।
शुभदाऽस्तु सदा देवी स्कन्दमाता यशस्विनी॥ "

६. कात्यायनी—

" चन्द्रहासोज्ज्वलकरा शार्दूलवरवाहना।
कात्यायनी शुभं दद्याद् देवी दानवघातिनी॥ "

७. कालरात्री—

" एकवेणी जपाकर्णपूरा नग्नाखरास्थिता।
लम्बौष्ठी कर्णिकाकर्णी तैलाभ्यक्तशरीरिणी॥
वामपादोल्लसल्लोहलताकण्टक भूषणा।
वर्धन्मूर्धध्वजा कृष्णा कालरात्री भयङ्करी॥ "

मतान्तरेऽपि—

" आरक्तभानुशदर्शी यौवनोन्मत्तविग्रहाम् ।
चतुर्भुजां त्रिनयनां भीषणां चन्द्रशेखराम् ॥
प्रेतासनसमासीनां भजतां सर्वकामदाम् ।
दक्षिणे चाभयं पाशं वामे भुवनमेवच ॥
रक्तदण्ड धरां देवीं कालरात्रीं विचिन्तयेत् ॥ "

८. महागौरी—

" श्वेते वृषे समारूढा श्वेताम्बरधरा शुचिः ।
महागौरी शुभं दद्यान्महादेवप्रमोददा ॥ "

९. सिद्धिदात्री—

" सिद्धगन्धर्वयक्षाद्यैरसुरैरमरैरपि ।
सेव्यमानासदाभूयात् सिद्धिदा सिद्धिदायिनी ॥ "
शंखचक्रगदापद्म धरा स्वर्णप्रभानना ॥ "

भद्रकाली कल्प के विषय में मुझे इतना ही मालूम है ।

अब उग्रचण्डा-कल्प का वर्णनकरता हूं । इस कल्प में आश्विनकृष्ण नवमी मध्यान्हकाल में करवाल में देवी को प्रबोधन कर प्रतिपदा में घटस्थापना कर तदुपरि पात्र मे करवाल स्थापन कर नवरात्र पर्यन्त पूजा होती है । इस विषय मे महाथर्वण संहिता मे लिखा है: -

" अष्टादशभुजादुर्गा उग्रचण्डेति या स्मृता ।
सैवेयं षोडशभुजा भद्रकालीति गीयते ॥
दशभिर्बाहुभिर्युक्ता सैव कात्यायनी स्मृता ।

भिन्नध्याना कल्पभेदान्महिषासुरमर्दिनी ॥
कालभेदे बोधनीया सा दुर्गोत्सवकर्म्मणि ।
आश्विनासितपक्षे तु दिवा संपूज्य भक्तितः ।
खड्गे नवम्यामाद्रायामुग्रचण्डां प्रबोधयेत् ॥ "

लिङ्गपुराणे—

" यदा त्वष्टादशभुजां महामायां प्रपूजयेत् ।
कन्यायां कृष्णपक्षे तु पूजयित्वार्द्रभे दिवा ॥
नवम्यां बोधयेद्देवीं गीतवादित्रनिः स्वनैः ।
शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तु देवीकेशविमोचनम् ॥
प्रातरेव तु पञ्चम्यां स्नापयेयुः शुभैर्जलैः ।
सप्तम्यां पत्रिकापूजा अष्टम्यां चाभ्युपोषणम् ॥
पूजाच जागरश्चैव नवम्यां विधिवद्बलिः ।
संप्रेषणं दशम्यां तु क्रीडाकौतुकमङ्गलैः ॥ "

(इनका भी भद्रकाली वत् प्रतिदिन प्रथम उग्रचण्डा की पूजा कर पश्चात् क्रमशःरुद्रचण्डादि दुर्गाओं की अष्टमी तक पूजाकर अष्टमी महानिशि में मूलदेवी उग्रचण्डा में समष्टि कर महापूजा तथा नवमी में भी प्रभूतवलिदान के साथ मूलदेवी का ही अर्चन कर दशमी में विसर्जन होगा । इस कल्प में रुद्रचण्डादि अष्टशक्तियों के साथ मूलदेवी उग्रचण्डा के ; नवदुर्गायें मानी-गई हैं । उग्रचण्डा का तो अपना ही द्वात्रिंशाक्षरी मन्त्र होने के कारण इस कल्प में मूलदेवी की अन्य मन्त्र से पूजा की जरुरत नहीं है । रुद्रचण्डादि अष्टदेवीयों के विषय में पंचतार के पश्चात् दो दो स्वरवर्ण तथा ङेयुत नाम और नमोन्त से मन्त्र बनेगा) इन शक्तियों के नाम ये हैं:-

" रुद्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ।
चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपातिचण्डिका ॥ "

१, रुद्रचण्डा ध्यानम्—

" खड्गं वज्रं शरं चक्रमंकुशं च तथैवच ।
वरंत्रिशूलं पात्रञ्च दक्षिणेन विराजते ॥
खेटकञ्च तथा घण्टां धनुश्चाभयपाशकम् ।
तर्जनीं दैत्यकेशञ्च विन्दुमुद्राञ्च वामके ॥
ससिंहमहिषारुढ़ां रोचनारूपशोभिताम् ।
ध्यायेत्वां च महादेवि रुद्रचण्डि नमोऽस्तु ते ॥ "

२, प्रचण्डाध्यानम्—

" खड्गं शक्ति शरं चक्रं वज्रं च वरदं तथा ।
त्रिशूलं च तथा पात्रं दक्षहस्तेषु विभ्रती ॥
खेटकं दर्पणं चैव धनुश्चाभयघण्टकाम् ।
तर्जनीं दैत्यकेशं तु विन्दुमुद्रां च वामके ॥
सिंहमहिषमारुढारुणाभारूपसन्निभा ।
एवंरूपां महादेवीं प्रचण्डां च नमोऽस्तुते ॥
आग्नेयरक्तश्यामं तु सव्यहस्ते जलं चरु ।
प्रचण्डात्वं प्रसन्नोऽयं सिद्धिसर्वार्थसाधकम् ॥"

३. चण्डोग्राध्यानम्—

" खड्गं दण्डं शरं चक्रं वज्रं वरत्रिशूलकम् ।
पानपात्रं तथा ध्याये दक्षहस्तेषु विभ्रतीम् ॥
फेटकं तु पाशं धनुः गदां घण्टां च तर्जनीम ।
दैत्यकेशं विन्दुमुद्रां वामहस्तेषु धारिणीम् ॥

सिंहमहिषमारुढां कृष्णवर्णाङ्ग भूषणाम् ।
एवं ध्यात्वा महादेवीं चण्डोग्रायै नमोऽस्तुते ॥"

. चण्डनायिका ध्यानम्—

" खड्गं च रत्नज्वालां तु शरचक्रं च वज्रकम् ।
अंकुशं च त्रिशूलं च पात्रं विभ्रति दक्षिणे ॥
फेटकं तर्जनिधनुगदाघण्टांश्चपाशकम् ।
दैत्यकेशं विन्दुमुद्रां वामहस्तेषु शोभिते ॥
सिंहासनस्थिते देवि महामहिषगामिनि ।
धूम्रवर्णे महादेवि नमस्ते चण्डनायिके ॥ "

५. चण्डा ध्यानम्—

" श्वेतवर्णा त्रिनेत्राच यौवनी च सुरूपिणी ।
खड्गं पाशं शरं चक्रं वज्रं वरत्रिशूलिनी ॥
पात्रं दक्षिण हस्तेषु रत्नालंकार भूषिता ।
फेटकांकुशधनुषं गदां घण्टां तु तर्जनीम् ॥
दैत्यकेशं विन्दुमुद्रां वाम हस्तेषु विभ्रती ।
एवं रूपा तु सा देवी श्रीचण्डायै नमोऽस्तुते ॥ "

६. चंडवती ध्यानम्—

" श्यामवर्णां त्रिनयनां सिंहमहिष गामिनीम् ।
खड्गं ध्वजं शरं चक्रं वज्रं च वरमेवच ॥
त्रिशूलं पात्रं हस्तेषु दक्षिणेन च धारिणीम् ।
फेटक पाशं धनुषं गदां घण्टां सतर्जनीम् ॥
दैत्यकेशं विन्दुमुद्रां वामहस्तेषु धारिणीम् ।
सर्वरत्नाङ्गभूषाङ्गीं चण्डवतीं नमोऽस्तुते ॥ "

७. चण्डरूपा ध्यानम्—

" सिंहासना महिषस्था पीतवर्णा गुणप्रभा।
पाशं गदां शरं वज्रं चांकुशं वरदं तथा॥
त्रिशूलं पात्रं दक्षेतु नानालंकारभूषिताम्।
फेटकं चक्रं धनुषं घण्टां पाशं च तर्जनीम्॥
दैत्यकेशं विन्दुमुद्रां वाम हस्तेषु धारिणीम्।
त्रिनेत्रां यौवनीं देवीं नमस्ते चण्डरूपिणीम्॥ "

८. अतिचण्डिका ध्यानम्—

" श्वेतवर्णां त्रिनेत्रांच हरिमहिषगामिनी।
कलापोडपसंयुक्ता नानारत्नविलम्विता॥
खड्गंत्रिशूलं वाणं च चक्रचिह्नादिमंकुशम्।
वरदं पाशंपात्रं च दक्षिणेन विराजिता॥
फेटकं दैत्यकेशं च धनुर्गदां च घण्टकाम्।
पाशं तर्जनि विन्दुं च वामहस्तेषुधारिणीम्॥
एवं ध्यात्वा महादेवी मतिचण्डि नमोऽस्तुते॥"

ऊपर लिखेहुए ध्यानादि जैसे व्याकरण विरुद्ध पदों का प्रयोग प्राचीन हस्तलिखित तन्त्रग्रन्थों और पद्धतियों में बहुत देखने में आता है, परन्तु हमलोग उन सबको आर्षप्रयोग मानते हैं। कहीं कहीं तो श्लोकों में भी छन्दभङ्ग और यतिभङ्ग भी बहुलता से देखने में आते हैं। उग्रचण्डा का ध्यान पिछले अङ्क में देचुका हूं। (महिषमर्दिनी भी दुर्गाका ही भेद है, इन का भी सभी आम्नायों से उपासना होती है।)इनके मन्त्र ध्यानादि शारदातिलक में ऐसे लिखा है:–

" भ.न्तं वियत्सनयनं श्वेतो मर्दिनि ठद्वयम्।
अष्टाक्षरी समाख्याता विद्या महिषमर्दिनी॥
महिषहिंसिके हुँ फट् हृदयं परिकीर्तितम्।
महिषशत्रोसार्पि हुँ फट् शिरोङ्गं समुदाहृतम्॥
महिषं द्वेश्यद्वन्द्वं हुँ फडन्तः शिखामनुः।
महिषं हनयुग्मान्ते देवि हुँ फट् तनुच्छदम्॥
महिषान्ते सूदिनि हुफडन्तं शस्त्रमीरितम्।
मन्त्रैरेतैर्जातियुक्तैः पञ्चाङ्गानि प्रकल्पयेत्॥"

विश्वसारतन्त्रेऽपि—

" त्रैलोक्यवीजभूतान्ते संवोधनपदं ततः।
सृष्टिसंहारकौ वर्णौ विद्योमहिषमर्दिनी॥
प्रणवाद्यां जपेद्विद्यां मायाद्यां वा जपेत् सुधीः।
वधूवीजादिकां वाऽपि कवचाद्यां जपेत् तथा॥ "

अस्या ध्यानम्—

" गारुडोपलसन्निभां मणिमौलिकुण्डलमण्डिताम्।
नौमि भालविलोचनां महिषोत्तमाङ्गनिषेदुषीम्॥
चक्रशंखकृपाणखेटकवाणकार्मुकशूलकान्।
तर्जनोमपि विभ्रतीं निजवाहुभिः शशिशेखराम्।"

(शूलिनी भी दुर्गा का भेद तथा छओं आम्नायों में पूजित हैं। इन के मन्त्र ध्यानादि शारदातिलक में ऐसे हैं:–

" ज्वल ज्वल पदस्यान्ते शूलिनोति पदं वदेत्।
दुष्टग्रहं हुमखान्ते वह्निजायावधिर्मनुः॥

पंचाग्निर्दशभिः प्रोक्तो ग्रहशत्रुविनाशनः ।
ऋषिर्दीर्घतया प्रोक्तः ककुप्छन्द उदाहृतम् ॥
शूलिनी देवता प्रोक्ता समस्तसुरवन्दिता ।
दुर्गे हृद्वरदे शीर्षं विन्ध्यवासिनि तच्छिखा ॥
असुरान्ते मर्दिनी स्याद्युद्धपूर्वप्रिये पुनः ।
त्रासयद्वितयं वर्म देवसिद्धसुपूजिते ॥
नन्दिनी स्याद्रक्षयुगं महायोगेश्वरी क्रमात् ।
शूलिन्याद्या हुंफडन्ताः पञ्चाङ्गमनवः स्मृताः ॥"

अस्या ध्यानम्—

"अध्यारूढां मृगेन्द्रं सजलजलधरश्यामलां हस्तपद्मैः ।
शूलं बाणं कृपाणीमरिजलजगदाचापपाशान् वहन्तीम् ॥
चन्द्रोत्तंसां त्रिनेत्रां चतसृभिरसिना खेटकान् बिभ्रतीभिः
कन्याभिः सेव्यमानां प्रतिभटभयदां शूलिनीं भावयामि ।

अन्नपूर्णा के विषय में आगे ही देचुका हूँ । कराली शाये गुह्यकाली के भेदों में से कोई एक विद्या होगी । ज्वालामालिनी और कामिनी ये विद्यायें मेरे क्रम में न होने के कारण मु मालूम नहीं हैं ।

अष्टवटुकों, अष्टक्षेत्रपालों तथा चतुःषष्टियोगिनियाँ २ छओं आम्नायों में पूजित होवे हैं। अतएव हरएक पूजा अन्त में कृच्छ्रान्न अथवा अन्य बलि हरएक आम्नाय में देना पड़ेगा। स्थान अपनी अपनी गुरुपरम्परा के अनुसार पृथ पृथक् दिशा में हो सकता है। अष्ट वटुकों के नाम यह हैं। १ कालवटुक। २. शङ्करवटुक। ३ मातृवटुक। ४ देवीवटुक।

स्थानवटुक। ६ मेघवटुक। ७ चन्द्रवटुक। ८ विनायकवटुक। इन में समष्टिरूप वटुक भैरव हैं) उन का मन्त्र ध्यानादि ऐसा है:-

"प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य हृल्लेखाबीजमुद्धरेत् ।
वटुकाय पदं पश्चादापदुद्धारणायच ॥
कुरुद्वयं समुच्चार्य मायां तारं समुद्धरेत् ।
वह्निजायान्वितो मन्त्रो वटुकस्य प्रकीर्तितः ॥"

शारदायाम् महामन्त्र-

"उद्धरेद्वटुकं ङेऽन्तमापदुद्धारणं तथा ।
कुरुद्वयं पुनर्ङेन्तं वटुकं तं समुद्धरेत् ॥
एकविंशत्यक्षरात्मा शक्तिरुद्धो महामनुः ।
अभीष्टफलसंसिद्ध्यै कीर्तितः सुरपादपः ॥
बृहदारण्य ऋषिश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ।
आपदुद्धारणो देवो भैरवो देवता बुधैः ॥
अङ्गुलीदेहवक्त्रेषु मूर्त्तीन्यस्येत्तथा पुरा ।
सद्यादिपञ्चह्रस्वाढ्यं शक्तिबीजं पुरःसरम् ॥
वकारं पंचह्रस्वाढ्यमीशानादिषु योजयेत् ।
षड्दीर्घयुक्तया शक्त्या वकारेणच तद्वतः ॥
अङ्गानि जातियुक्तानि प्रणवाद्यानि कल्पयेत् ॥"

अस्य ध्यानम्:—

"तस्यध्यानं त्रिधाप्रोक्तं सात्विकादिविभेदतः ॥"

सात्विकम्:—

"वन्दे बालं स्फटिकसदृशं कुण्डलोद्भासिवक्त्रम् ।
दिव्याकल्पैर्नवमणिमयैः किंकिणीनूपुराद्यैः ॥

दीप्ताकारं विसदवसनं सुप्रसन्नं त्रिनेत्रम् ।
हस्ताब्जाभ्यां बटुकमनिशं शूलदण्डौ दधानम् ॥

राजसम्:—

" उद्यद्भास्करसन्निभं त्रिनयनं रक्ताङ्गरागस्रजम् ।
स्मेरास्यं वरदं कपालमभयं शूलं दधानं करैः ॥
नीलग्रीवमुदारभूषणधरं शीतांशुचूडोज्वलम् ।
बन्धूकारुणवाससं भयहरं देवं सदा भावयेत् ॥

तामसम्:—

ध्यायेन्नीलाद्रिकान्तं शशिशकलधरं मुण्डमालां महेशम् ।
दिग्वस्त्रं पिङ्गकेशं डमरुमथ सृणिं खड्गपाशाभयानि ॥
नागं घण्टां कपालं करसरसिरुहैर्विभ्रतं भीमदंष्ट्रम् ।
सर्पाकल्पं त्रिनेत्रं मणिमयविलसत्किङ्किणीनूपुराढ्यम् ॥

फलम्—

" सात्त्विकं ध्यानमाख्यातमपमृत्यु निवारणम् ।
आयुरारोग्यजननमपवर्गफल प्रदम् ।
राजसं ध्यानमाख्यातम् धर्मकामार्थसिद्धिदम् ।
तामसं शत्रुशमनं कृत्याभूतग्रहापहम् ॥"

अष्टक्षेत्रपालों के नाम यह हैं। १. हेतुक क्षेत्रपाल। २. त्रिपुरान्तक क्षेत्रपाल। ३. वेताल क्षेत्रपाल। ४ अग्निजिह्व-क्षेत्रपाल। ५ काल क्षेत्रपाल। ६. कराल क्षेत्रपाल। ७ एकपाद क्षेत्रपाल। ८. भीमरुप क्षेत्रपाल। इन के समष्टिरुप क्षेत्रपाल भैरव है। इनका मन्त्र ध्यानादि शारदातिलक मे ऐसा है।

" वर्णान्त्यमौविन्दुयुक्तं क्षेत्रपालाय हृन्मनुः ।

ताराद्यो वसुवर्णोऽयं क्षेत्रपालस्य कीर्तितः ॥
षड्दीर्घ भाजा बीजेन षडंगान्यस्य योजयेत् ॥"

अस्य ध्यानम्—

" नीलाञ्जनाद्रिनिभमूर्ध्व पिशङ्ग केशम् ।
वृत्तोग्रलोचनमुपात्तगदाकपालम् ॥
आशाम्बरं भुजगभूषणमुग्रदंष्ट्रम् ।
क्षेत्रेशमद्भुततनुं, प्रणमामि देवम् ॥"

(योगिनीयों के भेद चतुःषष्टि हैं। फिर गुरुपरंपरा भेद से ६४ योगिनीयों के नाम में भी बहुत भेद हैं) अतः उनमें से समष्टि योगिनी का ध्यान ऐसा है:—

" शंख चक्रयुधां व्यक्तां गौरीं संकुचितालकाम् ।
सिंहस्थां खड्गचर्माढ्यां वन्दे सर्वार्थसिद्धिदाम् ॥"

उपर्युक्त पृथक पृथक ८ वटुकों, ८ क्षेत्रपालों, और ६४ योगिनीयों के मन्त्र ध्यानादि पृथक् पृथक् हो सकते हैं। परन्तु मुझे मालूम नहीं हैं, क्यों कि मैंने केवल समष्टिरूप के ही मन्त्र ध्यानादि सीखे हैं, और उतने से ही काम चलरहा है।

वटुक यन्त्र सिद्धान्तसंग्रह में तथा मेरुतन्त्र में ऐसा है:—

" शैवे पीठे यजेद्देवमन्तर्व्योमाष्टपत्रकम् ।
ऊर्ध्वं त्रिकोणषट्कोणमष्टपत्रं गृहावृतम् ॥"

क्षेत्रपाल यन्त्रम् तत्रैव—

" शैवे पीठे यजेदष्टपत्रे दिक्स्वरभूषिते ॥"

(अत्र ब्राह्मयाद्यष्टमातृकायें भी छओं आम्नायो में पूजित हैं।

उन के भी मन्त्र ध्यानादि के अनेक भेद हैं, परन्तु केवल एक ही से कामचलने के कारण मैं केवल एक एक के ही मन्त्र ध्यानादि देता जाऊँगा। अष्टमातृकाओं के नाम परातन्त्र की उक्ति से हि देचुके हैं।

१. ब्रह्माणी मन्त्रः—

" आमित्येकाक्षरं बीजं मुनिर्वाचस्पतिर्मतः।
गायत्री छन्दउद्दिष्टं वः शक्तिः कीलकं वचः॥
षड्दीर्घेनैव बीजेन षडङ्गानि प्रकल्पयेत्॥"

अस्या ध्यानम्—

" ध्यायेद्ब्राह्मीं पलाशस्थां हंसारूढां चतुर्भुजाम्।
अक्षमालावराभीतिकमण्डलुकरारुणाम्॥"

२. माहेश्वरीमन्त्रः—

" ॐ ह्रीँ नमो भगवति माहेश्वर्यै हि संवदेत्।
परमे पदमुच्चार्यैश्वर्यै स्वाहान्तको मनुः॥
तारादिरेकविंशर्णोऽश्वारुढा तत्परं मतम्॥"

अस्या ध्यानम्—

" वृषारूढां भालचन्द्रां त्रिनेत्रां शशिसन्निभाम्।
दधतीं शूलडमरू महाहिवलयां भजे॥"

३. कौमारीं मन्त्रः—

" क्रौँ कौमार्यै नम इति षडर्णो मन्त्र ईरितः।
मुनिर्ब्रह्मा च गायत्री छन्दः कौमारिका भवेत्॥

देवता क्रोमिदं बीजं कौमार्यै शक्तिरुच्यते।
मन्त्रवर्णैः षडङ्गानि हृदि ध्यायेच्च देवताम्॥"

अस्या ध्यानम्—

" शक्त्यक्षस्रग्वराभीतिकरां बन्धूकसन्निभाम्।
मयूरध्वजिनीं रक्तवस्त्रामौदुम्बरस्थिताम्॥
हरितकञ्चुकिकां रम्यां नानालङ्कार भूषिताम्॥"

४ वैष्णवी मन्त्रः—

" नमोऽन्ते च वैष्णव्यै मन्त्रः प्रोक्तः षडक्षरः।
मन्त्रार्णैरत्र चाङ्गानि शेषं पूर्ववदाचरेत्॥"

अस्या ध्यानम्—

" शङ्खचक्रगदापद्मधरां पीताम्बरावृताम्।
घनश्यामास्यकमलां स्मितां श्रीवैष्णवीं भजे॥"

५. वाराही मन्त्रः—

" अथ वार्तालिकां वक्ष्ये वाराहीं शत्रुघातिनीम्।
ऐँ ग्लौँ ठँ ठँ ठमिति हुँ स्वाहान्तोऽष्टाक्षरो मनुः॥
छन्दोऽनुष्टुप् च कपिलो मुनिर्वार्तालिका सुरी।
वाराह्यत्र षडङ्गानि क्रमाद्द्विभिर्बिन्दुभूभूभिः॥

अस्या ध्यानम्—

" द्वाभ्यां " ध्यायेत् ततो देवीं विद्युद्धासां कराम्बुजैः।
दधानामंकुशं पाशं मुद्गर शक्ति मेवच॥
विद्युद्धासां त्रिनेत्रां च नाशयन्तीं तथा रिपून्।"

६ इन्द्राणी मन्त्रः-

" अथातः संप्रवक्ष्यामि इन्द्राणीं नृपराज्यदाम् ।
ईं इन्द्राण्यै नम इति मन्त्रः प्रोक्तः षडक्षरः ॥
गुरुर्मुनिश्च गायत्री छन्दो देवीन्द्रवल्लभा ।
ईंबीजं शक्तिरिन्द्राण्यै नमः कीलकमुच्यते ॥ "

अस्या ध्यानम्:-

" वज्रपाशवराभीतिहस्ता श्यामाम्बरावृता ।
चतुर्दन्तगजारूढ़कल्पच्छायासंस्था हिरण्यभा ॥ "

७. चामुण्डा मन्त्रः-

" मायाबीजं समुच्चार्य चामुण्डां ङेयुतां पुनः ।
नमोऽन्तो नगवर्णोऽयं मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥
शिवो मुनिश्च गायत्री छन्दोऽमुष्य च देवता ।
चामुण्डा मन्त्रवर्णैश्च द्विरावृत्या षडङ्गकम् ॥ "

अस्या ध्यानम्:—

" नीलोत्पलदलश्याम चतुर्बाहुसमन्विता ।
खट्वाङ्गं चन्द्रहासं च बिभ्रती दक्षिणे करे ॥
वामे चर्म्म च पाशं च ऊर्ध्वतो भावतः पुनः ।
दधती मुण्डमालां च व्याघ्रचर्माम्बरधरा ॥
कृशाङ्गी दीर्घदंष्ट्रा च अतिदीर्घाऽतिभीषणा ।
कबन्धवाहनासीना विस्तारिश्रवणानना ॥ "

८. महालक्ष्मी मन्त्रः-

" मायाबीजं समुद्धृत्य स्वबीजं च समुद्धरेत् ।

ततो ङेन्ता महालक्ष्मीर्नमोऽन्तोष्टाक्षरो मनुः ॥
मुनिरस्य शिवः प्रोक्तो गायत्री छन्द ईरितम् ।
देवता तु महालक्ष्मीर्मन्त्रवर्णैः षडङ्गकम् ॥ "

अस्या ध्यानम्:—

" सुवर्णवर्णदीप्ताङ्गी त्रिनेत्रा सिंहवाहिनी ।
ईषत्प्रहसिता देवी नीलोत्पलदलेक्षणा ॥
भुजषोडशसम्पन्ना सर्वालङ्कारभूषिता ।
खड्गं घण्टां शरं सूत्रमङ्कुशं शूलपद्मकम् ॥
दधाना दक्षिणैर्हस्तैरनाथेभ्यो वरप्रदा ।
तथा वामैर्हस्तपद्मैः खेटकं डिण्डिमं धनुः ॥
कमण्डलुं नागपाशं कपालं पुस्तकाभयम् ।
जाज्वल्यमाना तेजोभिस्तीव्राह्लादकारिणी ॥ "

दक्षिणाकालीकल्प में अष्टमातृकाओं के क्रम पृथक् हैं फिर तीन विद्याएँ भी पृथक् हैं। वे ऐसे हैं ।१ ब्रह्माणी । २ नारायणी ३ माहेश्वरी । ४ चामुण्डा । ५ कौमारी । ६ अपराजीता । ७ वाराही । ८ नारसिंही । इन में से नरायणी, अपराजिता, तथा नारसिंही के अतिरिक्त अन्य मातृकाओं का वर्णन ऊपर ही दे चुका हूँ । अब नारायणी के मन्त्र ध्यानादि ऐसे हैं:—

" प्रणवं पूर्वमुच्चार्य स्वबीजं च समुच्चरेत् ।
ङेन्तां नारायणीं प्रोच्य नमोऽन्तोष्टाक्षरो मनुः ॥"

अस्या ध्यानम्—

" उद्यद्भानुसहस्राभां शङ्खं पङ्कज धारिणीम् ।
गदां रथाङ्गं दधतीं पीताम्बर धरां शुभाम् ॥

भजे नारायणीं देवीं पीनोन्नत पयोधराम् ॥ ''

अपराजिता (मातृका) जो हैं, वह पूर्वोक्त (पूर्वाम्नायात्मिका) अपराजिता नहो कर वैष्णवी (मातृका) का रूपान्तर अपराजिता वैष्णवी हैं।) उन के मन्त्र ध्यानादि मेरुतन्त्र में इस प्रकार के हैं:—

" अथातः संप्रवक्ष्यामि वैष्णवीमपराजिताम् ।
तारमाकर्षिणिपदमावेशिनि ततो वदेत् ॥
ज्वालामालिनि रमणि रामणि धरणीति च ।
धारणि तपनोत्युक्तो तापिनि मनोन्मादिनि ॥
शोषिणीति पदं प्रोच्य ततः संमोहिनीति च ।
तथा नीलपताके च महानीले महाग्रीये ॥
महाग्नेयि महाचण्डे महारौद्रि महेति च ।
वज्रिणीति तथादित्यरश्मिजाह्नवि संवदेत् ॥
यमघण्टे किलि किलि चिन्तामणिपदं वदेत् ।
सुरभिसुरोत्पन्ने च सरस्वतिपदं ततः ॥
सर्वकामदुघे प्रोच्य यथा मम मनोषितम् ।
कार्यं तन्मे सिध्यत्विति स्वाहान्तोऽय मनुर्मतः ॥
षड्द्वादशार्णो मुन्यादिः प्राग्वत् सौख्यप्रदो मनुः ।
जपेद्वर्णशतं होमादिकं पूर्ववदाचरेत् ॥ "

अस्या ध्यानम्:—

" शोणपद्मप्रतीकाशां मुक्तमूर्धजलाम्बिनीम् ।
लसत्काञ्चनसम्भूतकुण्डलो ज्वलशालिनीम् ॥
स्वर्णरत्नसमुन्नद्धकिरीटसूत्रधारिणीम् ।

कृष्णशुक्लारुणैर्नेत्रैस्त्रिभिश्चारुविभूषिताम् ॥
बन्धूकदन्तवसनां शिरीषप्रभनासिकाम् ।
कम्बुग्रीवां विशालाक्षीं सूर्यकोटिसमप्रभाम् ॥
चतुर्भुजां सुवसनां पीनोन्नतपयोधराम् ।
दक्षिणाभ्यां कराभ्यां तु खड्गं च जपमालिकाम् ।
बिभ्रतीं वामहस्ताभ्यामभयंचवरं तथा ।
अनल्पनागनोसोरुं गुप्तगुल्फां सुपार्ष्णिकाम् ॥
गात्रेण रत्नस्तम्भं च सम्यगालम्ब्य संस्थिताम् ।
किमिच्छसीति वचनं व्याहरन्तीं मुहुर्मुहुः ॥
पञ्चाननं पुरः संस्थं निरीक्षन्तीं स्ववाहनम् ॥ "

नारसिंही के मन्त्र ध्यानादि गौरीकञ्चुकीतन्त्र में ऐसे लिखे हैं:—

" संवर्तको वह्निसंस्थस्संकर्षणसमाश्रितः ।
नादबिंदुः समायुक्त इत्थबीजं समुद्धरेत् ॥
नारसिंह्यै पदंद्यान्नमोऽन्तोऽलोभवेन्मनुः ॥ "

अस्या ध्यानम्:—

" नारसिंहीं नृसिंहस्य बिभ्रतीं सदृशं वपुः ।
चक्रं चापं तथा बाणं तत्वमुद्राश्चबिभ्रतीम् ॥
वराभयकरां वन्दे ज्वलत्कालानलप्रभाम् ॥ "

इन तीनों विद्याओं का केवल दक्षिणाम्नाय से ही उपासना होता है।

(अब एक रहस्य जानने की बात है कि अन्यकल्प से पृथक् दक्षिणकाली के कल्प में अष्टमातृकाएँ इस प्रकार की क्यों हुई?

इस का रहस्य यह है कि अन्य विद्याओं की षोडश कलायें हैं, परन्तु दक्षिणकालीका की एक कला शाम्भवी विद्या होने के कारण केवल पन्द्रह कलायें समझकर उन की ही पूजा होती है। अब प्रश्न यह है कि दक्षिणकाली-विद्यामें केवल १५ कलायें क्यों हुईं ? केवल १५ कलायें होने से क्या यह विद्या अपूर्ण है ? इन की एक कला शाम्भवी विद्या क्यों हुईं ? अन्य आम्नायों की शक्तियों में और दक्षिणाम्नाय की भी आद्याकाली महोग्रतारा इत्यादि शक्तियों में क्या शाम्भवी विद्या नहीं है ? शाम्भवी विद्या के तत्व और रहस्य क्या है? यदि अन्य विद्याओं में भी शाम्भवी विद्या है तो किस-किस आम्नाय में किस किस प्रकार की है ? यह सब रहस्य रश्मिसहित षड़न्वयशाम्भवदीक्षित तथा पूर्णाभिषेक्त षड़ाम्नायवेत्ता गुरुवक्त्र से ही मन्त्रार्थ, ध्यानार्थ (स्वरुपार्थ) तथा (आवरणदेवताओं के नाम और स्वरुप का विचार विवेक) यन्त्रार्थ के आलोचना के साथ अर्थों का ऐकी करण करा के जानलेना चाहिए यहाँ मैं बहुत ही संक्षेपतः सूचित करता हूँ। देखिए दक्षिणाम्नाय के विवरण में मैंने संक्षेपतः श्यामाकाली (दक्षिणकाली) के मन्त्रार्थ और ध्यानार्थ का ऐक्याभाव दिखाकर यह विद्या विरजा है यहबात बता चुका हूँ। अतः अन्य विद्यायें त्रिगुणात्मिका होने के कारण षोडशकलायुक्त हैं, परन्तु दक्षिणकाली विद्या में सत्वगुण का लेस मात्र रहकर गुणातीता होने के कारण केवल १५ कलायुक्त हुईं। इन के रुप में ललजिह्वा निकाल के लहलहा रही हैं यह रजोगुण तथा तमोगुण के बहिष्कार का सूचक तथा श्वेतघोर दंष्ट्रा सत्वगुण सूचक होकर रजोगुणसूचक रक्तजिह्वा को दबा रखा है इत्यादि सूचना से दक्षिणकाली विरजा

हुईं यह बात पूर्व ही बताचुका हूँ। अब याद रखने की बात यह है कि जैसा मन्त्र तथा स्वरुप (ध्यान) का ऐक्य है, वैसाही यन्त्र और स्वरुप का ऐक्य है। मूल देवी जब यन्त्ररुप में परिणत होंगी तब उनका प्रत्येक अङ्ग प्रत्यंग आवरण देवताओं के रुप में परिणत होगा। इस विषय मे तन्त्रसद्भाव में लिखा है:—

" एवं रुपं परंतेजः श्रीचक्रवपुषास्थितम् ॥
तदीयशक्तिनिकरस्फुरदूर्मिससावृतम् ॥ "

श्रीचक्र के विषय में निगम का श्रुति वचन ऐसा है:-

" परमकारणभूता शक्तिः केन नवचक्ररूपो देहः।
नवचक्रशक्तिमयं श्रीचक्रं वाराही पितृरूपा ॥
कुरुकुल्लाचील देवता माता पुरुषार्थाः सागरा।
देहो नवतत्नद्वीपः ॥ " इत्यादि ।

ऐसा ही सकल देवता ओं के यन्त्रों का अवस्था है। अब आइए दक्षिणकाली की ओर जाएँ। दक्षिणकाली का स्वरुप में रजोगुण और तमोगुण नरहने के कारण उन के यन्त्र के आवरण देवताओं में तमोगुणी तथा रजोगुणी देवता नहीं रहसकता अतः अपराजिता तो वैष्णवी का ही रूपान्तर है उन की तो बात ही नहीं हुई। इन्द्रायणी तथा महालक्ष्मी की जगह नारायणी तथा नारसिंही रहगई हैं। अब फिर यहाँ दूसरे प्रश्न की बात आई कि इन्द्रायणी तथा महालक्ष्मी किस प्रकार रजोगुणी तथा तमोगुणी मानी गई ? इस विषय में तो उन के ध्यानार्थों तथा मन्त्रार्थों के उद्धार करने सें स्पष्टीकरण हो सकेगा। परन्तु यहाँ मैं वह न कर एक साधारण उपमा देकर आपलोगों को

संझाउँगा देखिए इन्द्र स्वर्गलोक के राजा हैं और इन्द्राणी उनकी शक्ति हैं, राजसीशक्ति के विना कोई भी राजा नहीं बन सकता। अतः इन्द्राणी रजोगुणात्मिका सिद्ध हुई। महालक्ष्मी का रुप ही वित्त है, वित्त ही काम क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मात्सर्य की जड़ है। फिर देखिए सत्वगुणीदेवोपासना सिद्ध करने के लिए पूजान्त में जप, ध्यान, स्तुति पाठ तथा योगादि कर्म कर अपना सत्वगुण बढानेको चेष्टा करनी चाहिये। वैसाही रजोगुणी देवोपासना सिद्ध करने के लिए पूजान्त में गायन, नर्तन तथा किर्तनादि कर्म्म कर अपना रजोगुण बढाने की चेष्टा करनी चाहिए। एवं हो तमोगुणी देवोपासना सिद्ध करने के लिए पूजान्त में द्यूतक्रीडादि अनेक खेलवाडकर अपना तमोगुण बढाने की चेष्टा करनी चाहिए। क्यों कि उपास्य देवता जैसा उपासक भी होना चाहिए। लिखा भी है कि "देवो भूत्वा यजेद्देवम्"। "कोजाग्रत पूर्णिमा में महालक्ष्मी की पूजा के अन्त में द्यूतक्रीड़ा करके रात्रि में जागरण करने सें लक्ष्मी प्रसन्न होंगी।" यह बात शास्त्र में बताई है। अतः महालक्ष्मी तथा बहुतसी लक्ष्मी के भेदान्तर तमोगुणात्मिक सिद्ध हुईं। अन्य ब्राह्मयादि अष्टमातृकाओं में से कोई सत्व और रजोगुण मिश्रिता, कोई रजोगुण तथा तमोगुण मिश्रिता हैं केवल सत्वगुणी तथा त्रिगुणात्मिका कोई भी नहीं हैं। क्षुद्रविद्याओं में से कोई रजोगुण तथा तमोगुण मिश्रिता और कोई केवल तमोगुणात्मका हैं। उन मे सत्वगुणका लेश मात्र भी नही फिर केवल रजोगुणात्मिका भी नहीं हैं। मातृकाओं के अतिरिक्त अन्य सकल सिद्धविद्यायें तथा दक्षिणकाली के अतिरिक्त सकल महाविद्यायें त्रिगुणात्मिका हैं। किसी में सत्वगुणाधिक, किसी में रजोगुणाधिक और किसी में तमोगुणाधिक हैं। मतान्तरमें महाविद्या में नीलाकाली (तारा)

सत्वगुणी मे प्रपञ्चेश्वरी रक्तकाली (षोडशी श्रीविद्या) रजोगुणी तथा कमलात्मिका तमोगुणी देवता माने गये हैं। तथापि ये विद्यायें त्रिगुणात्मिका ही हैं परन्तु उन्हों में तत्तत् गुण अधिक तर से विद्यमान है। महाविद्या में से श्रीविद्या तथा सिद्धविद्या में से गुह्या (गुह्यकाली) विद्या विकल्प सें शुद्ध गुणातीता भी हैं। यहाँ में सक्षेपतः इस का उदाहरण देता हूं। देखिए सदाशिवने श्रीविद्या शक्ति के आश्रय से रागरागिनियाँ तथा गुह्याशक्ति के आश्रय से नर्तन पटुता उत्पन्न किया अतएव स्वयं श्रीविद्या ही संगितकला तथा स्वयं गुह्यकाली ही नाट्यकला हैं। इन दो कलाओं में आनन्द प्राप्त हो के मन एकाग्र कराने के कारण उपासकों के लिए ये कलायें सत्वगुणात्मक, सभामध्य में आनन्द प्राप्त हो के इसे दिलबहलाने के कारण राजपरिवार तथा धनाढ्य लोगों के लिए ये कलायें रजोगुणात्मक फिर गणिकागृह में इसे शृङ्गार रस के हावभाव कटाक्ष से आनन्द प्राप्तकर कामोद्दीपन कराने से ये विद्यायें तमोगुणात्मक हैं। एवं ये विद्यायें त्रिगुणात्मिका मानी गयी हैं। फिर संगीत कला तथा नाट्यकला से लययोग स्वयं ही उत्पन्न होकर नादब्रह्म में तल्लीन होकर तुम्बुरुलोग स्वयं ब्रह्मही बन कर तुम्बुरुऋषि लोगों के सदृश जीवन मुक्त हो जाते हैं। अतः ये कलायें गुणातीता हैं।

फिर पश्चिमाम्नाय में कुब्जिका कल्प की आवरण पूजा की अवस्था में इन अष्टमातृकाओं के केवल निम्नलिखित छ रूप मात्र होंगे। १. ब्राह्मी। २. वैष्णवी। ३. वाराही। ४. इन्द्राणी ५. चामुण्डा। ६. कमला। यह कैसे हुआ? अष्टमातृकाओं में माहेश्वरी और कौमारी इन दो मातृकाओं का कैसे लोप हुआ?

इन दो मातृकाओं की किस-किस मातृका में समष्टि हो गयी ? मातृका महालक्ष्मी किस कारण कमला बन गईं ? यह सब यथार्थ रहस्य गुरुवक्त्र से ही जानना चाहिए। यहाँ तो मैं बहुत संक्षेप में वर्णन करता हूं। माहेश्वरी वैष्णवी में समष्टि होकर वैष्णवी बन गई, फिर कौमारी महालक्ष्मी में मिलकर कमला बन गई। इस से अधिक गुरुवक्त्र से ही जान लेना चाहिए।

(कुब्जिका कल्प में कुब्जिका को कुण्डलिनी शक्ति और कुब्जिकेश्वरको सहस्रारगत गुरुरुप माना गया है। इस लिए जैसे अन्य विद्याओं में निम्नलिखित प्रकार का गुरुका ध्यान किया करते हैं, वैसे ही कुब्जिका कल्प में अन्य प्रकार का ही ध्यान किया करते हैं—)

" श्रीनाथादि गुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयं भैरवम्।
सिद्धौघं वटुकत्रयं पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम ॥
वीरायष्टचतुष्कषष्टिनवकं वीरावली पञ्चमम्।
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं वन्दे गुरोर्मण्डलम् ॥"

कुब्जिका कल्प में गुरुका ध्यान ऐसा हैं:—

" संवर्त्तामण्डलान्ते क्रमपथनिहितानन्दशक्तिः सुभीमा।
सृष्टिन्न्याये चतुष्कमकुलकुलगतं पञ्चकं चान्य षट्कम् ॥
चत्वारः पञ्चकोऽन्यः पुनरपिचतुरस्तद्वतो मण्डलेन।
संसृष्टं येन तस्मै नमत गुरुवरं भैरवं श्रीकुजेशम् ॥ "

(हादि (हंस) मत के क्रम में सब विद्याओं की विश्रान्ति श्रीविद्या में होने के कारण गुरु और शक्ति का उस विद्या की आवरणपूजा में निम्नलिखित प्रकार से एकीकरण हो जाता है।

१ मैत्रीशनाथगुरु और कामेश्वरीशक्ति। २ षष्ठीशनाथगुरु और वज्रेश्वरीशक्ति। ३. उड्डीशनाथगुरु और भगमालिनीशक्ति ४. चर्येशनाथगुरु और महात्रिपुरसुन्दरीशक्ति।) पूर्वोक्त 'श्रीनाथादिगुरु त्रय' इत्यादि ध्यान में जो 'चतुष्कं' पदहै, उसका मतलब यही ४ हैं। इसका पूर्ण रहस्य गुरु से ही जान लेना चाहिए। वैसे ही 'संवर्त्तामण्डलान्ते' इत्यादि में जो 'षट्कम्' पद है, उसका मतलब यह है कि ६ मातृकायें छ गुरुओं के साथ मिल गई हैं। क्योंकि कादि (.कुण्डलिनी) मत के क्रम में सब विद्याओं की विश्रान्ति कुब्जिका में हो जाती है। अब कुब्जिका की आवरणपूजा में किस-किस मातृका की किस-किस गुरु से समष्टि हुई है, वह ऐसा है १. मङ्गल महाभैरवानन्द नाथ और ब्रह्माणी। २. सुचर्चिक महाभैरवानन्द नाथ और वैष्णवी। ३. भद्र महाभैरवानन्द नाथ और वाराही। ४. किलिकिलि महाभैरवानन्द नाथ और इन्द्राणी। ५. कालरात्री महाभैरवानन्द नाथ और चामुण्डा। ६. भीषण महाभैरवानन्द नाथ और कमला।

(श्रीविद्या भुक्ति-मुक्ति प्रदायिनी विद्या है। वह ब्रह्मविद्या होने के कारण विशेषतः निर्वाण मोक्षदायिनी है। अतः जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीया इन ४ अवस्थाओं की शक्तियों की ४ गुरुओं में समष्टि हुई। फिर कुब्जिका विद्या भी भुक्ति-मुक्ति देनेवाली हैं, वह पश्चिमाम्नायिका तथा कुलकुण्डलिनीरूपा होने के कारण विशेषतः ऐहिकफल देनेवाली भोगप्रदा है। अतः मूलाधारादि षट्चक्रका सत्तारुप ६मातृकाओं की ६ गुरुओं के साथ समष्टी हो गई हैं।) इस का पूर्ण रहस्य तो गुरुवक्त्र

सेही जानलेना चाहिए। उपर मैंने जो रहस्य अतीव संक्षेपतः बताया वह षडाम्नायों का यथार्थ रहस्यज्ञ सद्गुरुद्वारा ही बोध हो शकता है। लिखा भी है कि "संकेतविद्या गुरुवक्त्र गम्या"। विना गुरु सहस्रों ग्रन्थ देखने से भी इस का रहस्य बोध नहीं हो सकता। इसी से तो शंकरजी कहते हैं:—

"गुरवः बहवो सन्ति शिष्यवित्तापहारकाः।
विरला गुरवः सन्ति शिष्यसन्तापहारकाः॥"

ब्राह्म्याद्यष्टमातृकाओं के असिताङ्गादि अष्ट भैरवों का ध्यान वडवालनतन्त्र में ऐसा है:—

" असिताङ्गं भैरवं च कृष्णाभं च कृष्णवर्चसम्।
करालवदनं घोरं ललज्जिह्वाग्र भीषणम्॥
मुकुटेन विचित्रेणकर्णौ कुण्डल मण्डितौ।
रत्नमालाशिरोदेशे पट्टिका दीप्तिवर्चसा॥
मुक्ताफलकृतामाला कण्ठस्था च विराजते।
बृहद्वक्षस्थलाम्भोजं नागयज्ञोपवीतनम्॥
चित्रनागैः कटिं बध्वा क्षुद्रघण्टिकमेखलाम्।
द्वादशैश्च भुजैर्युक्तं नानालङ्कार मण्डितम्।
त्रिशूलं कर्तृकां खड्गं नागपाशं तथाङ्कुशम्॥
दक्षिणे च करे तस्य दिव्यायुधप्रदीपितम्॥
खट्वाङ्गं काव्यखेटं च घण्टां शक्तिं च मुद्गरम्।
वाममार्गे वरारोहे अस्त्रं संघात भीषणम्॥
काव्यमाला प्रलम्बाच हेमसूत्रेण ग्रन्थितम्।
सिंहारूढं महारौद्रं गर्जन्तं भैरवेश्वरम्॥

रुरुनाथं महाभीमं ताम्राभं ताम्रवर्चसम्।
किरीटो रत्न खचितं वज्रकुण्डल मण्डितम्॥
हारकेयूरशोभाढ्यं महामणि विभूषितम्।
भुजाष्टका समोपेतं नानालङ्कार मण्डितम्॥
त्रिशूलं डमरुं पाशं नागराजं च दक्षिणे।
मुद्रां वीणां तथा सूत्रं मूशलं वाममाश्रितम्॥
रुद्रमाला विचित्राढ्यं आपादान्तरलम्बकः।
गर्जमानं महाभीमं स्वानारूढं महाबलम्॥
चण्डनाथं महारौद्रं नीलाञ्जनसमप्रभम्।
मुकुटेन विचित्रेण सर्वरत्नमयेन तु॥
रत्नकुण्डलशोभाढ्यं दीप्यमानं महोजसम्।
हेमरत्नकृतामाला कण्ठस्था च विराजते॥
द्वीपं चक्रभुजैर्युक्तः नानालङ्कारमण्डितम्।
काव्यं खट्वाङ्गदण्डौ च पाशं शक्तिं च वामके॥
वज्रं परिघशूलञ्च डमरुं शूलदक्षिणे।
सर्वावयवसंपूर्णं कोलपृष्ठसमाश्रितम्॥
नीलोत्पलदलः श्यामः वीरभस्मसमप्रभम्।
किरीटिकुण्डलैर्युक्तं वज्ररत्नप्रदीपितम्॥
महारत्नाङ्कितामाला कण्ठस्था च विराजते।
भुजैः षोडशभिर्युक्तं नानाकेयूरमण्डितम्॥
वरदं शूलसूत्रञ्च नागबाणसचक्रकम्।
कम्बुशक्तिधरं दक्षे वामे च वर्णयाम्यहम्॥
काव्यं पिनाकपरिघम् घण्टां पाशं समुद्गरम्।
कर्तृकां दर्पणं वामे दीप्यमाण सुतेजसम्॥

विस्तीर्णवक्षः सुभगम् विशालनयनोज्ज्वलम् ।
त्रिनेत्रवदनं घोरम् नानाभरणमण्डितम ।
कपालमालाभरणं उग्रासनव्यवस्थितम् ।
शरदाम्बुदवर्णाभं दीप्यमानं सुतेजसम् ॥
किरीटिनं महाभीमं वज्रकुण्डलमण्डितम् ।
शूलं खड्गं तथा बाणं पाशं परिघमुद्गरम् ॥
दक्षिणे तु करे तस्य वामे च घण्टयाम्यहम् ।
सूत्रखेटकनागांश्च पिनाकं यष्टिदर्पणम् ॥
वक्षे विपुलया भोगं हेमपट्ट विभूषिम् ।
दिव्यरत्नकृतामाला मापादान्तरलम्बितम् ॥
नूपूरैः कटिसूत्रैश्च हेमौघेन सुमण्डितैः ।
हंसवाहसमारुढं नाथं चोत्तमभैरवम् ॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभं द्रुतपारदसन्निभम् ।
महाप्रचण्डदण्डोगं कपालभरणोज्ज्वलम् ।
दंष्ट्राकरालरौद्रं च त्रिनेत्राष्टभुजं प्रिये ॥
मुकुटेन विचित्रेन वहुरत्नमयेन च ।
मणिरत्नकृतामोला कण्ठस्था च विराजते ॥
ध्वजवाद्यं तथा नागं शक्ति वामेन चोत्तमम् ।
सूत्रं शूलं तथा पाशं अङ्कुशं दक्षिणे स्थितम् ॥
नानाभरणशोभढ्यं नानालङ्कारमण्डितम् ।
मृगारूढ़ं महातेजः कलितं भैरवेश्वरम् ॥
हस्वं स्थूलं महाकायं रक्ताभं रक्तवर्चसम् ।
किरीटिनं सुतेजाढ्यं रत्नकुण्डलमण्डितम् ॥
वज्रपुष्पकृतामाला कण्ठस्था च विराजते ।
शङ्खसुक्तिकमालाभिरापादतलशोभितम् ॥

दशबाहुं महाभीमं नानाभरणं मण्डितम् ।
खड्गं पाशं तथा शूलं सूत्रं वरदर्दक्षिणे ॥
खेटकाङ्कुश ढक्कश्च मुद्गरं मुसलं प्रिये ।
नानारत्नमयीमाला कटिदेशेविराजते ॥
अश्वारूढं सुतेजाढ्यं भैरवं भीषण वरम् ।
कृष्णपारदसंकाशं धीरभस्मसमप्रभम् ॥
महातेजं महाकायं सर्वावयव शोभितम् ।
भुजैः षोडशभिर्युक्तं नानाकेयूरमण्डितम् ॥
किरीटिनं महाघोरं रत्नकुण्डलमण्डितम् ।
हेमरत्नकृतामाला कण्ठस्था च विराजते ॥
आताम्रनयनं तीव्र उन्नतं दिव्यरूपिणम् ।
कलशं कम्बुपाशं च नागशूलं च दर्पणम् ॥
कर्तृडमरुकं वामे दीप्यमानं तडिद्यथा ।
सूत्र कत्र्यां तथा वज्रं शक्तिमङ्कुशतोमरम् ॥
पिनाकपाणीवरदं दक्षिणेन विराजते ।
शवासनं महाभीमं संहार भैरवेश्वरम् ॥
इत्यष्ट पत्रे संख्यात्वा ... . ॥"

(सभी प्रकार की दुर्गादेवीयों के भैरव पाण्डुनाथ भैरव हैं। उन का मन्त्र ऐसा है । "ॐ नमो भगवते महाभैरवाय नमः पाण्डुनाथाय" इति विंशाक्षरोमन्त्रः ।) (२०)

अस्य ध्यान—

"भैरवः पाण्डुनाथश्च रक्तगौर श्चतुर्भुजः ।
गदां पद्मञ्च शङ्खञ्च चक्रञ्चापि करेषुच ॥

विभ्रद्देव्याः पुरोभागे पूज्योऽयं विष्णुरूप भृक् । "

इन के ही रूपान्तर को मन्त्रान्तर से सत्यनारायण नाम के तथा दुर्गा को सत्यदुर्गा मान के वैष्णवलोगपाशव कल्प से षोडशोपचार तथा पौराणिक विधि से अर्चन करते हैं।

(गौरी की भी छ हों आम्नाय से पूजा होती है।) उनके मन्त्र ध्यानादि सिद्धान्तसंग्रह में निम्नलिखित प्रकार के हैं:—

" ह्रीँ गौरि रुद्रदयिते योगेश्वरि पदं वदेत्।
हुँ फट् स्वाहा षोडशार्णो गौरीमन्त्रः प्रकीर्तितः॥
अजो मुनिस्तथाऽनुष्टुप् छन्दो गौर्यस्य देवता।
मायया तु षडङ्गानि कुर्यात् षड्दीर्घयुक्तया ॥ "

अस्या ध्यानम्—

" हेमाभां विभ्रतीं दोर्भिर्दर्पणाञ्जनसाधने ।
पाशाङ्कुशौ दिव्यभूषां गौरीं देवीमुपास्महे ॥ "

शिव का सद्योजात रूप पश्चिमाम्नायात्मक है । उन के मन्त्र ध्यानादि इस प्रकार के हैं।:—

" ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः।
भवे भवे नाति भवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः॥ "

अस्य ध्यानम्—

" कुन्देन्दु शङ्खस्फटिकावभासो वेदाक्षमालावरदाभयाङ्कः।
त्र्यक्षश्चतुर्वक्त्र उरुप्रभावःसद्योऽधिजातोऽवतुमां प्रतीच्याम्॥

वेद के सभी ऋग्वेदात्मक मन्त्र पश्चिमाम्नायात्मक हैं। अब यहाँ यह पटल समाप्त करता हूँ। अब के पटल में अधराम्नाय का यथा ज्ञान वर्णन करूँगा।

इति श्रीधनशम्शेर वर्म्मणा संग्रहित श्रीतान्त्रिकोपासदर्पणे सकलाम्नायोपासितदेवता विवरणनाम षष्ठः पटलः॥

—※—

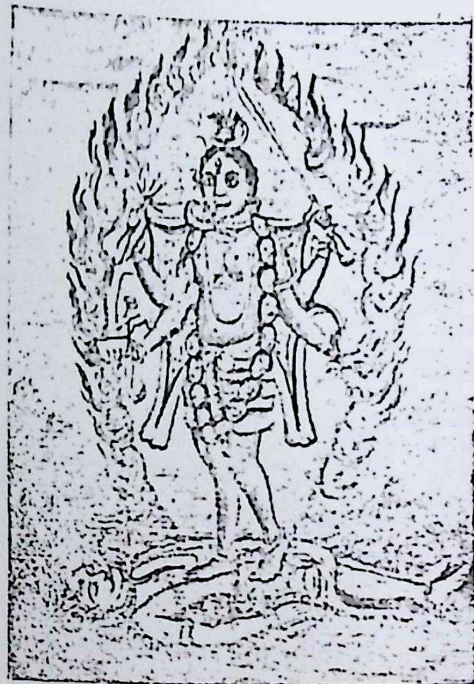
॥ अथ सप्तमः पटलः ॥

॥ ॐ नमः श्रीपरदेवतायै ॥

अब इस पटल में सबसे प्रथम गणपति के भेद का वर्णन कर तत् पश्चात् अधराम्नाय का वर्णन करूँगा। विना आम्नाय-ज्ञान से किसी भी देवता का अर्चन नहीं हो सकता क्यों कि हरएक पूजा में गणेश की पूजा होनी आवश्यक है। जिन को गणपति के आम्नाय भेद का ज्ञान नहीं है, उन के लिए नीचे दिए हुए गणेश के एकाक्षर मन्त्र का उद्धारकर उसी मन्त्र से गणेश की पूजा करनी उचीत है। उस मन्त्र के विषय में मेरु-तन्त्र में ऐसा लिखा है:—

"एकबीजात्मकं वक्ष्ये विघ्नमन्त्रं सुसिद्धिदम्।
तत्रादौ वैदिकानां तु गकारः केवलो मतः॥
दक्षिणान्तो बिन्दुयुक्तो द्विबिन्दुः पूर्वभागिणाम्।
एतद्द्वययुतः पश्चादूर्ध्वाम्नायेच गौमिति॥
ग्लौमुत्तरे गोमितिच पातालाम्नाय ईरितम्॥"

अर्थात वैदिक लोगों के लिए मन्त्र केवल 'ग' है। दक्षिणाम्नायी के लिए 'गँ', पूर्वाम्नायी के लिए 'गः', पश्चिमाम्नायी के लिए 'गः' ऊर्ध्वाम्नायी के लिए 'गौँ' और अधराम्नाय के लिए 'गोँ' हैं। उत्तराम्नाय के लिए ग्लौँ है। अपने अपने गुरुवक्त्र से अथवा मेरे इस छोटे से लेख से



श्री तारा

अपने अपने इष्टदेवता के आम्नाय का ज्ञान कर पूजारम्भ में पूर्वोक्त तन्त्र से गणेश पूजा करें।

अब अधराम्नाय के विषय में लिखा जाएगा। महाकाल संहिता में लिखा है:—

" निशामया धराम्नाय गोचरान् देवतामनून् ।
यत्राद्यभूता विख्याता भीमादेवी भयानका ॥ "

फेर वड्वानलतन्त्र में भी लिखा है:-

" योगिनी वज्रपूर्वा च पन्नगी नैऋतेश्वरी ।
तारिणी आर्यतारा च वज्रवैरोचनी शिवा ॥
नीला भीमा च योगेशी खड्गिनी विजयेश्वरी ।
अधराम्नायपीठस्था जैनमार्गप्रपूजिता ॥ "

इस अधराम्नाय में विशेषतः वामाचार से बौद्धमार्ग से तथा अवैदिकपश्चाचार से जैनमार्ग से उपासना होती है। अतः मैं इस के विषय में अनभिज्ञ हूँ। तथापि कुछ विवरण यहाँ व्याख्यान देने का प्रयत्न करूँगा।

उपर्युक्त वडवानलतन्त्र वचन में " योगिनीवज्रपूर्वा " जो लिखा है, वह वज्रयोगिनी हैं। उन का मन्त्र मैं नहीं जानता। परातन्त्र में उनका ध्यान निम्नलिखित प्रकारका बताया है।

" त्रिवक्त्रा रक्तवर्णा च नृत्यपादशवासना ।
त्रिनेत्रा मण्डलम्बीतहारा भरणभूषिता ॥
मुण्डमाला विभूषाङ्गी व्यालयज्ञोपवीतिनी ।
व्याघ्रचर्म्माम्बरा देवी सिंहचर्म्मोत्तरीयका ॥
योगिनी श्रीवज्रपूर्वा वज्रघण्टा वरप्रिया ।

चतुर्भुजा प्रेतसंस्था वर्वरोध्वंशिरोरुहा ॥
कर्त्रीकपालखड्गक्रडरून् विभ्रती करैः।
शैव फलदा नित्या नापवर्गफलप्रदा ॥ "

इस के बाद 'पन्नगी' जो लिखा है, वह पन्नगेश्वरी है। इस के बाद 'नैऋत्येश्वरी' दिया गया है। फिर 'तारणी' जो लिखा है, वह सम्भवतः उग्रतारा का भेद है। इस के बाद 'आर्यतारा' लिखा है। इस विद्या में अधराम्नाय की सकल विद्यायें समष्टि हो कर सम्वरौधिमत से पूर्णाभिषेक होता है। तदनन्तर 'वज्रवैरोचनी' जो लिखा है, वह छिन्नमस्ता का भेद है, यह वात मैं आगे ही दक्षिणाम्नाय के विवरण में लिख चुका हूं। 'शिवा' जो लिखा है, उस विषय में मैं अनभिज्ञ हूं। 'नीला' जो लिखा है वह नीलतारा है तथा नीलसरस्वती का भेद है। 'भीमा' जो लिखा है, वह भीमादेवी यानि भीमाकाली है। 'योगेशी' शायद गुह्यकाली का भेद है। 'खड्गिनी' जो लिखा है वह खड्गयोगिनी है। इस के बाद 'विजयेश्वरी' जो लिखा है, वह भी शायद आर्यतारा का ही भेद होगा। विजयेश्वरी, खड्गयोगिनी तथा वज्रयोगिनी इन तीनों विद्याओं की पीठें नेपाल में मौजूद हैं। वहाँ के पुजारीलोग बौद्धमार्गी हैं। परन्तु यहाँ नेपाल में जो वज्रयोगिनी की मूर्ति है, वह परातन्त्रोक्त ध्यान से पृथक् है। शायद वह ध्यान तन्त्रान्तर का होगा। अधराम्नाय के विषय में मुझे इतना ही ज्ञात है।

अब तन्त्र के विषय में कुछ लिखता हूं। यह तन्त्रशास्त्र योग शास्त्र का ही विस्तृत रुप है। यह एक वैज्ञानिक पद्धति तथा

धर्मशास्त्र है। क्यों कि इस के द्वारा मानवजीवन का एक सरल मार्ग मिलसकता है। इस मार्ग पर चलने से हमलोगों को मानव समता (Humanity) तथा सन्तुष्टि (Contentment) मिल जाएगी। इस शास्त्र ने सबसे प्रथम आत्मनिर्भरता (Self-reliance) द्वारा आत्मसाधन (Will culture) कर आत्मशक्ति (Will power) बढाने का मार्ग वतलाया है। जब इस की सिद्धि मिल जायगी तब साधक जीवनमुक्त हो जाएगा। जीवनमुक्त का मतलब ही सन्तुष्टि (Contentment) प्राप्त करना है। लिखा भी है कि:—

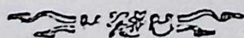
" चित्त प्रसादो मनसश्च तुष्टि-
रल्पाशिता स्वप्नपराङ्मुखत्वम् ॥
स्वप्नेषु यानाद्यु पलम्भनं तु-
सिद्धस्य चिह्नानि भवन्ति सद्यः ॥ "

जब अभाव रहित होगा और मनका सन्ताप (Anxiety) का नाश होगा तब चित्त प्रसन्न होगा और मन तुष्ट होगा। सुख तथा दुःख की तो सीमाही नहीं है। देखिए एक रईस आदमी को एक माइल पैदल चलना पडे तो उस को दुःख होगा, एक कुल्ली को खालीहात एक माइल पैदल चल मजदूरी मिलेगी-तो उस को खुश होगा। विचार करने से दुःख तथा सुख के ऐसे प्रमाण वहुत मिल सकते हैं। फिर देखिए अरवपति के तुलना में करोडपति गरीव है, फिर करोडपति के तुलना में लक्षपति गरीब है, एवं एक भिकारी के सामने एक कुल्ली भी धनाढ्य सा प्रतीत होता है। अतः इस से सन्तोषी धनाढ्य तथा असन्तोषी

भिखारी है, यह वात सिद्ध होती है। इस लिए मन से ही आद-मी अपने को धनी तथा भिखारी फिर दुःखी तथा सुखी समझता हैं। (अतः आत्मनिभरता (Self culture) तथा आत्म-साधन (Self culture) ही भुक्ति-मुक्ति का मार्ग है। वह है तन्त्र मार्ग। पूर्व में ही मै तन्त्रशास्त्र-वचन प्रमाण देचुका हूं कि तन्त्रमार्ग में जाति एवं धर्म को लेकर मनुष्य-मनुष्य में कोई भेद नहीं है। सब लोग आगमविधि में दीक्षित होने के पूर्ण अधिकारी हैं। यद्यपि वेदों के द्वारा अपने जीवन का कल्याण करने का सब को अधिकार नहीं है। तन्त्रशास्त्र की यह उदारता हमे बाध्य करती है कि हमलोग उसका जितना आदर करसकें, करें। अतः विचार से हमलोग देखें तो तान्त्रिक साधन से अधिक अन्य किसी साधना ने भी इतना आदर नहीं पाया है।) अब मैं यहाँ यह पटल समाप्त करता हूँ। दूसरे पटल में उत्त-राम्नाय का वर्णन करने की चेष्टा करूँगा।

इति श्रीधनशम्शेर वर्मणा संग्रहित श्रीतान्त्रिकोपासना-दर्पणे अधराम्नाय विवरणन्नाम सप्तमः पटलः ॥

इति समाप्तम्



॥ पूर्व मीमांसायां बीज. निघन्टुः ॥

श्रीगणेशा नमः ॥ मत्स्यसूक्ते ५ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि गो-प्यापिकुनृकल म ॥ बीजानां यानि नामानिता स्त्रियाः सूचिता-वै ॥ १ ॥ तानी दानीं प्रकाश्यन्ते सावधाना यथारय ॥ लक्ष्मी जस्य नामानि तत्रादौ शृणु भैरवि ॥ २ ॥ श्रीँ लक्ष्मी पद्मा रे रायक्षी सरा रूहनि वासिनी ॥ कमलारुक्मिणीचैव नार ग प्रियापिच ॥ ३ ॥ इमेद्रे कमलापद्मा हरि कान्ता नथैवच॥ क्ष्मीनामानि चैताक्रिकथितानि मयाशिवे ॥ ४ ॥ ह्रीँ पराभूति थालज्जा मायापिसकलाङ्कुरा स॥मस्तापि तथा क्षामादेवि एव वीरकौ ॥ ५ ॥ परानामानि चैतानि कृत्रिमाण्यपरानितु ॥ प्रोक्तानि महेशानि त्रिपुरा तिलके. शुभे ॥ ६ ॥ क्लीँ, कामः चशरश्चैव मदनोमन्मथ स्तथा ॥ मारकदर्पप्रद्युम्न स्त्वनृता पराणितु ॥ ७ ॥ ऐँ वाग्भवंचोर्द्ध बीजंच चारणंचरिडके-रः ॥ चन्द्रोऽपिचर्मवसनं वासनाऽपिततः परम् ॥ ८ ॥ चार्व-यपिचर्मापिघसत्यान्यपराणितु ॥ शिरो मणौ मयोक्तानि सुन्द-: परमेश्वरि ॥ ९ ॥ प्रणव श्च धनुस्तार त्र्यक्षं व्योमापि त्र्यंबकः स स्तारा च ह्य तानि नामानि.प्रणवस्यतु ॥ १० ॥ नमः नमो श्च स्तथा स्तम्भं सोऽस्माकं चाश्मरी तथा ॥ हृन्मानसं मन-'व स्वान्त भाति स्तथापिच ॥ ११ ॥ अन्यानि कृत्रिमाण्देव ासुरं नमस्कृते ॥ ह्राँ, स्कन्दव्यो पं चण्डिभंच संयोज्य हरमि पि ॥ १२ ॥ ह्राँ, बीजोद्धार मेन्द्रित दन्य दनृतं वदेत् ॥ स्त्रीँ नलाक्षी वधूः कान्ता प्रिया पिपरमापिच ॥ १३ ॥ नर्तकी बीज पुत्र वेश्यापि गणिका त या ॥ र म्मापिल लना लज्जा ह्य सत्या पराणितु ॥ १४ ॥ हूं, कूर्चकालं तटं तीर मसत्या न्यपराणितु कुलचुडा मणौ ग्रन्थे प्रोक्तानि मातृ पूजिते ॥ १५ ॥ फट्, हर

फट् तुरग मक्ष तदन्य दनृतं वदेत् ॥ ग्रन्थै छिन्न रहस्येऽस्मि मयाप्रोक्तं शिवप्रिये ॥ १६ ॥ स्वाहा. लन्त्रं मनुर्दरश्चैव द्दनुयां संद्रिटान्तका ॥ स्वाहा नामानि चैतानि कृत्रिमान्यपराणितु ॥ १७ ॥ त्रिपुरा तिलके ग्रन्थे दक्षिणा मूर्ति न कृते ॥ हर बीजद्वयं प्रोक्तं स्वाहा फट् च तथाप्रिये ॥ १८ ॥ क्रौँ काली कुन्तीरस शाचजिह्वा पिर सनातथा ॥ त्री बीज नामान्ये तानि त्रित्रिमान्य पराणितु ॥ १९ ॥ छ्रीँ चारुकै चैव चान्यंगी बीजेद्वे छ्रीँ च दान्ततः ॥ मया प्रोक्तं महेशानि ग्रन्थे भैरवन्त्र के ॥ २० ॥ प्रीँ वागुरावा युपून्यापिवार्त्तादा स्यात्त्रिवी जकम् ॥ प्रीँ. बीज नामान्युक्ता निच सत्या न्य पराणितुः ॥ २१ ॥ कौँ. सिन्दूरं च गजं शोणा हस्ती च द्विरदस्तथा ॥ क्रीँ बीजानी च त्वारि कृत्रिमान्य पराणितु ॥ २२ ॥ त्रों. त्र्यंक्षं भं तारका ज्योति स्तारावीजानि पश्चहि ॥ छिन्नामता भिधेग्रन्थे रचितेऽपि मया स्वयम् ॥ २३ ॥ डेलों वाल्हीकं मठसंज्ञंचर्हि गुबीज मुनीश्वरि ॥ ग्लौ बीजोद्धार मेतद्धि गन्ये वैवामकेश्वरे ॥ २४ ॥ द्राँ. चन्द्रः शीतांशुरिन्दुश्च शर्वरी पतिरप्यथ ॥ ताराधिपः सुधारश्मिः कृत्रिमान्यपराणितु ॥ २५ ॥ श्रीँ शुक्र बीजंतथाकाव्यो भार्गवः कविर्द्विजकम ॥ दैत्यमान्यो महेशानि सुरासुरनमस्कृते ॥ २५ त्रीँ बीजानितु पञ्चैवकृत्रिमान्यपराणि तु शुक्र बीजद्वयंज्ञेयं त्रीँ लूँ चेति महेश्वरि ॥ २७ ॥ ध्रं कल्पः संवर्तक श्चैवप्रलयः क्षय सँक्षक ॥क्षामीकं क्षुरकंक्षौद्रं तथा कल्पान्तबीज कम् ॥ २८ ॥ ध्रं बीजान्येव मष्टौ च कृत्रि मान्य पराणितु ॥ ध्रीँ शतघ्नीशालिकाश्याम शुक्लासार्द्ध तथा वला ॥ २९ ॥ ध्रीँ बीजनामान्यु क्तानि पञ्चान्यान्यनृतानितु ॥ रूँ अब्धि बीजं तथा सिन्धुः शांभवः

सागरस्तथा ॥ ३० ॥ रूँ. बीजानि चत्वारिकृत्रिमान्य पराणितु ॥ वसी: अंथरयन्त्रबीजच शुन्यंशक्तिरितिद्वयम् ॥ ३१ ॥ हरिद्रांहरिणी बीजं हरिद्रा बीज मेवच ॥ ह्लौ बीजा निपट्देवि कृत्रि मान्यपराणितु ॥ ३२ ॥ अंबरं बीजद्वयंदेवि ॐ ह्लौँ परमेश्वरि र्ह्रीँ न्ही मृद्बीजं मृत्तिकाबीजं मृत्स्ना बीजं प्रशस्तिका ॥ ३३ ॥ मृद्रानई पर ज्ञेयं पर्वतेश्वर नन्दिनि ॥ पुनर्बीज द्वयंदेवि ध्रौँ घौ चां वरसंज्ञतम ॥ ३४ ॥ मृत्सा मृःपर मंज्ञेयंल्ही बीजं गिरी नन्दिनि॥ म्ली. थस्य बीजं सानु बीजं शिखरं पुष्करं तथा ॥ ३५ ॥ म्लौँ श्लौँ बीजोद्धारमेतद्धितद्धित दन्यदनृतं वदेतः ॥ इति तेकथितं देवि मयाख्यातं तवाग्रतः ॥ बीजाना नामकोशं वे नाना गमविनिश्चितः ॥ ३६ ॥

यह हस्त लिखित पुस्तक से उद्धृत कर छप वायाहुँ भुल होतो क्षमा प्रार्थीहुँ।

इति श्री बीजकोश समाप्तः ॥

-:o:-

[अ]

अकूपारः = रूँ
अक्षतिः = ट, य, यँ
अक्षम् = ऊँ, ध्रीँ
अगः = द, रूँ
अगस्त्यः = औ
अगिरः = र, रँ
अग्निः = र, रँ
अग्निवधूः = स्वाहा
अग्निवल्लभा = ,,
अग्निसुन्दरी = ,,
अङ्कुशः = ट, क्रोँ
अङ्कुशी = त्र
अचलः = द, रूँ
अच्छलकोला = ल, लँ
अचला = ल, लँ
अच्युतः = अ, ट, क्लीँ
अजगत्प्राणः = ट, य, यँ
अजः = ऐ, द्राँ, स, ँ
अजितः = अ, ट, क्ली
अजेशः = ज, झ
अञ्जनी = ड

अट्टहासः = ए, ग, स, ह
अण्डजः = क, फँ, म
अतिथीशः = ॠ
अत्रिः = द
अत्रिनेत्रजः = ऐ, द्राँ, स, ँ
अत्रीशः = द
अदितिः = ल, लँ
अद्रिः = द, रूँ
अधरः = ऐ, ऐँ
अधोक्षजः = अ, उ, क्लीँ
अधोदन्तगः = औ
अनङ्गः = ख, इ, फ, क्लीँ
ह, हँ, [ह, हँ
अनन्तम् = आ, क्ष, ख
अनन्ता = ल, लँ
अनन्यजः = इ, क, क्लीँ
अनलः = र, रँ
अनिरुद्धः = :
अनिलः = ट, य, यँ
अनुग्रहेशः = औ [ख, ह हँ
अन्तरि (री)-क्षम = आ, क्ष,
अन्तिमः = क्ष

अन्त्यः = क्ष [ह
अन्धकरिपुः = ए, ग, स,
अन्धतमः = औ
अन्धम् = व, वँ
अपगारिकः = र रँ
अपांनाथः = रूँ
अपांपतिः = रूँ
अप्पितम् = र, रँ
अबलम् = व, वँ
अब्जः = ऐ, द्राँ, स, ँ
अब्जयोनिः = क, क, म
अब्धिद्वीपा = ल, लँ
अब्धिवीजम् = रूँ
अब्धिमेखला = ल, लँ
अब्धिशयनः = अ, उ, क्लीँ
अभ्रम् = आ, ख, व, वँ
ह, हँ
अभ्रपुष्पम् = व, वँ
अमतिः = ऐ, द्राँ, स, ँ
अमरेशः = इ, उ, ल
अमृतदीधितिः = ऐ, द्राँ, स, ँ
अमृतम् = व, वँ
अमृता = ए
अमृताद्यः = ट [ह, हँ

अम्बरम् = आ, आँ, क्ष
अम्बु = व, वँ
अम्बुधा = व, वँ
अम्भः = व, वँ
अम्भोधिः = रूँ
अम्भोनिधिः = रूँ
अम्भोराशिः = रूँ
अरणिः = र, रँ
अरिसूदनः = अ, उ, क्ली
अरुणः = उ, म
अर्कः = ह, म
अर्घिः = उ
अर्घीशः = ऊ
अर्णः = व, वँ
अर्णवः = रूँ
अर्धगण्डी = ख
अर्धनारीशः = ढ
अर्धचर्चः = लृ
अर्यमा = म
अर्हः = इ, ल
अलकनन्दा = लृ
अवनिः = ल, लँ
अवनीधरः = द, रूँ
अश्वरः = न

अष्टकर्णः = क, कँ, म
अष्टमूर्त्तिः = प, ग, स, ह
असितः = लु
अस्त्रम् = फट् [ह
अस्थिमाली = प, ग, स
अस्थिसंज्ञः = श
अहर्पतिः = म
अहस्करः = म
अहार्यः = द, रूँ
अहिद्विट् = इ, ल

[आ]

आः = क, कँ, म [हँ
आकाशः = आ, ख, ह,
आखण्डलः = इ, ल
आखुगः = गँ [म, क्लीँ
आत्मभूः = इ, क, कँ
आत्मा = अ
आदिदेवः = अ, उ, क्लीँ
आदिमः = प
आदिमा = ल, लँ
आद्या = ल, लँ
आनन्दः = उ
आपः = व, वँ
आप्यायनी = ओ

आलयः ह
आवकः = ट, य, यँ
आशयाशः = र, रँ
आशुगः = ट, य, यँ
आशुशुक्षणिः = र, रँ
आश्रयाशः = र, रँ
आषाढी त
आस्फुजित् = ग्रौँ

[इ]

इच्छा = झ
इडा = ल, लँ
इडिका = ल. लँ
इन्दिरा ई श्रीँ
इन्दुः = पे, द्राँ, स, ँ
इन्द्रः = इ, ल
इन्द्रजनकः = रूँ, क्लीँ
इन्द्रधाम = ऊ
इन्द्रावरजः = अ, उ, क्लीँ
इन्धिका = उ
इरः = य
इरा = ल, लँ, व, वँ
इरेशः = अ, उ, क्लीँ
इला = ल, लँ
इलिका ल, लँ

[ई]

ईरः = य
ईरा = ल, लँ
ईशः = प, ग, स, सौ, ह
ईशानः = प, ग, स, ह
ईश्वरः = प, ग, स, ह
ईहा = ऊँ

[उ]

उः = प, ग, स, ह
उग्रः = प, ग, स, ह
उग्रशेखरा = लृ
उडु = त्राँ
उडुपः = पे, द्राँ
उत्कारी = ध
उदकम् = व, वँ
उदधिः = रूँ
उदधिवस्त्रा = ल, लँ
उदम् = व, वँ
उदर्चिः = र, रँ [क्लीँ
उन्मत्तोन्मत्तकः = इ, क
उपलः = कुँ
उत्पान्त्यगः = लु
उपेन्द्रः = अ, उ, क्लीँ [ह
उमाकान्तः = प, ग, ए, स,

उमापतिः = प, ग, स, ह,
उरोजः = जँ
उर्वरा ल, लँ
उर्वी = ल, लँ
उशनाः = ग्रौँ
उपर्बुधः = र, रँ
उपर्बुधप्रिया = स्वाहा
उष्णरश्मिः = म

[ऊ]

ऊर्जम् = व, वँ
ऊर्ध्वदेवः = अ, उ, क्लीँ
ऊर्ध्वदन्तः = ओ
ऊर्ध्वम् = प, पँ [ह
ऊर्ध्वरेताः = प, ग, स,
ऊर्मिः = व, वँ
ऊर्मिमाली = रूँ

[ऋ]

ऋतम् = त्राँ
ऋतधामा = क्लीँ
ऋतम् = व, वँ
ऋद्धिः = ख
ऋभुक्षाः = इ, ल
ऋषिकुल्या = लृ

[ए]

एकदन्तः = गँ

एकनेत्रः=गँ, छ
एकशृङ्गः=अ, उ, क्लीँ
एकाङ्घ्रिः=ऌ
एणतिलकः=ऐ, द्राँ, स, ँ
एणाङ्क ऐँ, द्राँ, सँ

[ऐ]

ऐन्द्रम्=ई
ऐश्वरी=उ

[औ]

ओषधीशः=ऐ, द्राँ, स, ँ

[क]

कंसारातिः=अ, उ, क्लाँ
कंसारिः=अ, उ, क्लाँ
ककुद्मतः=ल
कङ्काली=ए, ग, स, ह
कचङ्गलः=रूँ
कचम्=ज
कच्छपः=च करकम् कुँ
कच्छेष्टः=च
कञ्जजः=क, कँ, म
कटकी=क्राँ
कटप्रू=ए, ग, स, ह
कटी=क्राँ
कठिनपृष्ठगः=च [ह

कण्ठेकालः=ए, ग, स.
कन्दर्पः=इ, क, क्लीँ
कन्धिः=रू
कन्यास्तनः=ः
कपन्धम्=व, वँ
कपर्दी=ए, ग, स, ह
कपालभृत्=ए, ग, स, ह
कपिलः=र, रँ
कबन्धम्=व, वँ
कठमः=च
कमण्डलु=ठ
कमलम्=व, वँ
कमला=श्री
कमलाक्षी=स्त्रीँ
कमलासनः=क, कँ, म
कमलोद्भवः=क, कँ, म
कम्=व, वँ
कम्बलम्=व वँ
करकम्=कुँ
करटी=क्राँ
करभी=क्राँ
करादिगः=क
करी=क्राँ
करेणुः=क्राँ
कर्णः=उ

कर्णिकी=क्राँ
कर्बुरम्=व, वँ
कर्मप्रिया=सौ
कलानिधिः=ऐ, द्राँ, स, ँ
कलावान्=ऐ, द्राँ, स,
कल्पः=घ्रुँ
कल्पान्तः=घ्रुँ
कविः=ऌ, ग्लौँ
काङ्क्षा=ऊँ
काण्डम्=व [क्लाँ, स. ँ
कान्तः=ऐ, द्राँ, इ, उ, क,
कान्ता=स्त्रीँ
कान्तिः=क, हँ
कान्तिमान्=इ क, क्लीँ
कापीशम्=ऊँ, ग्लौँ
काम=इ, क, क्लीँ
कामगः=इ, क, क्लीँ
कामचारः=इ, क, क्लीँ
का दः=इ, क, क्लीँ
कामरूपम्=ऐ
कामवर्धनः=इ, क, क्लीँ
कामिकः=त
कामी=इ, क, क्लीँ
कामुकः=इ, क, क्लीँ

कामेशी=ई
कायः=क्ष
काशिकः=ॠ
कालः=म
कालञ्जरः=ए, ग, स, ह
कालनेमिरिपुः=अ, उ, क्लीँ
कालम्=हूँ
काली=क्रीँ
काव्यः=ऌँ, ग्लौँ
काशीनाथः=ए, ग, स, ह
काश्यपी=ल, लँ
किङ्करी=ऊ
कीलालम्=व, वँ
कुः=ल, लँ
कुञ्जरः=क्राँ
कुठारः=द, रूँ
कुन्ती=क्राँ
कुमारसूः=ऌ [स.
कुमुदः=ट
कुमुदिनीपतिः=ऐ, द्राँ,
कुमुदेशः=ऐ, द्राँ स. ँ
कुमोदकः=अ, उ, क्लीँ
कुम्भी=क्राँ

कुलेश्वरः = प, ग, स, ह
कुवेरदृक् = ल
कुशम् = व, वँ
कुसुमेषुः = इ, क, क्लीँ
कूटभवम् = पेँ क्लाँ ह्रीँ
कूटम् = क्लीँ, स
कूर्मः = च
कूलङ्कषः = रूँ
कृत्तिवासाः = प, ग, स, ह
कृपा = ऋ
कृपीटम् = व, वँ
कृपीटयोनिः = र, रँ
कृशा = ह्रीँ
कृशानुः = र, रँ
कृशानुरेताः = प, ग, स, ह
कृपाङ्केतः = क
कृष्णः = अ, उ, क्लीँ
कृष्णवर्त्मा = र, रँ
कृष्णा = थ
कृष्णार्चिः = र, रँ
केशवः = अ, उ, क्लीँ
केशी = अ, उ, क्लीँ
कैटभजित् = अ, उ, क्लीँ
कैलासनिकेतनः = प, ग, स, ह

कोपतत्त्वम् = ह
कोमलम् = व, वँ
कौमुदीपतिः = पे, द्राँ, स,
क्रतुध्वंसी = प, ग, स, ह
क्रिया = ल
क्रूरः = ः
क्रोडकान्ता = ल, लँ
क्रोडाङ्कः = च
क्रोधिनी = र
क्रोधीशः = क
क्लीववक्त्रम् = ङ
क्लेदुः = पे, द्राँ, स,
क्षपाकरः = पे, द्राँ, स,
क्षमा = ल, लँ
क्षरम् = व, वँ
क्षान्तिः = उ
क्षामिदम् = ध्रुँ
क्षितिः = ल, लँ
क्षितिभृत् = द, रूँ
क्षीरम् = व, वँ
क्षीराब्धि = रूँ [स,
क्षीरोदनन्दनः = पे, द्राँ,
क्षोणिः = ल, लँ
क्षोणिप्राचीरम् = रूँ

…णिः = ल, लँ
…गा = ल, लँ
…भृत् = द, रूँ

[ख]

…गवती = ल, लँ
…चमसः = पे, द्राँ, स,
…डीशः = च
…ण्डनी = ल, लँ [ह
…ण्डपरशुः = प, ग, स,
…ण्डपर्शुः = प, ग, स, ह
…म = ह, हँ
…रः = प, ग, स, ह
…श्वासः = ट, य, यँ
संस्थितः = ह
सर्पणः = क, कँ, म
…पगा = लृ
…जरः = प, ग, स, ह
…लकः = इ, क, क्लीँ

[ग]

…गनम् = ख, ह, हँ
…ङ्गा = लृ
…ङ्गाधरः = प, ग, स, ह, रूँ
…तः = क्रौँ

गजमुखः = गँ
गजाङ्कुशः = उ
गजाननः = गँ
गजास्यः = गँ
गणाधिपः = गँ
गणेशः = गँ
गदाग्रजः = अ, उ, क्लीँ
गदाधरः = अ, उ, क्लीँ
गदाभृत् = अ, उ, क्लीँ
गन्धवती = ल लँ
गन्धर्व-(वा ह)ः = ट, य, यँ
गभस्तिमान् = म
गरुडध्वजः = अ, उ, क्लीँ
गर्जनम् = ह
गान्दिनी = लृ
गायनः = इ, क, क्लीँ
गिरिः = द, रूँ
गिरिकर्णिका = ल, लँ
गिरि(री)शः = प, ग, स, ह
गिरिसुता = ह्रीँ
गीतिजः = इ, क, क्लीँ
गुडाकेशः = अ, उ, प, ग, स, ह, क्लीँ
गुणसागरः = क, …

गुह्यः=च
गूढाङ्गः=च
गृध्नुः=अ, उ, क्लीँ
गोत्रः=द
गोत्रभित्=इ, लँ
गोत्रा=ल, लँ
गोपालः=अ, उ, क्लीँ
गोपेन्द्रः=अ, उ, क्लीँ
गोमुखः=ग
गोवर्धनधरः=अ, उ, क्लीँ
गोविन्दः=अ, उ, क्लीँ
गौः=ऌ, ल, लँ
ग्रहपतिः=म
ग्रावा=द
ग्लौः=ऐ, द्राँ, स, ँ

[घ]

घनः=घ
घनम्=व, वँ
घनरसः=व, वँ
घनस्मरः=घ
घृतम्=व, वँ
घोषः=ह

[च]

चक्रपाणिः=अ, उ, क्लीँ
चक्रभृत्=अ, उ, क्लीँ
चक्रवालुका=ख
चक्री=अ, उ, क, क्लीँ
चञ्चलः=च, ट, य, यँ
चटी=ह्रीँ
चण्डः=ऐँ
चण्डांशुः=म
चण्डीकेश्वरः=ऐ, ऐँ
चण्डीभम्=ह्राँ
चतुराननः=क, कँ, ज
चतुर्मुखः=अ, क, कँ
चतुष्कलम्=हुँ
चन्दिरः=ऐ, द्राँ, स, ँ
चन्द्रः=ऐ, द्राँ, स, ँ
चन्द्रमाः=ऐ, द्राँ, स, ँ
चन्द्रबिम्बम्=ठ
चन्द्रशेखरः=ए, ग, स, ह
चन्द्रापीडः=ए, ग, स, ह
चरः=च
चर्म=ऐ
चर्मण्यम्=ऐ
चर्मवसनम्=ऐँ
चाणूरसूदनः=अ, उ, क्लीँ
चामुण्डा=व्रीँ

चारः=ण
चारुफम्=छ्रीँ
चार्वङ्गी=ऐ, छ्रीँ, ऐँ
चित्=ऐँ
चित्रकारी=च
चित्रकूटः=ऌ,
चित्रकोणः=प
चित्रभानुः=म, र, रँ
चित्रमूर्तिः=ई
चित्रमूर्तीशः=ईं
चित्राटीरः=ऐ. द्राँ, स, ँ
चिन्तामणिः=क, कँ
चिह्नम्=हूँ
चेटी=ह्रीँ

[छ]

छगलाण्डः=व
छविः=फ, हँ
छागवाहनः=र, रँ
छायामृगधरः=ऐ, द्राँ, स, ँ

[ज]

जगत्=ऌ
जगती=ल, लँ
जगतपार्श्वः=प
जगदीशः=अ, उ, क्लीँ
जगन्नाथः=अ, उ, क्लीँ
जटाधरः=ए, क, कँ, ग, स, ह
जठरगः=म
जनकः=ज
जनार्दनः=अ, उ, क्लीँ, फ
जम्भभेदी=इ, ल
जन्मादिः=स्त्रीँ
जयनः=ज
जयन्तः=ज, ए, ग, स, ह
जरा=ट
जलकङ्कः=काँ
जलकाङ्क्षः=काँ
जलदा=क्लीँ, स्त्रीँ
जलधिः=रूँ
जलनिधिः=रूँ
जलपीथम्=घ, घँ
जलम्=स्वाहा
जलहंसः=व, वँ
जलेन्द्रः=
जलेशयः=अ, उ, क्लीँ
जन्हुः=अ, उ, क्लीँ
जन्हुकन्या=ऌ
जन्हुतनया=ऌ
जह्नुसुता=ऌ
जातवेदाः=र, रँ

जातसंज्ञः = झ
जाली = र
जाह्नवी = ल
जितामित्रः = अ, उ, क्लीँ
जिनः = अ, उ, क्लीँ, घ
जिष्णुः = अ, उ, क्लीँ
जिह्वा = क्लीँ
जीवः = स
जीवनम् = व, वँ, स
जुहुवारः (लः) = र, रँ
जैवातृकः = ऐ, द्राँ, स,
ज्ञप्तिगः = अ
ज्योतिः = त्राँ
ज्वलनः = र, रँ

[झ]

झपः = प
झिण्टी = ए
झिण्टीशः = ए

[ड]

डाकिनी = फ्फे
डामरः = ड

[त]

तटम् = हूँ
तनूनः = ट, य, यँ
तनूनपात् = र, रुँ
तन्द्री = म
तपनः = अ, म
तपसः = ऐ, द्राँ, स,
तपस्तत्त्वः = इ, ल
तमः = औ, त, ल, लँ
तमोनुत् = र, रँ
तमोहरः = ऐ, द्राँ, स,
तरङ्गः = वँ
तरणिः = ए, म
तरन्तः = रूँ
तरलः = त
ताण्डवम् = चँ
तापनः = म
तामरसम् = व, वँ
तारः = औँ, त्राँ
तारकः = औँ
तारकम् = त्राँ
तारा = ऊँ, त्राँ
ताराधिपः = ऐ, द्राँ, स,
तारापतिः = ऐ, द्राँ, स,
तारापीडः = ऐ, द्राँ, स,
तारिका = त्राँ

तार्क्षः = रूँ
तार्क्ष्यः = रूँ
तार्क्ष्यध्वजः = अ, उ, क्लीँ
तिथिप्रणीः = ऐ, द्राँ, स,
तिमिः = रूँ
तिमिकोशः = रूँ
तिमिरम् = ल, लँ
तीक्ष्णः = प, य
तीरम् = हूँ
तीव्रः = प, ग, त, स, ह
तुङ्गी = ऐ, द्राँ, स,
तुङ्गीपतिः = ऐ, द्राँ, स,
तुरापाट् = इ, ल, [स,
तुषारकिरणः = ऐ, द्राँ
तोयनिधिः = रूँ
तोयम् = व, वँ
त्रपाः = ह्रीँ
त्रिगुणाकारः = ण
त्रितत्त्वम् = हूँ, औँ
त्रिदशः = त्त
त्रिदिवेशः = त्त
त्रिपाद् = अ, उ, क्लीँ
त्रिपुरः = ऐ [ह
त्रिपुरान्तकः = प, ग, स,
त्रिमात्र = औँ
त्रिमूर्त्तिः = ई,,
त्रिमूर्त्तीश = ई
त्रिरेखः = ण
त्रिलोचनः = प, ग, स, ह
त्रिविक्रमः = अ, अ, इ, क्लीँ
त्रिबिन्दुः = छ
त्रिवृत् = औँ
त्र्यम्बकः = प, ग, स, ह
त्वक् = य
त्विषाम्पतिः = म

[द]

दकम् = व, वँ
दक्षकपोलः = ल
दक्षगुल्फगः = ड
दक्षजान्वग्रगः = ठ
दक्षनेत्रम् = इ
दक्षपादगः = ट
दक्षपादाङ्गुलिमूलगः = ढ
दक्षपार्श्वः = प
दक्षाङ्गुल्यग्रगः = ङ
दक्षिणकूर्परगः = ख
दक्षिणहस्तगः = श
दक्षिणाङ्गुलिमूलगः = घ
दण्डः = नमः, ०
दण्डी = थ

दण्डीश =थ
दन्तावलः=क्राँ
दन्ती=क्राँ
दमुना=र, रँ
दर्पकः=इ, क, क्लीँ
दर्शविपत्=पे, द्राँ, सँ
दशाश्वः=पे, द्राँ, सँ
दहनः=र, रँ
दाना=द
दामोदरः=अ, उ, पे, क्लीँ
दारकः=ड
दारदः=रूँ
दाशार्हः=अ, उ, क्लीँ
दिगम्बरः=ए, ग, स, ह
दिनकरः=म
दिनमणिः=म
दिवस्पतिः=म
दिवाकरः=म
दिवौकाः=च
दीपीका=ऊ
दीर्घः=न
दीर्घमारुतः=क्राँ
दुश्च्यवनः=इ, ल
देवः=च [क्लीँ

देवकीनन्दन=अ, त
देवकीसूनुः=अ, उ, क्लीँ
देवताधिपः=इ, ल
देवदेवः=ए, ग, स, ह
देवमाताः=ऋ, ॠ
देवराजः=इ, ल
देहिनी=ल, लं
दैत्यगुरुः=लृँ, ब्लौँ
दैत्यमान्यः=लृ, ब्लौँ
दैत्यारिः=अ, उ, क्लीँ
दैवज्ञः=ऋ, ॠ
दोग्ध्री=हृँ
दोला=फ्रेँ
दोषाकरः=पै, द्राँ, स,ँ
दौर्गमाता=ॠ
द्युतिः=छ
द्युमणिः=म,
द्योः=आ, ख, ह, हँ
द्यौः=आ, ख, ह, हँ
द्रुघणः=क, कँ
द्रुमारिः=क्राँ
द्रुहिणः=क, कँ
द्वादशात्मा=म
द्वारकेशः=अ, उ, क्लीँ
द्विजपतिः=पे, द्राँ, स, ँ
द्विजराजः=पे, द्राँ, स, ँ
द्विपः=क्राँ
द्विरण्डेशः=भ
द्विरदः=क्राँ
द्विरदनः=क्राँ
द्वीपवान्=रूँ
द्वमातुरः=गँ

[ध]

धनञ्जयः=र, रँ
धनेशः=ध
धर (णी) णिः=ल, लँ
धरणीकीलकः=द [क्लीँ
धरणीधरः=द, अ, उ
धरणीध्रः=च
धरणीपूरः=रूँ
धरणीशः=ध
धरा=ल, लँ
धराधरः=च, द
धरित्री=ल, लँ
धर्मद्रवी=लृ
धवलम्=व, वँ
धाता=क, कँ
धातृभृत्=द
धात्री=ल, लँ
धारयित्री=ल, लँ
धारिणी=ल, लँ
धुनीनाथः=रूँ
धूर्जटिः=ए, ग, स, ह
धूलिध्वजः=स, द, य,
यँ, ह, हँ
धेनुकारिः=अ, उ, क्लीँ
ध्रुवः=अ, उ, ए, क्लीँ,
ग, स, ह,
ध्रौवम्=धः
ध्वान्तम्=लं

[न]

नकुली=ग
नक्षत्रनेमिः=ए, द्राँ, सँ
नक्षत्रम्=श्राँ
नक्षत्रेशः=पे, द्राँ, सँ
नगः=द
नटनम्=चँ
नदी=ग
नदीनः=न
नन्दकः=इ, क, क्लीँ
नन्दजः=ठ
नन्दनः=इ, क, क्लीँ

नन्दनन्दः = अ, उ, क्लीँ
नन्दपिता = इ, फ, क्लीँ
नन्दात्मज = अ, उ, क्लीँ
नन्दिनी = लृ
नन्दिवर्धनः = ए, ग, स, ह
नन्दी = इ, फ, क्लीँ ब
नन्दीश्वरः = ए, ग, स, ह
नपुंसकमन्त्रः = नमोऽन्तः
नभः = लृ, नमः, आ, ख, ह हँ
नभःप्राणः = ट, य, यँ
नभःस्वरः = ट, य, यँ
नभश्चमसः = ऐ, द्राँ, सः
नभसम् = आ, ख, ह, हँ
नभस्वान् = ट, य, यँ
नमुचिसूदनः = इ, ल
नरः = ट
नरकजित् = अ, उ, ए, क्लीँ
नरसिंहः = अ, उ, क्लीँ
नरायणः = अ, उ, क्लीँ
नर्त्तकः = इ, फ, क्लीँ
नर्त्तकम् = चँ
नर्त्तकी = ऊँ—श्रीँ ह्रीँ
नाकनाथः = इ, ल

नाकम् = आ, ख, ह, हँ
नागः = औ, अः, क्राँ
नागलोकः = थ
नाख्यम् = च, चँ
नादः = ँ
नादी = न
नाभिगतः = भ
नाभिजन्मा = फ, फँ
नारम् = व, वँ
नारायणः = अ, उ, क्लीँ
नारायणप्रिया = श्रीँ
निःश्वासकः = ट, य, यँ
निद्रा = भ
निधनः = फ, फँ
निरञ्जनः = अ
निर्जरः = ह
निर्झरः = क्राँ
निर्झरी = द
निर्वाणः = ए
निवृत्तिकला = ह्राँ
निशाकरः = ऐ, द्राँ, सः
निशाचरः = इ, फ, क्लीँ
निशापतिः = इ, फ, क्लीँ
निशामणिः = ऐ, द्राँ, सः

निशीथनानाथः = ऐ, द्राँ, सः
निश्चला = ल, लँ
नीरम् = व, वँ, स्वाहा
नीलः = त
नीलकण्ठः = ए, ग, स, ह
नीलचरणः = लृ
नीललोहितः = ए, ग, स, ह
नृहरि = अ, उ, क्लीँ
नृसिंहास्त्रम् = ई

[प]

पक्षजः = ऐ, द्राँ, सः
पक्षजन्माः = ऐ, द्राँ सः
पक्षधरः = ऐ, द्राँ, सः
पञ्चधन्वा = इ, फ, क्लीँ
पञ्चनखः = च, क्राँ
पञ्चबाणः = इ, फ, क्लीँ
पञ्चरश्मिः = थ्रीँ
पञ्चशरः = इ, फ, क्लीँ
पञ्चसुतः = च
पञ्चाननः = ए, ग, स, ह
पञ्चान्तकः = ग
पद्मः = ठ, ऊ, श्रीँ
पद्मनाभः = अ उ, क्लीँ
पद्मपाणिः = फ, फँ
पद्मा = ऊ, श्रीँ

पद्मासनः = फ, फँ
पद्मी = क्राँ
पद्मेशः = ग
पपञ्चमः = भ
पन्ना = ख
परमात्मा = ह
परमेष्ठी = फ, फँ
परा = लृ, ह्रीँ
परिज्ञाः = ऐ, द्राँ, सः
पर्वतः = द
पर्वतारिः = इ, ल
पर्वधिः = ऐ, द्राँ, सः
पर्यण्यः = इ, ल
पर्शुपाणिः = गँ
पल्वलावामः = च
पवनः = ट, य, यँ
पवमानः = ट, य, यँ,
पांशुचन्दनः = ए, ग, स, ह
पाकशासनः = इ, ल
पाचनः = र, रँ
पाण्डवायनः = अ, उ, क्लीँ
पातकः = र
पाथः = व, वँ
पानीयम् = व, वँ
पापम् = ऊ

पारा=ल, लँ
पारावारः=रूँ
पार्थिवः=प
पार्श्वः=प
पालिनी=ठ
पावकः=र, रँ
पाशः=श्रौं
पिङ्गलः=र, रँ
पिङ्गलिका=ऊँ, भ्रौं
पिण्डपादः=क्रौँ
पितामहः=अ, क, कँ, म
पिनाकपाणि=प, ग, स, ह
पिनाकी=प, ग, ल, स, ह
पिप्पलन्=उ, चँ
पीता=प
पीताम्बरः=अ, उ, क्लीँ
पीयूषमहाः=पे, द्राँ, स, ँ
पीलुः=क्राँ
पीवरः=च
पुण्डरीकाक्षः=अ, उ, क्लीँ
पुनर्वसुः=अ, उ, क्लीँ
पुम्मन्त्रः=हुँफडन्तः
पुरन्दंशी=इ, ल
पुरद्विट्=प, ग, स, ह

पुरन्दरः=इ, ल
पुरुहूतः=इ, ल
पुराणगः=फ, फँ, म
पुराणपुरुषः=अ, उ, क्लीँ
पुरुषोत्तमः=अ, उ, क्लीँ प
पुलोमारिः=इ, ल
पुष्करम्=आ, ख, म्लौ, य, चँ, ह, हँ
पुष्करी=क्राँ
पुष्पम्=ध
पूतक्रतुः=इ, ल
पूतनारिः=अ, उ, क्लीँ
पूर्वः=फ, फँ
पूर्वदिक्पति=इ, ल
पूषा=म, स
पृतनाषाट्=इ, ल
पृथिवी=ल, लँ
पृथुशेखरः=द
पृथ्वी=ल, लँ
पृषताम्पतिः=ट, य,
पृषदश्वः=ट, य, यँ
पेटकी=क्राँ
पेटलः=क्राँ
प्रकम्पनः=ट, य, यँ

प्रजापतिः=क, कँ, म
प्रणवः=ओँ
प्रतिष्ठाकला=ह्रीँ
प्रद्युम्नः=इ, क, क्लीँ
प्रभञ्जनः=ट, य, यँ
प्रभुः=अ, उ, क, कँ, क्लीँ, म
प्रमथाधिप=प, ग, स, ह
प्रलयत्रयः=धुँ
प्रशस्तिका=न्हीँ
प्रसूतिः=ध
प्रसूनः=ध
प्रस्थम्=म्लौ
प्रस्थवान्=द
प्राचीनबर्हिः=इ, ल
प्राणः=ह
प्रासादः=हौँ
प्रेयतमः=प, ग, स, ह
प्रेया=स्त्रीँ
प्रीतिः=ध

[फ]

फट्कारः=फ
फणाधरधरः=प, ग, स, ह
फणिप्रियः=ट, य, यँ
फली=क्रौँ

फेत्काटी=हँ स्फ्र
ह+स्+ख्+फ्रे

[ब]

बकः=श
बकेशः=श
बभ्रुः=अ, उ, क्लीँ
बलम्=व
बलारातिः=इ, ल
बलिध्वंसी=अ, उ, क्लीँ
बहुरूपः=क, कँ, म
बाणः=ए
बालः=व
बीजन्लूः=ल, लँ
बृहद्भानुः=र, रँ
ब्रध्नः=म
ब्रह्मसूः=इ, क, क्लीँ
ब्रह्मा=क, कँ, म

[भ]

भगः=ए
भगाली=प, ग, स, ह
भद्रः=क्राँ
भद्रिका=ः
भपतिः=पे, द्राँ, स, ँ
भम्=भ्राँ

भयदः=ऐ
भया=ब
भयावह=भ
भरद्वाजः=भ
भरुः=ए, ग, स, ह
भर्गः=ए, ग, स, ह
भवः=ए, ग, स, ह
भवायना=ल्ट
भागीरथी=ल्ट
भानुः=म
भारभूति=क्ष
भार्गवः=अः, ल्ह, ग्रौँ
भास्करः=म
भास्वती=भ
भास्वान्=म
भीमः=ए, ग, स, ह
भीमा=भ,
भीरुः=ए, ग, स, ह
भीषणः=ए, ग, स, ह
भीष्मजननी=ल्ट
भीष्मसूः=ल्ट
भुजगः=य

भुजङ्गेशः=ट
भुघनम्=व, व
भुवनमाता=ल, लँ
भुवनेशः=ह
भुवनेशी=ह्रीँ
भूः=ल, लँ
भूतधात्री=ल, लँ
भूतनाथः=ए, ग, स, ह
भूतम्=उ, फ्रौँ, स्फ्रौँ
भूतिः=ह्रीँ
भूतशः=ए, ग, स, ह
भूधरः=द, व
भूभृत्=द
भूमिः=ल, लँ
भूरिः=ए, ग, स, ह
भृगुः=स
भृङ्गः=इ, क, क्लीँ
भृङ्गीशः=ए, ग, स, ह
भृङ्गेशः=इ, क, क्लीँ
भैरवः=ए ग, स, ह
भोगिकान्तः=ट, य, यँ
भौतिकः=ऐँ
भौमजः=ड

भ्रमणः
भ्रममाणः
भ्रमावहः
भ्रमोऽपरः
भ्रान्तः
भ्रान्तचारः
भ्रामकः
भ्रामणः
=इ, क, क्लीँ

भ्रुकुटी=भ

[म]

मः=क, कँ, म
मकरध्वजः=इ, क, क्लीँ
मघवा=इ, ल
मघाभूः=लँ; ब्रौँ
मजा=प
मञ्जुघोषः=म, क, कँ
मठसंज्ञः=ग्लौँ
मण्डलः=म
मण्डूकः=म
मतङ्गः=क्रौँ
मत्स्यः=प
मथुरेशः=अ, उ, क्लीँ
मदनः=इ, क, क्लीँ

मधुजित्=अ, उ, क्लौ
मधुरिपुः अ, उ, क्लीँ
मधुसूदनः=अ, उ, क्लीँ
मनसिज=इ, क, क्लीँ
मनुः=औँ
मन्त्रनाथः=औ
मन्त्रमनुः=स्वाहा
मन्त्रेशः=म
मन्दाकिनी=ल्ट
मन्दास्तम्=ह्रीँ
मन्दास्यम्=ह्रीँ
मन्मथः=इ, क, क्लीँ
मरुत्=ट, य, यँ
मरुत्वान्=इ, ल
मलिनम्=ढ
महाकच्छः=रूँ
महाकान्ता=ल, लँ
महाकालः=ए, ग, म, स, ह
महाघोषः=ह
महानटः=ए, ग, स, ह
महामाया ई
महाविलः=आ, व, इ, हँ
महासेनः=ट
मही=ल, लँ

महीधः = द
मातङ्गः = इ, फ, क्रौं, क्लीं
मातरिश्वाः = ट, य, यँ
मादः = इ, फ, क्लीं
माधवः = अ, इ, उ, क्लीं
मानवः = अः
मानी = म
माया = ई, ह्रीँ
मायो = औ
मायोत्तरम् = उ
मारः = इ, फ, क्लीँ
मारुतः = ट, य, यँ
मार्जः = अ, उ, क्लीँ
मार्त्तण्डः = म
मालूरः = त्रोँ
मित्रः = म
मिहिरः = म
मीनकेतनः = इ, फ, क्लीँ
मुकुन्दः = अ, उ, क्लीँ
मुखाङ्कुरम् = इ
मुञ्जकेशी = अ, उ, क्लीँ
मुरलीधरः = अ, उ, क्लीँ
मुरारिः = श्री
मूर्धा = ऐ

मृगपिप्लुः = ऐ, ह्रीँ, स,
मृगवाहनः = ट, य, यँ
मृडः – ए, ग, स, ह
मृत्तिका = ह्रीँ
मृत्युः = श
मृत्युञ्जयः = ए, ग, स, ह
मृत् = ह्रीँ
मृत्स्ना – ह्रीँ
मेघः = व
मेघपुष्पम् = य, वँ
मेघवान् = इ, ल
मेघवेश्म = आ, ख, ह, हँ
मेदः = घ
मेदिनी = ल, लँ.
मेरुः = ल, प
मेषः – न
मोक्ष. = औ
मोचिका = ऋ
मोहः = इ, क, क्लीँ
मोहनः = ,,
मोहवर्धनः = ,,

[य]

यज्वनाम्पति = ऐ, ह्रीँ, स,
यदुनाथः = अ, उ, क्लीँ
यमः = श
यमान्तकः = ए, ग, स, ह
यादःपति = रूँ
यादवः = अ, उ, क्लीँ
यादसाम्पतिः = रूँ
यामिनीपतिः = ऐ ह्रीँ, स,
यामुनः = य
यामुनेयः = य
योगिनी = छ्रीँ
योनिः = ए

[र]

रक्तम् = र
रक्तणाधिपः = ऊँ
रतिः = इ, क्लीँ
रतिनाथः = इ, क, क्लीँ
रतिपतिः = इ, क, क्लीँ
रतिप्रियः = इ, क, क्लीँ
रतिसखः = इ, क, क्लीँ
रत्नगर्भा = ल, लँ
रत्नाकरः = रूँ
रत्नावली = ल, लँ
रदनी = फ्राँ

रन्तिदेवः = अ, उ, क्लीँ
रमः = इ, क, क्लीँ
रमणः = इ, क, क्लीँ
रममाणः = इ, क, क्लीँ
रमा = श्री
रमाकान्तः = इ, क, क्लीँ
रम्भा = स्त्रीँ
रविः = म
रशनाः = क्रौं
रसज्ञा = क्रीँ
रसना = क्रौं
रसनायक = ए, ग, स, ह
रसा = क्रौं
रसाङ्का = क्रीँ
रसाला = क्रौं
रसिका = क्रौं
राजा = ऐ, ह्रीँ, स,
राजीवः = का
रात्रिः = त
रात्रिनाथः = इ, क, क्लीँ
रामा = स्त्रीँ
रावः = फ्रोँ
राहुभेदी = अ, उ, क्लीँ
रिपुघ्नः = ऋ

रुक्मिणी = भ्रीँ
रुचिरः = र
रुद्रः = प, ग, स, ह
रुद्रशेखरा = लृ
रुधिरम् = र
रेणुका = ड
रेरिहाणः = प, ग, स, ह
[illegible] = र
रोहिणीपतिः = ऐ, द्राँ, सँ,
रोहिणीशः = ऐ, द्राँ, सँ,
रोहिताश्वः = र, रँ
रौद्री = फ

[ल]

लकुली = ह
लक्ष्मीः = व, श्रीँ
लक्ष्मीसहजः = ऐ, द्राँ, सँ,
लज्जा = स्त्रीँ ह्रीँ
लता = प
लम्पटः = ल
लम्बोदरः = गँ
ललना = क्रीँ, स्त्रीँ
लवणम् = न
लिप्सा = ऊँ
लेखः = क्ष
लेखर्षभ = इ, ल
लेखा = ह्रीँ
लोकनाथः = फ, फँ, म
लोकेशः = फ, फँ, म.
लोभवर्धनः = इ, फ क्लीँ
लोला = फ्रीँ
लोहितः = प, ह्राँ

[व]

वज्रकायः = क्ष
वज्रदण्डः = लृ
वज्रपाणिः = इ, ल
वज्रमुष्टिः = व
वज्री = इ, ल
वधूः = स्त्रीँ
वनम् = व, वँ
वनम् = स्वाहा
वनमाली = अ, उ, क्लीँ
वराकः = प, ग, स, ह
वराहः = न
वरुणः = वँ
वरेश्वरः = प, ग, स, ह
वर्गादिः = फ
वर्त्तः = ऐ
वर्धमानः = अ, उ, फ्लीँ

वर्म = हुँ
वर्हा = थ
वर्हिः = र, रँ
वर्हिशुष्मा = रूँ
वलक्षगुः = ऐ, द्राँ, सँ,
वसुः = प, ग, स, ह
वसुन्धरा = ल, लँ
वस्त्रबीजम् = श्राँ
वह्निः = र, रँ
वाः = व, वं
वाक् = ऐ, ऐँ
वागुरो = प्रीँ
वाग्भवम् = ऐँ
वाग्मी = प्रीँ
वाङ्कः = रूँ
वाणी = ऐँ
वातुदा = प्रीँ
वामकर्णः = ऊ
वामगण्डः = लॄ
वामगुल्फगः = द
वामदेवः = प, ग, स, ह
वामनः = अ, उ, ॠ, फ्लीँ
वामनासिकः = ॠ
वामनेत्रम् = ई
वामपादाङ्गुलितलगः = ञ
वामपादाङ्गुलीगः = ध
वामपार्श्वगः = फ
वाममणिमध्यगः = न
वामलोचनम् = ई
वामलोचना = ॠ
वामहस्ताङ्गुलितलगः = झ
वामहस्ताङ्गुल्यग्रगः = ञ
वामांसगतः = व
वामोरुमूलगः = त
वायुः = ट, य, यँ
वायुसखः = र, रँ
वारणः = क्राँ
वारणम् = ऐ, ऐँ, क्राँ
वारांनिधिः = रूँ
वाराही = प
वारि = व, वँ
वारिदः = व
वारिधिः = रूँ
वारिनिधिः = रूँ
वारिराशिः = रूँ
वारुणम् = फ, व.
वार्त्तादा = प्रीँ
[illegible]धिः = रूँ

वार्णः = क्षुँ
वासना = ऐ, ऐँ, ऊं, वीं
वासवः = इ, ल
वासुः = अ, उ, औ, क्लीं
वासुदेवः = "
वास्ताप्पतिः = इ, ल
वाहिनीपति = रूं
वाह्निकम् = ग्लौं
विघ्नपः = ग, गं
विजयो = उ
विद्या = इ
विद्युत् = प
विधिः = क, कँ, म, वँ
विन्दुः = ०
विन्दुमाली = इ
विपुला = ल, लँ
विभावसुः = र, रँ
विभूतिः = ह्रीँ
विमलः = ल
विलः = थ
विशालाक्षः = थ
विश्वप्सा = र, रँ
विश्वम् = लृ, नमः
विश्वम्भरा = ल, लँ
विश्वमूर्तिः = म
विषः = म
विष्णुः = अ, उ, क्लीं
वीतिहोत्रः = र, रँ
वीरः = य
वृषः = अं, अः
वृष = प
वृषाकपिः = र, रँ
वृष्टिः = फँ
वेदादिः = ऊँ
वेश्या = ऊँ, वौँ
वैकुण्ठः = म
वैश्यः = य
वैश्वानरः = र, रँ
वैष्णवः = आ
व्यक्तः = लृ
व्याघ्रपादः = उ
व्यापिनी = औ
व्योम = आ, लृ, ख, ह, हँ, ०
व्योमम् = ह्रीँ

[श]

शंवरम् = व, वँ
शक्तिः = प, स, ह्सौँ
शक्रः = इ, ल
शङ्करः = प, ग, स, ह
शङ्कुकर्णः = श

शाङ्गभृत् = अ, उ, क्लीं
शङ्खाग्राकृतिः = ढ
शचीपतिः = इ, ल
शतभानुः = इ, ल
शतघ्नी = भ्रौँ
शतधामा = अ, उ, क्लीं
शतधृतिः = इ, क, कँ, म, ल
शतपत्रनिवासः = क, कँ, म
शतपर्वेशः = लृँ, मौँ
शतमन्यु = इ, ल
शतानन्दः = क, कँ, म
शतावर्त्तः = अ, उ, क्ली
शतावर्त्ती = "
शनिः = छ
शम्बरारिः = इ, क, क्लीँ
शम्भुः = प, ग, श, स, ह
शम्भुवनिता = ह्रीँ
शरजन्मा = टँ
शरत् = स
शर्म = प, स
शर्वरीपतिः = ऐ, द्राँ, स,
शर्वरीशः = "
शशधरः = "
शशविन्दुः = अ, उ, क्लीँ
शसीनः = ट, य, यँ
शान्तिः = ई [ह्रै, ह्रौं
शान्त्यतीता कला = ह्रँ,
शाम्भवम् = रू
शार्ङ्गभृत् = अ, उ, क्लीं
शार्ङ्गी = अ, उ, क्लीँ, ग
शालिका = भ्रीँ
शिखरम् = म्लौँ
शिखरी = द
शिखावान् = र, रँ
शिखी = र, रँ
शितिकण्ठः = प, ग, स, ह
शिपिविष्ट = "
शिरः = ०, क
शिली = म
शिलोच्चयः = द
शिवः = प, ग, स, ह
शिवकीर्त्तनः = अ, उ, क्लीं
शिवा = ह्रीँ
शिविपिष्टः = प, ग, स, ह
शिवोत्तम = घ
शीतभानुः = ऐ, द्राँ, स,
शीतमरीचिः = "
शीतरश्मिः = "
शीतलः = "
शीतांशुः = "

शुक्रः = स, लूँ, मौँ
शुक्रः = स
शुक्रा = भ्रीँ
शुचिः = र, रँ
शुभाकृतिः = ड
शुभ्रा = लृ
शुभ्रांशुः = ऐ, द्राँ, स, ँ
शुष्मा = र, रँ
शूकरः = न
शून्यम् = हसौँ
शूरः = प, म
शूर्पकः = ग, गँ
शूर्पकर्णः = क्राँ
शूलः = द
शूलधरः = प, ग, स, ह
शूली = ,,
शृङ्गारी = क्राँ
शृङ्गी = द
शृणिः = क्रोँ
शैलः = द
शैलशिविरम् = रूँ
शैलेन्द्रजा = लृ
शाचिष्केशः = र, रँ
शोभा = फ, हँ

शौरिः = थ, न
श्मरी = नमः
श्यामा = क्रीँ, भ्रँ, ल, लँ
श्रवणः = उ
श्रीकण्ठः = प, ग, स, ह
श्रीकरः = अ, उ, क्लीँ
श्रीकान्तः = ,,
श्रीगर्भः = ,,
श्रीधरः = लृ ,,
श्रीनिकेतनः = अ, उ, क्लीँ
श्रीनिवासः = ,,
श्रीपतिः = अ, उ, क्लीँ
श्रीमान् = ,,
श्रीवत्सः = ,,
श्रीवत्सभृत् = ,,
श्रीवत्सलाञ्छनः = ,,
श्रीवराहः = ,,
श्रीशः = ,,
श्रीहरिः = ,,
श्रुतिः = उ, ॐ
श्लेष्मकः = छ
श्वसनः = ट, य, यँ
श्वेतः = लूँ, ग्लौँ,
श्वेतरथः = लूँ, ग्लौँ, स

श्वेतवाहनः = ऐ, द्राँ, स, ँ
श्वेतेश्वरः = प

[ष]

षडाक्षरः = प
षडाननः = टँ, प
षण्मुखः = ऊ, टँ
षष्टिहायनः = क्राँ
षोडशांशुः = लूँ, ग्लौँ
षोडशार्चिः = लूँ ग्लौँ

[स]

संक्रन्दनः = इ, ल
संवर्तकः = त्त
संहारः = ख
सकला = ह्रीँ
सङ्कर्षणः = औ
सङ्क्षयकः = ङ
सङ्गतिः = स
सत्यः = द
सत्यकः = फ, फँ, म
सदनम् = व, वँ
सदागतिः = ट, य, यँ
सदानन्दः = फ, फँ, म
सदायोगी = अ, उ, क्लीँ
सदाशिवः = ष, फोँ ह्फोँ

सद्यः = ओ
सद्योजातः = ओ
सनत् = क, कँ, म
सनातनः = अ, उ, क्लीँ
सन्ध्यानटी = प, ग, स, ह
सन्ध्यारामः = क, कँ, म
सगरः = ह
सप्तजिह्वः = र, रँ
सप्तार्चिः = र, रँ
सप्ताश्वः = म
सफरी = फ
समयः = स
समस्ता = ह्रीँ
समीरः = ट, य, यँ
समीरणः = ट, य, यँ
समुद्रः = रूँ [स, ँ
समुद्रनवतातः = ऐ, द्राँ,
समुद्रसुभगा = लूँ
सम्बलम् = व, वँ
सरः = व, वँ
सरम् = व, वँ
सरसी = उ
सरस्वान् = रूँ
सरित्पतिः = रूँ
सरिदाम्पतिः = रूँ

शुकः = स, लृँ. मौँ
शुक्रः = स
शुक्ला = भ्रीँ
शुचिः = र, रँ
शुभाङ्गिः = ड
शुभ्रा = लृ
शुभ्रांशुः = ऐ, द्राँ, सँ
शुष्मा = र, रँ
शूकरः = न
शून्यम् = हसौँ
शूरः = प, म
शूर्पकः = ग, गँ
शूर्पकर्णः = क्राँ
शूलः = द
शूलधरः = प, ग, स, ह
शूली = ''
शृङ्गारी = क्राँ
शृङ्गी = द
शृणिः = क्रोँ
शैलः = द
शैलशिविरम् = रूँ
शैलेन्द्रजा = लृ
शाखिकेशः = र, रँ
शोभा = फ, हँ

शौरिः = थ, न
श्मरी = नमः
श्यामा = क्राँ, भ्रँ, ल, लँ
श्रवणः = उ
श्रीकण्ठः = प, ग, स, ह
श्रीकरः = अ, उ, क्लौँ
श्रीकान्तः = ''
श्रीगर्भः = ''
श्रीधरः = लृ ''
श्रीनिकेतनः = अ, उ, क्लौँ
श्रीनिवासः = ''
श्रीपतिः = अ, उ, क्लौँ
श्रीमान् = ''
श्रीवत्सः = ''
श्रीवत्सभृत् = ''
श्रीवत्सलाञ्छनः = ''
श्रीवराहः = ''
श्रीशः = ''
श्रीहरिः = ''
श्रुतिः = उ, ॐ
श्लेष्मकः = छ
श्वसनः = ट, य, यँ
श्वेतः = लृँ, भ्रौँ,
श्वेतरथः = लृँ, भ्रौँ, स

श्वेतवाहनः = ऐ, द्राँ, सँ
श्वेतेश्वरः = प

[ष]

षडाक्षरः = प
षडाननः = टँ, प
षण्मुखः = ऊ, टँ
षष्टिहायनः = क्राँ
षोडशांशुः = लृँ, भ्रौँ
षोडशार्चिः = लृँ भ्रौँ

[स]

संक्रन्दनः = इ, ल
संवर्त्तकः = क्ष
संहारः = ख
सकला = ह्रीँ
सङ्कर्षणः = औ
सङ्क्षयकः = ङ
सङ्गतिः = स
सत्यः = द
सत्यकः = फ, फँ, म
सदनम् = व, वँ
सदागतिः = ट, य, यँ
सदानन्दः = फ, फँ, म
सदायोगी = अ, उ, क्लौँ
सदाशिवः = प, फौँ स्फौँ

सद्यः = ओ
सद्योजातः = ओ
सनत् = क, कँ, म
सनातनः = अ, उ, क्लौँ
सन्ध्यानटी = प, ग, स, ह
सन्ध्यारामः = क, कँ, म
सगरः = ह
सप्तजिह्वः = र, रँ
सप्तार्चिः = र, रँ
सप्ताश्वः = म
सफरी = फ
समयः = स
समस्ता = ह्रीँ
समीरः = ट, य, यँ
समीरणः = ट, य, यँ
समुद्रः = रूँ [सँ
समुद्रनवतातः = ऐ, द्राँ,
समुद्रसुभगा = लृँ
सम्बलम् = व, वँ
सरः = व, वँ
सरम् = व, वँ
सरसी = उ
सरस्वान् = रूँ
सरित्पतिः = रूँ
सरिदाम्पतिः = रूँ

सरिद्वरा=ॡँ
सरिलम्=व, वँ
सरोजो=फ, फँ, म
सरोरुहनिवासिनो=श्रीँ
सर्गः=ः
सर्पः=द
सर्पाकारः=द
सर्वः=प, ग, स, ह
सर्वज्ञः=प, ग, स, ह
सर्वतोमुखम्=व, वँ
सर्वसंज्ञः=ञ
सलम्=व, वँ
सलिलम्=व, वँ
सवः=व, वँ
सवकर्ता=फ, फँ, म
सवमुखः=र, रँ
सवरम्=व, वँ
सविता=म
सहस्रवदनः=अ, उ, क्लीँ
सहस्रांशुः=म
सहस्राक्षः=इ, ल
सह्या=ल, लँ
सागरः=रूँ
सागरमेखला=ल, लँ

सागराम्बरम्=र, रँ
सात्वतः=ध
सानुः=ग्लौँ
सानुमान्=द
सामगः=स
सामगर्भः=अ, उ, क्लीँ
सामजः=क्राँ
सामयोनिः=क्राँ
सारः=ट, य, यँ
सारसः=ऐ, द्राँ, स, ँ
सार्धचला=ध्रीँ
सिंहः=ग
सिंहिका=ड
सितभानुः=०
सितसिन्धुः=ॡँ
सिद्धदेवः=प, ग, स, ह
सिद्धसिन्धुः=ॡँ
सिद्धापगा=ॡँ
सिद्धिः=ञ
सिन्धुः=रूँ
सिन्धुजन्मा=ऐ, द्राँ, स, ँ
सिन्धुरः=क्राँ
सिन्धुरतिलकः=क
सिप्रः=ऐ, द्राँ, स, ँ

सुखाशः=ट, य, यँ
सुत्रामा=इ, ल
सुधा=ॡँ
सुधाकरः=ऐ, द्राँ, स, ँ
सुधाङ्गः= „
सुधाधारः= „
सुधानिधिः= „
सुधाबीजम्=वँ
सुधारश्मिः=द्राँ
सुधावर्षी=फ, फँ, म
सुधासूतिः=ऐ, द्राँ, स, ँ
सुधास्रवा=क्लीँ
सुधांशुः=ऐ, द्राँ, स, ँ
सुपूज्या=प्रीँ
सुप्रजा=ध
सुप्रसादः=प, ग, स, ह
सुरज्येष्ठः=फ, फँ, म
सुरदीर्घिका=ॡँ
सुरनदो= „
सुरनिम्नगा= „
सुरपतिः=इ, ल
सुरवर्त्म=आ, ख, ह, हँ
सुरसः=व
सुरापगा=ॡँ
सुवर्णबिन्दुः=अं, उ, क्लीँ

सुषमा=ह
सूक्ष्मः=ऋ
सूक्ष्मा=ए
सूरः=म
सूर्यः=म
सृष्टिः=फ
सोमः=ऐ, द्राँ, स,
सोमम्=व, वँ
सोमसिन्धुः=अ, उ, [illegible]
सोमेशः=ट
सोऽमकम्=नमः
स्कन्दः=टँ
स्कन्दम्=ह्राँ
स्तनः=ज, जँ
स्तम्बेरमः=क्राँ
स्तम्भनम्=नमः
स्तरमः=क्राँ
स्त्रीबोजम्=प्रीँ
स्त्रीमन्त्रः=स्वाहान्तः
स्थविरः=ठ
स्थाणुः=ट
स्थायी=ठ
स्थावरः=प, ग, स, ह
स्थितिः=भ
स्थिरः=ज, द

स्थिरा = ज, ल, लँ
स्पर्शनः = ट, य, यँ
स्पृहा = ॐ
स्मरः = इ, क, क्लीँ
स्मरणम् = ग
स्मरहरः = ए, ग, स, ह
स्मृतिः = ग
स्यन्दनम् = व, वँ
स्रष्टा = फ, फँ, म
स्वकम्पनः = ट, व, यँ
स्वभूः = अ, उ, क, क्लीँ
फँ, म
स्वयम्भुः = फ, फँ, म
स्वयम्भूः = फ, फँ, म
स्वरः = ट, य, यँ
स्वरादिः = ॐ
स्वरापगा = लृँ
स्वर्गापगा = लृँ
स्वर्णरेतसोवल्लभा = स्वाहा
स्वर्धुनी = लृँ
स्वर्नदी = लृँ
स्वर्वापी = लृँ
स्वस्तिकः = भ [फँ, म
स्वायम्भुवमनुपिता = फ,

स्वाराट् = इ, ध

[ह]

हंसः = म, स
हंसरथः = फ, फँ, म
हंसवाहनः = फ, फँ, म
हनुः = स्वाहा
हयाननः = ह
हरः = ल, प, ग, स, स्वा
[ह्रीँ, ह
हरचूडामणिः = ऐ, द्राँ, स
हरम् = फट्
हररूपः = प, ग, स, ह
हरशेखरा = लृँ
हरिः = अ, उ, न, क्लीँ
हरिकान्ता = श्रीँ
हरिणः = ह्सौँ
हरिणाङ्कः = ऐ, द्राँ, स,
हरिणाक्षी = श्रीँ
हरिणाबीजम् = ह्सौँ
हरिदश्वः = म
हरिद्राबीजम् = ह्सौँ
हरिहयः = इ, ल
हव्यभुक् = र, रँ
हव्यवाहनः = र, रँ